

प्रकाराक  
श्रीदुलारेलाल भागव  
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय  
लाखनऊ



मुद्रक  
श्रीदुलारेलाल भागव  
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस  
लाखनऊ

## सम्पर्ण

अवध के माण्डुकेदारों में आदर्श व्यक्ति,

धर्मकुलालंकरण,

अदास्पद श्रीमान्

राजा सूर्ययशस्वरिंह साहय

ब्रह्मदायिपति के बर ब्रह्मलो में ।

श्रीमान्,

भगवती भगवती कीर जयगी की लोकोत्तर विभूति में  
अवका हा श्रीमान् जिस देश की हिलजिला में अद्विज कीम  
रहते हैं कीर जयगी जिस आदर्शदा भावभाषा दिदी के  
साहित्य भाषा का हृदि में तन, मन, धन से बने रहते  
हैं उरी भाषा की रति के ब्रह्मदायि कीर उरी देश के  
ब्रह्मदायिपति के आदर्श एवं कारणों कोनविधि के एवं  
कन हन दुलभ को श्रीमान् की सेवा में हार्दिक अदा कीर  
काहर में सम्पर्ण करता है ।

श्रीमान् का हस्तान्तर,

सन्निवृत्तदाय

१३७३

धीरुसाहेबाच भागव  
अभ्यस गंगा-गुप्तमाता-कामाभय  
लालनऊ



गुप्त

धीरुसाहेबाच भागव  
अभ्यस गंगा-गुप्तमाता-कामाभय  
लालनऊ

## समर्पण

प्रबंध के तारुलुकेदारों में आदरों व्यक्ति,  
धैर्यकुलालंकरण,

श्रद्धास्पद श्रीमान्

राजा सूर्यवक्ससिंह साहव

कसमदाधिपति के कर-कमलों में ।

श्रीमान्,

भगवती सरस्वती और सत्यता की लोकोत्तर विभूति में  
सपक्ष हो श्रीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अशक्ति हो  
रहते हैं और अपनी जिस आदरार्थाया मान्यता दिशि के  
साहित्य-भाहार की वृद्धि में मन, मन, धन से खो रहे  
हैं, उन्हीं भाहार की पूर्ति के सम्यक् रूप और उन्हीं देश के  
वृद्धाण-आधन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक  
छात्र इस पुस्तक को श्रीमान् की सेवा में हार्दिक धन्य और  
आदर से समर्पण करता हूँ ।

श्रीमान् का कृपामात्र,

प्रमिदनागयण



# भूमिका

योगी रामाचारकजी की "साइंस ऑफ प्रोप" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी हस्तलिखित कापी हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़कर लोगों ने इसकी प्रसन्नता प्रकट की कि इस दृष्टयोग के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अनिर्दिष्ट अनेक उत्साही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारंभ कर दिया। जिन-जिन लोगों ने जी लगाकर इसका अभ्यास किया, वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गए और कहने लगे कि भारतवर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कंदराओं में छिपी थी, वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का असीम उपकार होगा। इन वाक्यों को सुन-सुनकर मैं विचार करने लगा कि जब केवल श्वास-क्रियाओं ही का प्रभाव लोगों को इतना उत्साहित कर रहा है, तो उन क्रियाओं के साथ यदि खान, पान, रहन, सहन इत्यादि सभी बातों में दृष्टयोग के नियमों का अनुसरण होने लगेगा, तो और भी कितना लाभ होगा। इसी विचार से योगी रामाचारकजी के दृष्टयोग-नामक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारकजी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाते हैं कि शिष्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से यह सुनने आते थे कि बिना साधान् गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता; पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साधान् गुरु के भी, साधान् गुरु के-से काम देने हैं। इसलिये मैंने उन्हीं के लेखों का टीका-टीक अनुवाद करने का यत्न किया है; अपनी ओर से कुछ भी घटाने-बढ़ाने का चेष्टा नहीं की। हाँ, ऐसी जगहों पर अवरय कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं, जहाँ उन्होंने अपने अमेरिका-निवासी शिष्यों को संबोधन करके कहा है, मैंने अपने भारतीय भाइयों को संबोधन कर दिया है।



## भूमिका

[illegible]



योगशास्त्र के पुराने ग्रंथों, जैसे पातंजल-योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रंथ इतने बड़े नहीं हैं, जितना बड़ा कि यह ग्रंथ है। इसमें बातें भी बहुत-सी नई-नई हैं, जो उन पुराने ग्रंथों में नहीं मिलतीं। हमारे देश के लकीर के फकीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत-सी नई बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग से कही गई हैं, इसलिये इस शिक्षा का अनुसरण करने से तो हम नवग्राही हो जायेंगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पतंजलि और शिवजी का जमाना दूसरा था। उस जमाने में ऊँची-मी-ऊँची शिक्षा बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीका गुरु और शिष्य दोनों के अनुकूल था। पर अब तो यदि सही-से-सही सिद्धांत को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे, तो कोई सुनेगा ही नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साईस-काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइए, इतना समझाइए कि सुननेवालों के मन में कोई संदेह न रह जाय, तभी आपका समझाना समझाना है। हमी को साईस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रंथ बड़े हो ही जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धांत तो बड़ी सनातन के हैं, पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, इस बात से निश्चित रहना चाहिए। दूसरी यह बात कि इसमें पुराने ग्रंथों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, इसको मैं मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और इसका भा प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण तब समझ में आवेगा, जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले अपने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर जाता है, फिर उनकी शक्तियों को

जगाता है। एक मनुष्य है, जो राह छोड़कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके जिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ा ही बातें कहनी पड़ती है; परन्तु दूसरा मनुष्य, जो अचानक राह छोड़कर बहुत दूर भटक गया है, उसके लिये ज़रूर बहुत भटकी हुई बातों की समझावर ठीक मार्ग पर लाना होगा। पहले ज़माने के मनुष्य प्रकृति के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; हमलिये धाढ़े ही में बहकर उनको ठीक मार्ग पर लाने थे और उनको शानियों की जगाने थे। अब के मनुष्य भटककर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर दूर गए हैं और समझानी राह पकड़कर गुमराह हो रहे हैं। हमलिये भटके हुए दूर से मार्गों का दोष दिखाना आवश्यक हो गया। तभी मनुष्य भटके मार्गों को छोड़कर आसली मार्ग पर आधेंगे। हमलिये हममें नई-नई भूतों और भ्रमों को दूर करने के लिये नई-नई बातें कहनी पड़ी।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साधक मित्रों ने भी हम बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगशास्त्र की पुस्तकों को केवल एक ही बार, आठ किना ही अध्ययन हो, अध्ययन करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अध्ययन शुरू कीजिए। इस समाप्त हो जाने पर कुछ दिन के छिदे हमका पढ़ना दोहरा दीजिए, पर अध्ययन करते जाएँ। कुछ दिन के बाद फिर अध्ययन से परिए। इस प्रकार आपकी नई बातें साम्य होनी चाहेंगी, जो पहले अध्ययन में आपके कदम पर नहीं थी। एक तो अध्ययन करते से आपके मन में नए-नए धारण होते, हमारे एक ही बार में सब सब बातों को झट्ट नहीं कर सकना, हमलिये थोड़ा-थोड़ा चक्कर देकर हमें बात बात परने रहना चाहिए, सब बातें समझ होनी हैं।

योग की शिक्षाओं के बारे में शरीर के कल अध्ययन कर रहने हैं। अध्ययन करते, रीते-रीते, कल-कल से शारीरिक शिक्षाएं, कष्टात्मक से होने के कारण हैं। विशेष बातों की वह जाने लगते हैं, विशेष

अवयव क्रिया करने लगते हैं, शरीर में, जहाँ-जहाँ श्रुटियाँ हैं, उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदनाहीन अंगों में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी श्रुटियाँ हैं, जिनकी आपकी इत्तर तक नहीं है; क्योंकि षडों के अवयव वेदनाहीन हो गए हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है, तो वेदनाओं के जग जाने से श्रुटियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत-से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र माधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी-मीठी पीड़ा-सी हो रही है, कोई कहता है, अँतड़ियों में कुछ अव्यवस्थिति-सी मालूम होती है इत्यादि-इत्यादि। इन बातों से डरना न चाहिए; किंतु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफाई होने लगी। सबसे पहले फेफड़ों की सफाई होती है। किसी-किसी को कुछ थोड़ी वेदना होती है, जुकाम तो अक्सर लोगों को हो जाता है और खूब कफ़ जाता है। निश्चित रहिए, कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किंतु धीरे-धीरे उभड़कर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे, उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़कर फिर दिन-भर के लिये तो मकान साफ़ और सुथरा हो जायगा और यदि फिर आप फूँका-करकट न आने देंगे, तो हमेशा के लिये साफ़ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है; वह अँगरेज़ी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे तालिका दिए देते हैं—

६० बूँदों का	१ ड्राम।
८ ड्राम का	१ औंस।
२० औंस का	१ पाउंड।
२ पाउंड का	१ क्वार्ट।
४ क्वार्ट का	१ गैलन।

हम आशा करने हैं कि हमारे देश-वासी अपने पुराने भूले हुए हम योगमार्ग का अनुसरण करके काम उठावेंगे ।

जिस प्रकार जापान और योरोपियन देशों में शिक्षा-श्रीक्षा दी जाती है, उसी प्रकार हमारे देश बड़े भारतवर्ष में भी दी जाती है । पर हमारी शिक्षा-श्रीक्षा का प्रभाव जितना योरोपियन देशों में पड़ता है, हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता । कहीं तो एक मूल के उपदेश से हमारा देश हमला जान प्रहण करता था कि जितना अन्य देश पोथियों-की पाथियों से भी नहीं प्रहण कर पाते थे । अब वही हमारा देश है कि जितना बिनाशों को पदवर एक योरोपियन, अमेरिकन व जापानी शिक्षा-निपुण और व्यवसायी हावर बड़े बड़े व्यवसाय करके अपने-का और अपने देश का सब भौति से संयोजन करता है, उन्हीं बिनाशों का पदवा हम मुहुरिं ईना करते हैं । कारण क्या है ? हममें न तो जायत है न शक्ति । योगशास्त्र हमें जीवत और शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बतलाना है । अब जापानी जात जिजिगु नामक ब्रह्मविद्या करके पाठ और भोदे होने पर भी बड़े और आत्मन्य रुचिसे या बिजया हा गए, तो क्या हम अपने प्राणायाम से ब्रह्म से प्रबल शक्ति नहीं प्राप्त कर सकते ? आध्यात्म को जिए और धैर्य रहिये, अब कुछ ही मासों में, बिना परिश्रम और धैर्य के कुछ न होगा । हम आशा करने हैं कि हमारे देश बहुत हम आध्यात्म को बरक बनाना काम उठावेंगे ।

श्री विष्णु मिश्र श्रीगुरु महाराज श्रीगुरुदेव श्रीगुरुदेव से अपने आत्मन्य शरण्य का एक बड़ा भाग हमसे कुछ-अनोपय से बच निकल है, अतः मैं कभी दारिद्र्य अनुभव कर रहा हूँ ।

श्रीगुरु श्रीगुरुदेव

श्रीगुरु श्रीगुरुदेव

१-१-१९१०

महाराज श्रीगुरुदेव



## हठयोग

## पहला अध्याय

### हठयोग क्या है ?

योग विज्ञान कई शाखाओं में विभक्त है । इसके विस्तृत और प्रधान भाग ये हैं—( १ ) इष्टयोग, ( २ ) राजयोग, ( ३ ) कर्मयोग और ( ४ ) ज्ञानयोग । यह मुख्य चारों ही भाग का वर्णन करती है । इस समय हम दूसरे भागों के वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे, यद्यपि योग के इन समस्त बड़े भागों पर व्यवस्थित कुछ काल्य ग्रंथों में बहना ही पड़ेगा ।

हरदोष योगशास्त्र की यह शाला है जो कि शार्ङ्गिक तरीक—कर्मों  
रहा—कर्मों भलाई—कर्मों स्वाभाव और इन कुछ बातों का जो  
तरीक को कर्मों शक्ति और कर्मों रहा के करने है, कर्मों  
करता है। यह योगों के स्वाभाविक शक्ति से जाने का शरीर बलवान  
है और पुकार पुकार करता है, जिस पुकार के अनुसार-से शरीर  
योग भी ले रहे है कि "शक्ति के शरीर पर कर्मों का", कर्मों  
केवल रहता ही है कि योगों के "कर्मों" मही कर्मों है, कर्मों  
यह जो शरीर शक्ति और कर्मों यह का शक्ति का शरीर रहा है,  
और शक्ति रहने के और कर्मों ही के कर्मों के कर्मों के कर्मों  
कभी शक्ति कर्मों कभी कर्मों है, शक्ति के कर्मों के कर्मों के कर्मों

दृष्ट मनुष्य ने मूर्त बनकर हम बात को विनम्र ही मुखा रिता है कि मेरी भी कोई आज्ञा मानेमान है, जिसे प्रकृति कहते हैं। प्रकृति के प्रयोजित टाट और सामाजिक हीनकों की गर्जना ही मोक्ष के ज्ञान तक न हो सके। यह हम बातों पर देखा है और हमें सबकों का मोक्ष समझना है। यह प्रकृति की मोक्ष से बड़ा दूसरा मही है, जिसे यह उक्त प्रकृति माता के मोक्ष में गटा रहना है, जिसने उम्मीद गढ़ा मुष्टि, मुष्टि, गुण और रचा की है। इन्द्रयोग चादि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और अंत में प्रकृति है। जब गुहारे सामने कोई तरीका, गरवीय अथवा नई रीति दयादि चाये तो उमें हमी कभीही पर बगो कि "प्रकृति के मार्ग क्या है" और सर्वदा उमी को पसंद करो, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान व्याप्य की बहुत-सी नई रीतियों, मनगढ़ंत उपायों, तरीकों, तदर्थों और प्रयासों की ओर आकर्षित हो, जिनसे कि परिचर्मा संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने चाये और इस पर उन्हें विरवास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को स्पर्श के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को खींच ले, जिसे उसने इन्हें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, इसको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में स्पर्श के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि इन्द्रवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा

है, वह ऐसा करता था कि नहीं ? घास के घमन में छेदने से कुछ चीखता मालूम होती है कि नहीं ? और, पृथ्वी माता की छाती पर लेट जाने के लिये स्वाभाविक इच्छा होती है कि उससे नक्ररत करने को जी चाहता है ? लहरूपन में नंगे पाँव भागने की इच्छा होती है कि नहीं ? और नंगे पाँव, बिना जूते के, टहलने में पाँवों को ताज़गी मिलती है कि नहीं ? रबर के तल्लों में आकर्षण पर प्रभाव डालने की क्या विशेषता है ? इत्यादि । हमने हम बात को केवल उदाहरण के लिये दिया है, हम अभिप्राय से नहीं कि रबर के तल्लों और फाँच के पायों के गुण-दोष पर बहस की जाय । थोड़ा ही ध्यान देने से मनुष्य को मालूम हो जायगा कि प्रकृति के उत्तर यही दिएलाते हैं कि बहुत-सी शक्ति इसी पृथ्वी से हमें मिलती है । पृथ्वी शक्ति से भरी हुई एक शक्ति-भटार है, और सर्वदा अपनी शक्ति मनुष्य को देने के लिये उत्सुक रहती है; न कि वह शक्ति-हीन और शक्ति की भूखी होकर अपने बच्चे—मनुष्य—ही से शक्ति छीनने के लिये उत्तारु है । थोड़े ही दिनों में ये नए पैतृंवर लोग कहने लगेंगे कि हवा प्राण देने के स्थान में प्राण को मनुष्य-देह से खींचती है ।

निदान ऐसी प्रत्येक बात में सर्वदा उम्मी प्रकृति की कसौटी का प्रयोग करो—और यदि कोई बात प्रकृति के अनुसार न हो, उसे त्याग दो—त्रायदा तो सारु है । प्रकृति अपने कार्य को पूरा जानती है—वह गुहारी दिगू है, न कि पैरी ।

योग की अन्य शाखाओं पर बहुत बड़ी-बड़ी और बहुमूल्य किताबें लिखी गई हैं ; परंतु हठयोग का तो नाम ही देखर योग के क्षेत्रों में समाप्त कर दिया है । हमका बड़ा कारण यह है कि हमारे देश में भीख माँगनेवाली भीख भेली के ऐसे गरोह-के-गरोह हैं, जो अपने को हठयोगी कहते हैं, परंतु योग के साथ का उन्हें खोरा-मात्र भी ज्ञान नहीं है । इन मनुष्यों को कुछ थोड़े प्रमास से अपने शरीर के व्यवस्थापन



अवयवों पर कुछ अधिकार प्राप्त हो गया है ( यह बात सब किसी के लिये, जो इस विषय का अभ्यास करें, संभव है ) और उस अधिकार से उन्हें ऐसी सामर्थ्य हो गई है कि अपने शरीर पर वे कुछ असाधारण तमाशे कर लेते हैं और उन्हें दूसरों को वैसे के खालच से दिखाया करते हैं । इनकी करतूतों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्यजनक होती हैं । कोई-कोई तो अपनी अँतड़ियों और गले की अधःगामिनी क्रिया को उलटकर ऊर्ध्वगामिनी बना देते हैं, जिससे मलाशय की वस्तुओं को गले की राह मुँह से निकालते हैं । यह बात डॉक्टरों के लिये तो आश्चर्यजनक है ; पर साधारण मनुष्यों के लिये धृष्टाजनक के सिवा और कुछ नहीं । इन लोगों की और भी ऐसी-ही-ऐसी करतूतें हैं, जिनसे पुरुष अथवा स्त्री की स्वास्थ्य-विषयक अभिलाषाओं को तनिक भी सफलता होने की संभावना नहीं है । ऐसे ही इनके दूसरे भाई एक और होते हैं, जो योगी का नाम धारण किए हैं और जो मज्जहबी कार्यों से महाते तक नहीं, या अपनी भुजा उठाए रहते हैं, जिससे वह सूख जाती है, या इसी प्रकार की और क्रियाएँ करते हैं जिनसे लोग उन्हें महात्मा समझें और मुग्रत में भोजन इत्यादि दें । वे जोग या तो पक्के ठग हैं, या घोखे में पड़े हुए सनकी आदमी ।

इन मनुष्यों पर, जिनका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं, सच्चे योगी लोग तरस खाते हैं । सच्चे योगी जोग हठयोग को अपने शास्त्र का एक प्रधान अंग मानते हैं ; क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को स्वस्थ शरीर मिलता है—जो काम करने के लिये बड़ा अच्छा औजार है—और जो आत्मा के लिये अनुकूल मंदिर है ।

इस छोटी किताब में हमने सीधे-सादे तरीके से हठयोग के मूल तत्त्वों को दे देने का प्रयत्न किया है कि हम पार्थिव शरीर के लिये योगियों का क्या तरीका है । हमें यह आवश्यक जान पड़ा कि पहले परिचयी शरीर-विज्ञान के अनुसार हम शरीर के विभिन्न भागों को

हरमावे और सब प्रकृति के उपायों और रीतियों का वर्णन करें, जिनका अनुसरण करना मनुष्य के लिये यथासाध्य अत्यंत आवश्यक है। यह वैद्यक की किताब नहीं; इसमें दवा का नाम भी नहीं, और न हममें रोगों के छुड़ाने की का वर्णन है। हाँ, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने के लिये उपाय अवश्य बतलाए गए हैं। इसका उद्देश स्वस्थ मनुष्य है। इसका प्रधान अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को स्वाभाविक जीवन में खाने के लिये सहायता पहुँचावे। परंतु हम लोगों का यह भी पूरा विश्वास है कि जिन बातों से स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ बना रह सकता है, उन्हीं बातों के द्वारा अस्वस्थ मनुष्य भी स्वस्थ हो सकता है, यदि वह उन बातों का पूरा अनुसरण करे। दृढयोग सच्चे, स्वाभाविक और असली जीवन का उपदेश करता है; जो कोई इसका अनुसरण करेगा उसी को लाभ पहुँचेगा। यह प्रकृति के अनुकूल चक्रता है, और हम लोगों को, जो कृत्रिम आदतों और जीवन के जाज में फँस गए हैं, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने की प्रेरणा करता है।

यह पुस्तक सरल है—बहुत सरल है—इतनी सरल है कि बहुत-से मनुष्य तो इसे अज्ञान फेर देंगे कि इसमें तो कोई नई और अद्भुत बात ही नहीं है। कदाचित् उनकी यह धारा रही हो कि इसमें भिन्नमंगे योगियों की मशहूर कृत्यों होंगी और ऐसे उपाय दिए गए होंगे, जिनसे हम पुस्तक का पढ़नेवाला भी उन कृत्यों को कर सकेगा। हम ऐसे मनुष्यों को बतलाए देते हैं कि यह किताब वैसी नहीं है। हम इसमें चौदह आसनों को नहीं बतलाने, और न यही बतलाते हैं कि अंतर्द्वियों को साफ करने के लिये उनमें वस्त्र बाँधकर फिर कैसे उसे निष्काशते हैं (इसका प्रकृति के नियम से मुद्राबिज्ञा कीजिए), या कैसे दिव्य का धरुटना बंद कर देने अथवा कैसे भीतरी अवयवों से माना प्रकार के स्नेह करते हैं। इस किताब में आप ऐसा कुछ भी न पावेंगे। हम हममें

यह बतलाते हैं कि किसी उत्कृष्ट गल व्यवय को कैसे बर्त में लिया जाता है, कैसे उसमें समुचित कार्य लिया जाता है। और, हम उन अनधिकृत व्यवयों पर अधिकार जमाना बतलायेंगे, जिन्होंने हड़ताल करके अपना काम करना बंद कर दिया है। हमने इन उपायों का इसलिये हम पुस्तक में वर्णन किया है कि मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहे, न कि इस अभिप्राय से कि इनके द्वारा कुप्रेत रचा जाय।

हमने बीमारियों के विषय में बहुत नहीं वर्णन किया है। हमने आपके सम्मुख स्वस्थ पुरुष और स्त्री का नमूना खड़ा कर दिया है, और हम आपसे यही चाहते हैं कि आप देखें, कैसे वे स्वस्थ हुए और कैसे अब भी स्वस्थ बने हुए हैं। तब हम आपका ध्यान हम बात की ओर आकर्षित करते हैं कि वे क्या और कैसे करते हैं। फिर हम यह शिक्षा देते हैं कि आप भी वैसे ही कीजिए, यदि आप भी वैसे ही स्वस्थ बना चाहते हैं। बस इतना ही करने का हमारा प्रयत्न है। परंतु इसी इतने में वे सब बातें आ जाती हैं, जो आपके लिये की जा सकती हैं; शेष आपको स्वयं करना होगा।

अन्य अध्यायों में हम यह बतलावेंगे कि योगी लोग इस शरीर पर इतना ध्यान क्यों देते हैं। हम हठयोग के मूल तत्त्व, हम विश्वास का वर्णन करेंगे कि सर्वजीवन के पीछे सर्वव्यापक महती चेतनता वर्तमान है—उस जीवन तत्त्व के ऊपर पूर्ण विश्वास चाहिए कि वह अपना कार्य समुचित रूप से करेगा—यह विश्वास घटक बना रहे कि यदि हम उस महत्तत्त्व पर विश्वास करें, और उसे अपने भीतर काम करने का निर्वाह रूप से अवकाश दें, तो हमारे शरीर का सदा कल्याण रहेगा। पढ़ते बलिष्ठ, तब आपको मालूम हो जायगा कि हम आपको क्या बतलाने का प्रयत्न कर रहे हैं—आप उस संदेश को पा जायेंगे, जो आपको देने के लिये हमें सुपुर्ब दुआ है। हम

उत्तर में, जो इस अध्याय के मिरे पर दिया गया है कि 'हठयोग क्या है?' हम यह कहते हैं कि इस किताब को अंत तक पढ़ जाइए, तब आप कुछ-कुछ समझेंगे कि यह क्या वस्तु है। जिन बातों का उद्देश इस किताब में दिया गया है, उनका अभ्यास कीजिए, तब आपको अपने अभीष्ट ज्ञान के पथ पर एक खासा प्रस्थान मिल जायगा।

---

## दूसरा अध्याय

### इस पार्थिव शरीर पर योगी का ध्यान

ऊपरी देखनेवाले को योगशास्त्र के उपदेशों में परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देता है । एक ओर तो यह शास्त्र यह बतलाता है कि यह पार्थिव शरीर नखर द्रव्यों से बना हुआ है और मनुष्य के उच्च सत्त्वों के सम्मुख यह कुछ भी नहीं है; और दूसरी ओर अपने शिष्यों को यह शिक्षा देने के लिये बहुत ही प्रयत्न और प्रधानता देता है कि इस पार्थिव शरीर की पुष्टि, शिक्षा, व्यायाम और उन्नति पर खूब ध्यान दो । सच तो यह है कि योगशास्त्र की एक संपूर्ण शाखा ही, हठयोग के नाम से, इस पार्थिव शरीर की उन्नति ही के विषय में है, जिसमें इस शरीर की रक्षा और विकास के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

बाज़-बाज़ परिचामी यात्री जो पूरब में आते और योगियों को शरीर पर अधिक ध्यान देते पाते हैं, तो भट यह अनुमान अपने जी में कर लेते हैं कि “योगशास्त्र केवल शारीरिक शिक्षा का पूर्वीय रूपांतर-मात्र है, जो कदाचित् कुछ और सावधानी से किया जाता है, पर इसमें आध्यात्मिकता कुछ नहीं है ।” वे ऊपर-ही-ऊपर देखकर यह कह सकते हैं, परंतु इसके भीतर-भीतर क्या है, इसकी उन्हें कुछ खबर ही नहीं ।

हमको इस बात की आवश्यकता नहीं कि अपने शिष्यों को योगी के शरीर के ऊपर इतना ध्यान देने का कारण समझावें, न तो इस छोटी किताब के प्रकाशित करने पर, जिसमें अपने योग के शिष्यों

को वैज्ञानिक रीति से शरीर के विकास और पोषण की शिक्षा दी गई है, चमत्कारों की हमें आवश्यकता है।

आप लोग जानते हैं, योगियों का यह विश्वास है कि असली मनुष्य उसका शरीर नहीं है। वे जानते हैं कि वह अमर 'अहम्' जिसकी प्रत्येक व्यक्ति छोड़ी बहुत जानकारी रखता है, देह नहीं है; इस देह को तो केवल वह धारण करता और इससे काम लेता है। वे जानते हैं कि देह केवल पद्माच्छादन की भाँति है, जिसको आत्मा पहन लेता और समय पर उतार देता है। वे जानते हैं कि शरीर किम्विधे है; और हमी से वे इसके असली मनुष्य होने के धोखे में नहीं पड़ते। इन सब बातों के जानने हुए, वे यह भी जानते हैं कि यह देह वह औज़ार है, जिसमें और जिसके द्वारा जीव विकास पाता और अपना काम करता है। वे जानते हैं कि विकास के इस दर्जे में मनुष्य के उद्घाटन और उन्नति के लिये मांस-देह आवश्यक है। वे जानते हैं कि शरीर आत्मा का मंदिर है, और इसलिये उनका यह विश्वास है कि शरीर का ध्यान रखना और उसकी उन्नति करना वैसा ही उचित कार्य है, जैसा कि मनुष्य के उच्च तत्वों का विकास करना; क्योंकि अस्वस्थ और अपूरे गठित शरीर से मन यथोचित रूप में कार्य नहीं कर सकता, और न तो यह औज़ार अपने माजिक आत्मा के हित के लिये यथेष्ट काम में आ सकता है।

यह सत्य है कि योगी हम सोमा से और आगे जाता है, और यह बतलाना है कि देह पूर्णतया मन के अधिकार में बलीभूत रहे—यह औज़ार ऐसा शान दिया रहे—कि माजिक के हाथों का स्वयं पाने ही यथेष्ट कार्य संपादन कर देने में समर्थ हो।

परंतु योगी जानता है कि जब उँचे रज्जों का कार्य-संपादन तभी होगा, जब हम शरीर की उचित सहायता, पुष्टि और विकास दिए जाएंगे। उच्च विदित बली शरीर होगा, जो सबसे प्रथम सुरत और

स्वस्थ हो लेगा। इन्हीं कारणों से योगी अपने पार्थिव शरीर को इतना ध्यान और पर्वा करता है; इसी से हठयोग के योग-विशान का प्रधान अंग शारीरिक शिक्षा है।

पश्चिमो शारीरिक शिक्षक शरीर की उन्नति केवल शरीर ही के लिये करता है, और प्रायः उसका यही विश्वास रहता है कि शरीर ही मनुष्य है। पर योगी यह समझकर अपने शरीर का विकास करता है कि शरीर आत्मा का केवल एक औजार-भर है, जो मनुष्य के असली तत्व के काम आता है; यह औजार पक्का रहेगा तो जीव के विकास में पक्का काम देगा। शारीरिक शिक्षक केवल शरीर की बाहरी ही कमरतों में संतुष्ट रहता और इन्हीं कमरतों को करता है, जिनसे पट्टे पुष्ट हों। योगी अपने अभ्यासों में मन को भी मिला देता है, और केवल पट्टों ही को पुष्ट न करके शरीर के प्रत्येक अवयव, परमाणु और अंग को विकसित करता है। वह केवल इतना ही नहीं करता, किन्तु शरीर के प्रत्येक अंग पर अपना अधिकार प्राप्त करता है, और शरीर के अनधिकृत और अधिकृत प्रत्येक अंग पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है। ये बातें ऐसी हैं, जिनमें साधारण शरीर शिक्षक बिल्कुल ही अनभिज्ञ है।

हम अपने शिष्यों को योग-शिक्षा का वह मार्ग बतलाते हैं, जिसमें उनका शारीरिक स्वास्थ्य पूरा-पूरा दुरुस्त हो जाय, और हम आशा करते और निश्चय रखते हैं कि जो मनुष्य हमारी शिक्षा को सावधानी से, शानपूर्वक ग्रहण करेगा, उसके समय और परिधम का पूरा-पूरा फल उसे मिल जायगा, वह अपने पूर्ण विद्यमान शरीर का मालिक होगा। वह अपने शरीर से उतना ही संतुष्ट हो जायगा, जितना कोई गुणी संगीताचार्य अपने उत्तम-से-उत्तम उग वाद्य यंत्र को पाकर संतुष्ट रहता है, जो उसके हाथ का शरीर पाने ही उसके मनोमोहित राग को बजा देने लगता है।

## तीसरा अध्याय

### दैवी कारीगर की कारीगरी

योगशास्त्र यह मितवज्ज्ञाना है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को एक शारीरिक कल देता है, जो उसकी आवश्यकताओं के अनु-  
वृत्त हुआ करता है ; और उसे उस कल को ठीक दशा में रखने,  
और यदि मनुष्य को भूल से कल क्षुब्ध बिगड़ जाय तो उसके मरम्मत  
करने के साधन भी देता है । योगी लोग इस मानव शरीर को महा-  
चेतन्य शक्ति की कारीगरी समझते हैं । वे इसके संगठन को एक  
चलती हुई कल समझते हैं, जिसकी कल्पना और परिक्रिया अत्यंत  
बानुरी और स्नेह का परिचय देती है । योगी लोग जानते हैं कि  
यह देह उर्मी महाचेतन्य के कारण है ; वे जानते हैं कि वही चेतन्य  
इस पार्थिव देह में सर्वदा लगातार काम कर रहा है, और जब तक कोई  
व्यक्ति उसके नियम का अनुयायी बना रहता है, तब तक वह स्वस्थ  
और सुख भी घना रहता है । वे यह भी जानते हैं कि जब मनुष्य  
उस नियम के प्रतिवृत्त चलता है, तो इसका परिणाम गड़बड़  
और बीमारी होती है । उनका विश्वास है कि यह कल्पना कि उस  
महती चेतनता ने इस शरीर को उत्पन्न तो किया, पर इसे इसकी भाग्य  
के भरोसे छोड़कर आप हट गई, नितांत हास्य के योग्य है । उनका  
यह विश्वास है कि यह महती चेतनता अब भी शरीर की प्रत्येक  
किया का निरीक्षण करता है और वह निर्भय होकर विश्वास करने  
के योग्य है, न कि उसमें डग जाय ।

यह महती चेतनता, जिसके रूपांतर को हम 'प्रकृति', 'जीवन-



तत्त्व' या ऐसे ही और मामों से पुकारने हैं, सर्वथा चतियों की मरम्मत करने, धारों को पूरा करने और दूरी इच्छियों को मोचने के लिये भीखी रहती है, उन महनों हानिकारक द्रव्यों को हम यंत्र में से निकास फेंकने के लिये तत्पर रहते हैं, जो कि हममें एकत्रित हुआ करते हैं। यह हज़ारों उपाय करके हम यंत्र को चरमो नष्टता दशा में खड़ा चाहती है। प्रियको हम रोग कहते हैं, ठमका अधिकांश भाग यस्तुतः प्रकृति की यह लाभदायक क्रिया है, जो उन विरैले द्रव्यों को हटाकर निकासने के लिये होती है, जिन्हें हमने अपने शरीर में प्रवेश कराकर स्थान दिया है।

आइए, ज़रा देखिए, तो इस शरीर का अर्थ क्या है। किसी जीव की कल्पना कीजिए कि वह एक ऐसा ठोव खोज रहा है, जहाँ रहकर अपने अस्तित्व की हम दशा को चरितार्थ कर सके। योगी लोग जानते हैं कि कतिपय रीतियों से विकारा पाने के लिये जीव को मांस-निर्मित ठोव (देह) की आवश्यकता होती है। अब देखना चाहिए कि इस देह के ढंग पर जीव को कौन-कौन-सी वस्तुएँ आवश्यक हैं, और तब विचार किया जायगा कि प्रकृति ने सब वस्तुओं को जुटा दिया है कि नहीं।

सबसे प्रथम तो जीव को एक अच्छे विचित्र सुगठित सोचने-विचारने के औज़ार की ज़रूरत है, जो एक ऐसा सदर स्थान हो, जहाँ से वह शारीरिक क्रियाओं का संचालन कर सके। प्रकृति ने उस अद्भुत औज़ार को मस्तिष्क के रूप में दिया है, जिसकी गूढ़ शक्तियों को इस समय हम बहुत ही थोड़ा-सा जानते हैं। मस्तिष्क के जितने भाग को मनुष्य अपने विकास की इस वर्तमान दशा में काम में लाता है, वह भाग कुछ मस्तिष्क का एक बहुत ही छोटा छंद-मात्र है। अप्रयुक्त भाग मानव-समुदाय के और अधिक विकास की वाट जोड़ रहा है।

अब जीव को इंद्रियों की आवश्यकता है, जिनके द्वारा वह बाह्य पदार्थों के भिन्न-भिन्न चिह्नों को धारण और भंक्ति कर सके। प्रकृति फिर सहायता के लिये पहुँचती है, और आँख, कान, नाक और रसना तथा स्पर्श-इंद्रियों को मुहैया कर देती है। प्रकृति ने और इंद्रियों को पीछे रख लिया है; उन्हें यह सब देगो, जब मानव-समुदाय को उनकी आवश्यकता होगी।

तब मस्तिष्क और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के बीच में संदेशों और शासनों के आवागमन के साधन होने चाहिए। प्रकृति ने आश्चर्य-जनक रीति से सारे शरीर में तंतुओं का जाल फैला दिया है। मस्तिष्क इन्हीं तंतुओं के तार द्वारा शरीर के सब अंगों-प्रत्यंगों में अपनी आज्ञाओं को भेजता है; प्रत्येक शारीरिक परमाणु और इंद्रिय में आज्ञा भेजकर उसके पाबन के लिये हट करता है। वैसे ही शरीर के सब अंगों से इन्हीं तारों द्वारा, उपरिपठ भय, सहायता की माँग और क्रियाओं की पुकार के संदेशों को प्राप्त करता है।

फिर शरीर को ऐसे साधन चाहिए, जिससे वह संसार में भ्रमण कर सके। यह स्थावर दशा की प्रकृतियों के पार उतर गया है, और अब इसे भ्रमण करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इसे बाहरी वस्तुओं के पास पहुँचना और उन्हें अपने काम में खाना है। इसलिये प्रकृति ने इसे हाथ-पाँव दिए हैं, और उन पाँव और हाथों को संज्ञाहित करने के लिये मांसपेशियाँ (पट्टे) और नसें दी हैं।

शरीर को एक ऐसे ढाँचे की भी जरूरत है, जिससे वह हट और बढ़े आकार में बना रहे, घटों को सहन कर ले, और प्राक्लिप्त मांसपिंड रहकर झुंड-मुंड न हो जाय; इसे बल और दृढ़ता रहे; ऊपर संभला रहे। इसलिये प्रकृति ने इसे हड्डियों का ढाँचा दिया है; यह ढाँचा वैसा अद्भुत है! आपके अध्ययन करने के ही योग्य है।

अपनी जीव की दृष्टि शरीरधारी जीवों के साथ अपने मनोवृत्तियों के बढ़ने-गुनने का साधन साधित। प्रकृति ने पानी और धूप की दृष्टियों देकर हमें अपना जीव भी दूर कर दिया है।

शरीर को एक ऐसे साधन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा वह अपने प्रत्येक अंगों और प्रणवों में उनके मरम्मत की माननीय भेज सके, जिससे शरीर की मरम्मत हो, अस्थियों की पूर्ति होना रहे और सब भागों में वन पहुँचना रहे। फिर ऐसे ही एक और साधन की आवश्यकता है, जिससे कि शरीर के अंगों की रक्षित, बूढ़े और मरम्मत में भेज दिए जायें और वहाँ जलाकर शरीर के बाहर फेंक दिए जायें। हमारे लिये प्रकृति हमें जीवनदाता रुधिर देती है, और रुधिर के प्रवाह के लिये नलिकाएँ और धमनियों देती है, जिनके द्वारा रुधिर आगे और पीछे बढ़ता हुआ अपना कार्य करता है। और प्रकृति ने हमें फेंक दिए हैं, जो रुधिर में आविस्तृत भरकर रहते हैं, और रक्षित तथा बूढ़े और मरम्मत को जलाया करते हैं।

शरीर को बाहरी सामग्रियों की जरूरत पड़ती है, जिनसे इसके अंगों की वृद्धि और मरम्मत हुआ करे। प्रकृति ने ऐसे-ऐसे साधन दे दिए हैं, जिनसे भोजन किया जाता है, उसे पचाया जाता है, उसमें से पोषण करनेवाला रस निकाला जाता है, उस रस को ऐसे रूप में रखा जाता है, जिसमें शरीर के अवयव उसे अपना सकें और अपने में मिला लें। प्रकृति ने ऐसे भी साधन दिए हैं, जिनसे निरमल मल बाहर निकालकर फेंक दिया जाता है।

अंत में शरीर को ऐसा साधन प्रकृति द्वारा मिला हुआ है कि वह अपने ही रूप के अन्य शरीरों को उत्पन्न कर सकता है और दूसरे जीवों के लिये देह तैयार कर देता है।

मानव-शरीर की आश्चर्यजनक कारीगरी और क्रियाओं का अध्ययन

बगना बड़ा ही लाभदायक है। इसके अध्ययन से प्रकृति की महती चेतनता की सत्यता का अकाट्य अनुभव हो जाता है। मनुष्य को महत् जीवनतत्त्व कार्यनिरत दिग्दर्शन देन लगता है। वह देखने लगता है कि यह ग्रंथ संयोग अथवा जड़ घटना नहीं है; किन्तु एक महत्प्रकृति-शालिनी चेतनता का काम है।

तब वह इस चेतनता में विश्वास करना सीखता है कि जो चैतन्य शक्ति हमें इस शारीरिक सत्ता में लाई है, वही हमें जीवन में संभाल ले जायगी। जिन शक्ति ने उस समय हमारी स्वयंदारी की, उसी की स्वयंदारी में हम अग्र भी हैं और सर्वदा रहेंगे भी।

जितना ही हम उस महत् जीवनतत्त्व के प्रवेश के लिये खुले हुए रहेंगे, उतना ही लाभ उठावेंगे। यदि हम उस तत्त्व से भयभीत होंगे अथवा उसका विश्वास न करेंगे, तो उसके लिये हम अपना दरवाजा बंद करते हैं, और हमें अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा।

## चौथा अध्याय

### हमारा मित्र जीवनमल

बहुत-से लोग यह सोचती करते हैं कि बीमारी को एक चीज—  
आपसी चीज—आपस का दोस्ती—समझने दें । यह बात गरी  
नहीं । आरोग्य मनुष्य की स्वाभाविक दशा है, और आरोग्य का  
अभाव ही बीमारी है । यदि कोई मनुष्य मृत्यु के निमित्त का अनु-  
शास्य को तो वह बीमार हो ही नहीं सकता । जब किसी निमित्त का  
अनुशासन होता है, तब अवाधानता दशा उत्पन्न हो जाती है और  
किसी कारण से हो जाने है, इसी कारणों को हम बीमारी मान  
ते हैं । किन्तु हम बीमारी कहते हैं, वह केवल मृत्यु के दण्ड केवल  
का परिणाम है, किन्तु वह अवाधानता दशा के कारणों का कारण

घर में भेदिया—मुर्गी के बच्चों के दर्भे में बिछी—गल्ले के अंवार में चूड़ा—के विषय में कहा करने हैं, और उसके साथ जैसे ही भिड़ने का यत्न करते हैं जैसे उक्त जंतुओं के साथ। हम लोग उसे मार डाला, या नहीं तो डराकर भगा दिया, चाहते हैं।

प्रकृति कोई छोटी या अविश्वास-योग्य वस्तु नहीं है। इस शरीर में सुषुप्तस्थित नियमों के अनुसार जीवन विकास करता है, और धीरे-धीरे उदय होता है, अपनी पूरी अवधि पर पहुँचता है, और तब शनैः-शनैः क्षीण होने लगता है; अंत में वह समय आ जाता है कि यह शरीर पुराने परिधान-बस्त्र की भाँति अलग कर दिया जाता है, और जीव अपने और अधिक विश्वास की यात्रा में निकल खड़ा हो जाता है। प्रकृति की यह इच्छा कदापि नहीं कि मनुष्य पूर्ण वृद्धावस्था के पहले अपने शरीर को छोड़े, और योगी लोग जानते हैं कि यदि प्रकृति के मार्ग पर बचपन ही से चला जाय तो नवयुवक या अपेक्ष मनुष्य की मृत्यु पैसी ही विरल हो जाय, जैसी कि दुर्घटना-जनित मृत्युएँ विरल हुआ करती हैं।

प्रत्येक पार्थिव शरीर में एक ऐसा जीवनबल रहता है, जो अपनी शक्ति-भर हमारे लिये जगानार प्रयत्न किया करता है, यद्यपि हम लोग अपनी लापरवाही से स्वाभाविक जीवन के मुख्य-मुख्य नियमों का भी उल्लंघन करने रहते हैं। जिसको हम बीमारी कहते हैं, उसका एक बड़ा भाग इस जीवन बल का स्वाकामी प्रयत्न है—और खंग करनेवाला वस्तु है। जीवन अवधियों की धोर से वह अधोगति नहीं, किंतु उदयगति है। यह प्रयत्न समाधारण और अस्वाभाविक होता है; क्योंकि समाधारण और अस्वाभाविक दशा पहले ही उत्पन्न कर दी जा चुकी है, और समाधारण दशा को खाने के लिये उस जीवनबल को अपने मारे खंगा करनेवाले प्रयत्न को खगाना पड़ता है।

जीवनबल का पहला उद्देश्य आत्म-रक्षा है। जहाँ-जहाँ जीवन

है, वहाँ-वहाँ यह उद्देश प्रकट दिखाई देता है। इसी के प्रभाव से न और मादा एकत्र खिंचते हैं, गर्भस्थित जीव और बच्चे को पोषण मिलता है, माता संतान-जनन की दुस्सह पीड़ा सहती है, कठिन-मेकठिन दुरवस्था में भी माता पिता अपने बच्चों की रक्षा करते हैं क्यों ? क्योंकि इन सब बातों का अर्थ जातिगत रक्षा की प्रवृत्ति है व्यक्तिगत रक्षा की प्रवृत्ति भी ऐसी ही बलवती होती है। “मनुष्य अपनी जिंदगी के लिये सब कुछ अर्पण कर सकता है”, ऐसा एक लेखक ने लिखा है। यद्यपि यह कथन बड़े आदमियों पर पूरा नहीं चल सकता (स्मरण करो—प्राण जाय बरु बचन न जाहीं) तो भी आत्म-रक्षा की दृढ़ प्रवृत्ति के उदाहरण देने के लिये यथेष्ट “सच” है। यह प्रवृत्ति बुद्धि की प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु, बहुत नीचे से, सत्ता की नाव ही से इसकी भी जड़ है। यह प्रवृत्ति बुद्धि को भी दबाकर अपने आप ऊपर हो जाती है। जब कभी मनुष्य अपनी बुद्धि से दृढ़ संकल्प कर लेता है कि इस ज़तरे की जगह पर मैं अटक रहा रहूँगा, तो भी यह प्रवृत्ति उसकी टोंगों को भगा ले जाती है। इसी प्रवृत्ति के परावर्ती होकर दूरे दूर जहाज़ का मनुष्य सम्मता के बड़े-बड़े नियमों को तोड़ देता है और अपने ही साथी को मारकर उसका खह पी लेता है; भयंकर काल-कोठरी (Black Hole) के मनुष्यों को इसी प्रवृत्ति ने परा बना दिया था। यह प्रवृत्ति अपने ही और भिन्न दशाओं में अपनी प्रभुता दिखाना चाहती है। यह सर्वता जीवन—अधिक जीवन, स्वास्थ्य—अधिक स्वास्थ्य के प्रयत्न में लगी रहती है। यही प्रवृत्ति हमें—स्वस्थ बनाने के अभिप्राय से—बहुधा बीमार कर देती है; यही प्रवृत्ति उस विनैत्र अस्मिन् प्रार्थना का हमारे भीतर से निराकरण के लिये, जिनके हमने अपनी जागरूकता और मूर्खता में भोत डाल रखा है, हमें बीमार कर देती है।

श्रीमं भुवक की मूर्त की आंतरिक प्रभुता मूर्त के गिरे को सर्वता





अवस्था में पूरा कार्य करता है। यदि जीवनभर अपनी दृष्टि के अनुसार मनुष्य तुम्हारे लिये नहीं कर पाता तो भी वह निराश होकर प्रयत्न नहीं छोड़ता; किंतु अवस्था के अनुकूल होकर अपनी शक्ति-भर काम करने में बुद्ध उठा नहीं रखता। उसको पूरा अथकाश और मार्ग दीजिए, वह आपको पूरी स्वस्थ दशा में रखेगा; अपनी अस्वाभाविक और अविचार की रहन-चलन से उसे बाँध रखने तो भी वह तुम्हें सँभालने ही का यत्न करता रहेगा और अंत तक अपनी शक्ति-भर तुम्हारी सेवा करता रहेगा, चाहे तुम कितनी ही कृतज्ञता और मूल्यता करते रहोगे, पर वह अंत तक तुम्हारे हित के लिये लड़ता रहेगा। जीवन के प्रत्येक रूपांतर में अवस्था के अनुकूल होने की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखलाई देती है। यदि कोई बीज किसी चट्टान की दरा में पड़ जाता है तो जब वह उगने लगता है तो चट्टान के रूप के अनुकूल फूट-पूट जाता है, या यदि वह पूरा चलवान् हुआ तो चट्टान को भी फाड़ देता है और स्वयं अपने स्वाभाविक रूप में ऊपर निकलता है। वैसे ही मनुष्य की दशा में भी, जब मनुष्य सब प्रकार की आबोहवा और अवस्था में जीने का प्रबंध करता है, तब वह जीवनभर भी अपने को अवस्था के अनुकूल बना लेता है, और जहाँ यह चट्टान को न तोड़ सका, वहाँ भी धँकुर को टेढ़ा-मेढ़ा बनाकर जमा ही दिया और उस पौदे को जीता-जागता और हट रखा। जब तक स्वास्थ्य की उचित रीतियों का पालन होता रहता है तब तक कोई शरीरावयव रूग्णावस्था को नहीं पहुँचता। स्वास्थ्य स्वाभाविक दशा का जीवन है, और अस्वस्थता अस्वाभाविक दशा की ज़िंदगी है। जिन अवस्थाओं ने मनुष्य को इस स्वस्थ और चलवान् "जीवन" तक पहुँचाया, वे अवस्थाएँ इसे स्वस्थ और चलवान् ही रखतीं। यदि आप अच्छा अवसर देंगे तो वह जीवनभर उत्तम-मे-उत्तम कार्य कर निर-वेगा; परंतु यदि आप अधूरा अवसर देंगे तो वह जी-

कार्य करने के योग्य होगा और थोड़ी-बहुत रम्यावस्था उसका प्रतिफल होगी। हम लोग ऐसी सभ्यता में जी रहे हैं, जिसने कुछ-न-कुछ जीवन का स्वाभाविक तरीका हमारे ऊपर बलान् दाल ही दिया है। हम लोग न स्वाभाविक रीति से भोजन करते, न पानी पीते, न सोते, न सौंम् लेते और न स्वाभाविक रीति से वस्त्र ही पहनते हैं। हम लोगों ने वह-वह काम कर डाले हैं जो हमें नहीं करने चाहिए थे, और उन-उन कामों को नहीं किया, जिन्हें हमें करना चाहिए था, और हमलिये हममें 'स्वास्थ्य' नहीं है।

हमने जीवनबल की उपकारिता का वर्णन कर दिया; इसका कारण यह है कि जिन लोगों ने हम पर विचार नहीं किया है वे लोग हम पर प्रायः कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह योगशास्त्र के हठयोग का एक अंग है, और योगी लोग अपने जीवन में इस पर बहुत बड़ा ध्यान रखते हैं। वे जानते हैं कि जीवनबल बड़ा भारी मित्र और प्रबल सहायक है, और वे करने भीतर इसे स्वच्छंद प्रवाहित होने के लिये इसे पूरा अवकाश देते हैं, और हमकी क्रियाओं में वे यथामात्र बहुत ही कम बाधा पहुँचाने हैं। वे जानते हैं कि "हमारा जीवनबल हमारी भलाई और स्वास्थ्य के लिये निरंतर जगा रहता है", और वे इसका अत्यंत विरवाम करते हैं।

हठयोग के साधनों की अधिकांश सफलता उन्हीं तरीकों पर अवलंबित है जिन तरीकों से जीवनबल स्वच्छंद और बिना बाधा के कार्य करता रहे। हठयोग के तरीके और अभ्यास इसी अभिप्राय पर उद्दिष्ट हैं। हठयोगी का यही उद्देश रहता है कि जीवनबल के मार्ग को रुकावटों से साफ रखने और उसके रूप के लिये साफ चिह्न पथ खुला रखने। उसके उपदेशों का पाठन कीजिए, आपका मखा हो आसना।

## पाँचवाँ अध्याय

### शरीर की रसायनशास्त्र

इस छोटी किताब का यह उद्देश नहीं है कि यह शरीर-विद्या की पाठ्य पुस्तक हो; परंतु जब हम देखते हैं कि बहुत-से लोग ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न शारीरिक अवयवों की प्रकृति, उनके कार्य और उनके लाभों से कुछ भी जानकारी नहीं रखते; इसलिये शरीर के उन मुख्य-मुख्य अवयवों का वर्णन करना, जो भोजन के पचाने और उसका रस लेने तथा शरीर को पोषण करने का काम करते हैं, मैं अरुद्धा समझता हूँ। ये ही अवयव शरीर की रासायनिक क्रियाओं को करते हैं।

पचानेवाली कला के प्रथम अंग दाँतों पर पहले विचार करना चाहिए। प्रकृति ने हमें दाँत दिए हैं, जिनमें हम अपने भोजन को काटते हैं और इस प्रकार पोषक खाते हैं। इस क्रिया में भोजन इतना बारीक हो जाता है कि वह मुँह की छार और आमाशय के पचानेवाले द्रव रसायनों के साथ घुल जाने के योग्य बन जाता है। इसके परमाणु वह द्रव रस में परिवर्तित होता है, जिसमें पोषण करनेवाले रस को शीघ्र शरीर धारण करे और धारण में मिश्र हो। यह उर्मा पुरानी कहानी को बार बार कहना और फिर दोहराना है; परंतु हमारे पाठकों में से किने वे हैं जो ऐसा कार्य करते हैं, जिसमें मायूस होता है कि वे नहीं जानते कि दाँत किस अभिजात से दिए गए हैं। वे अपने भोजन को शीघ्रता से निगल जाते हैं, मानो दाँत केवल दिग्गज के द्विपे हों दिए गए थे, और वे इस प्रकार क्रिया करते हैं मानो चिड़ियों की भाँति उनके अंगों में

प्रकृति द्वारा पथरी दी गई है कि ये भी उसी तरह इस पथरी द्वारा अपने निगले हुए स्थान को पोस डालें। याद रखो; मित्रो, तुम्हारे दाँत तुम्हें मतलब से दिए गए थे और यह विचार कर लो कि यदि प्रकृति की मंशा भोजन को निगलने ही की होती, तो वह दाँतों के स्थान से पथरी दिए होती। चागे खजकर दाँतों के समुचित प्रयोग के विषय में हम बहुत कुछ कहेंगे, क्योंकि दृष्टयोग से हमका बहुत आवश्यक संबंध है, जैसा कि थोड़ी देर में आपको विदित होगा।

जब चागे छार खवण करनेवाले मांस-मंडों पर विचार करना चाहिए। ये मांस-मंड सरया में छु हैं, जिनमें से चार तो चीहों और भीम के भीचे हैं, और दो गालों में बानों के सामने दोनों बगल में हैं। इनका मुख्य कार्य, जो जाना गया है, यह है कि सार को बनावे और उसे खवण करें। जब आवश्यकता पड़ती है तब पही छार मुँह के भीतर की अनेक छोटी-छोटी नाजियों से बहने लगती है और उस भोजन से मिलती जाती है जो दाँतों से कुचड़ा या ममला आकर बारीक किया जा रहा है। भोजन जितना ही दाँतों से कुचड़ा या पीसा जायगा छार उतना ही अच्छी तरह से उसके प्रत्येक अंश में पहुँचकर मिश्र जायगा और उतना ही अधिक कार्य करेंगी। छार भोजन को सीछा भी कर देती है जिसमें वह बहुत सामान्य से छोटा जा सके, यह कार्य उसका, उसके अन्य प्रधान कार्यों का बंधन अनुपाती है। हमका सर्वप्रधान कार्य, जैसा कि परिकर्मी विज्ञान द्वारा सिद्धाया जाता है, रासायनिक किया करना है, जिस किया से सेहंसार काया हुआ पदार्थ रहस्य में परिवर्तित हो जाता है, और इस प्रकार के रासन के किया-ककार से पहली बिना हो जाती है।

यहाँ छार-छार की बरी दूर एक और बसा है। छार मर खोग

## हठयोग

इस लार के विषय में जानते हैं; पर थाप लोगों में कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इस प्रकार भोजन करते हैं, जिससे प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुकूल लार से काम लेने का अवसर मिलता हो। आप तो स्वाने को मुँह में जरा इधर उधर घुमाकर निगल जाते हैं, और प्रकृति की उन तरकीबों ही को विफल कर देते हैं, जिनसे लिये उमने इतनी कार्रवाइयाँ की थीं और जिनको संपादित करने के लिये उसने ऐसी-ऐसी भारीक और विचित्र कलों को बनाया था। परंतु प्रकृति भी अपनी तरकीबों की अवहेलना, लापरवाही और निरादर के कारण तुम पर भी यह दोषने का प्रबंध कर लेती है। प्रकृति बहुत स्मरण रखती है और तुमसे उस बात को अवगत कराती है।

इसमें यहाँ पर उम जिद्दा को न भूख जाता आदिष्ट, जिग बेचारी से मोघयुक्त बचन बोलने, जहाँ बचाव और मिश्रण करने, भूख को बने, शायद उठाने और निद्रा करने के बीच काम किए जाते हैं। इस जिद्दा को शरीर के योग्य करनेवाले क्रिया-व्यवहार में एक मुख्य काम करना पड़ता है। मोक्ष करनेवाले समय पर अनेक प्रकार की गति कर-करके भोजन को उलटनी, पकाना और फेंकना रहनी है और इसी प्रकार भोजन के खोइने में भी वह आनी गति में गिरा-वता पहुँचाती है। इसके अनिष्टिक वह शायद ही दृष्टि है और जो भोजन भीतर के प्रवेश बिना खाना है उम पर भरा हुआ वह विचार करनी है।

आप लोगों ने दूध, आर खाना करनेवाले प्राणियों और जिद्दा के स्वाभाविक रूपोंवालों को मुखा दिया है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि वे केवल खानेकी पूरी सेवा न कर सकें। यदि आप केवल उलट भोजन करने वाले और समझारी के साथ भोजन के स्वाभाविक तरीकों को अवगत करें तो आप कोई उम बनाते

का प्रतिपालन करते हुए पावेंगे, और वे फिर आपकी पूरी-पूरी सेवा करने लग जायेंगे। वे सदैव अच्छे मित्र और सेवक हैं उन पर विधाम, भरोसा और उत्तरदायित्व रखने से वे अच्छा-से-अच्छा काम कर देते हैं।

जब भोजन दूध कुचल पीसकर लार से परिपूर्ण कर दिया जाता है तब वह गले से होकर आमाशय में जाता है। गले का निचला भाग भी एक विशेष प्रकार की गति करता है जिसमें भोजन के अणु नीचे चले जाने हैं और यह क्रिया भी निगलने की क्रिया का एक खंड है। भोजन के छोड़दार भाग के शहर में परिवर्तन होने की क्रिया जो लार से मुँह में प्रारंभ हुई थी वह भोजन के गले में होकर आते हुए भी जारी रहती है; परंतु जब भोजन आमाशय में पहुँच जाता है तब एकदम बंद हो जाती है। विचारपूर्वक भोजन करने के विषय को अध्ययन करने समय हम बात पर दृष्टि ध्यान देना चाहिए कि यदि भोजन मुँह में जल्दी उछल-पुछलकर निगल लिया जायगा तो हममें लार का घमर बहुत ही कम पहुँचा रहेगा और प्रकृति के प्राणी काम करने के लिये अयोग्य दशा में रहेगा।

आमाशय जारपानी की शक्ल का एक थैला है। इसमें दाईं ओर तक और वही-वही अधिक भी वस्तु घँट सकती है। भोजन गले में होता हुआ आमाशय के ऊपरी काम भाग में हृदय के ठीक नीचे प्रवेश करता है। यहाँ की क्रियाओं के हो जाने पर भोजन आमाशय के निचले दक्षिण भाग से पतलों चँतड़ियों में एक ऐसे द्वार से प्रवेश करता है, जो ऐसा अद्भुत बना हुआ है कि आमाशय से चीज़ें तो हममें आसानी से पहुँच सकती हैं, परंतु इन पतलों चँतड़ियों से ऊपर आमाशय में उनका पुनः चढ़ जाना कभी नहीं हो सकता। यह द्वार अपने वर्ण पर सदा बंद रहता है और कभी भोला नहीं देना।

आमाशय एक बड़ा रसायनशाला है, जहाँ भोजन के साथ

## हठयोग

रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, जो भोजन को इस योग्य बना देती हैं कि उसका रस रुधिर-रूप में हो सके, जो रुधिर सारे शरीर में प्रवाहित हुआ करता है और शरीर के सब अंगों और अवयवों को बनाता, मरम्मत करता, बढ़ करता और बढ़ाता रहता है।

आमाशय का भीतरी भाग एक जसजसों मिट्टी से आच्छादित रहता है; इस मिट्टी में अनगिनत छोटे-छोटे मुलायम छार-से निकले रहते हैं जिन सबका मुँह आमाशय में खुला रहता है, और इन छारों के निर्द्वन्द्व ही बारीक-बारीक रुधिरवाहिनी नलियों का जाल सा फैला रहता है, जिन नलियों की दीवारें अत्यंत पतली होती हैं। इसी से वह आश्चर्यकारी द्रव, जिसे आमाशय द्रव कहते हैं, सवा करता है। यह आमाशय द्रव एक बहुत बलवान् अर्क है जो भोजन के नाइट्रोजनिक भाग के गलाने का काम करता है। यह उस शक्ति पर भी क्रिया करता है जो जेईदार पदार्थों को तार से मिजने से बनता है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह अर्क तीखा होता है और इसमें वह रासायनिक पदार्थ होता है, जिसे पेप्सिन कहते हैं; यही पेप्सिन बड़ा कार्य करता है, और भोजन के पचाने में प्रधान काम इसी का होता है।

साधारण स्वाभाविक मनुष्य के स्वस्थ शरीर में आमाशय कड़ी-कड़ी एक गोलन आमाशय द्रव नियंत्रित रहता है, और इसे घस के पचाने के काम में लाता है। जब अन्न आमाशय में पहुँचता है तो ये छोटे मुलायम छार, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, काटती मित्रदार में आमाशय द्रव बहा देते हैं, जो घस में द्रव मिज जाता है। तब आमाशय एक प्रहार की मंथन क्रिया करने लगता है, जिससे खाया हुआ सना घस लुगरी की मूर्ति इधर-उधर घूमा करता है; इधर से उधर फेंका जाता है, सना जाता है, मचा जाता है और मूँचा जाता है, जिससे वह आमाशय द्रव इस लुगरी के ज़र्रे-ज़र्रे में

तरह से मिल जाता है। प्रवृत्ति मानस इस आमाशय के संचालन में कुछ ऐसा आश्रयजनक काम करता है कि जब नेत्र दी हुई कल की भाँति आमाशय को चलाता रहता है।

यदि आमाशय को अच्छी तरह से तैयार किया हुआ, भली भाँति दाँतों से पीसा हुआ, और फाँसी तौर से लार मिलाया हुआ भोजन मिलता है तो आमाशय स्त्री कल बहुत अच्छा काम कर दिखलाती है। परंतु, यदि भोजन आमाशय के योग्य तैयार नहीं किया गया रहता है, जैसा कि अक्सर हुआ करता है, और यदि वह अधूरा कुचला रहता है, अथवा जल्दी-जल्दी निगला हुआ रहता है, या यदि आमाशय नाना प्रकार के विचित्र द्रव्यों से ढँस-ढँसकर भरा हुआ रहता है, सभी बड़ी दिक्कत पड़ जाती है। ऐसी दशा में स्वाभाविक पाचन-क्रिया के होने के स्थान में आमाशय अपना कुछ भी काम नहीं कर सकती, जिसमें सदन शुरू हो जाती है, और आमाशय सड़ते-गलने पदार्थ का वर्तन—या यों कहिए कि सड़े पाँस का वर्तन—बन जाता है। यदि मनुष्य एक बार देख पाते कि उनका आमाशय कैसे सड़े पदार्थ का वर्तन बन गया है तो वे ठीक तरह से खाना खाने की बात से जागरूक हो न करते और उसे ध्यान देकर सुनते।

खाने की अस्वाभाविक आदत से उत्पन्न यह सदन अक्सर जीर्ण या पुरानी हो जाती है, और ऐसी दशाओं में परिणत हो जाती है, जिसे अपच या बदहजमी कहते हैं या ऐसी ही कोई दूसरी बीमारी खड़ी हो जाती है। यह सदन बनी ही रहती है कि दूसरा खाना पहुँच जाता है और पहली सदन इस खाने में भी सदन पैदा कर देती है; इस तरह से आमाशय पाँस के झमीर का नित्य ही वर्तन बना रहती है। इससे आमाशय की स्वाभाविक क्रिया निर्यस्त पड़ती जाती है, और इसकी तरह जलजली, मुलायम, पतली और निर्यस्त



हो जाती है। मुलायम स्त्रार सब मुँहबंद हो जाते हैं, और सात पाचक यत्र नियंत्रण और दृढा-कृत हो जाता है। ऐसी दशा में बड़ी अधरची लुगदी पतली अंतर्द्वियों में जाती है; सङ्ग के कारण इसमें एक प्रकार का तेजाव उत्पन्न हो जाता है, और परिणाम यह होता है कि सारा शरीर क्रमशः विपाक और अपुष्ट हो जाता है। भोजन की लुगदी आमाशय त्र्य से भरपूर होकर, और द्रव अच्छी तरह से श्लाशय द्वारा मथी और गूँधी जाकर आमाशय के निचले दाहने द्वार से पतली अंतर्द्वी में जाती है।

यह पतली अंतर्द्वी नली की भौति की एक नहर है, जिसकी गँडुरियों ऐसी कारीगरी के साथ एक दूसरी पर पड़ी रहती हैं कि बहुत ही थोड़ी जगह घेरे रहती हैं, यद्यपि लंबाई में यह अंतर्द्वी २० से ३० फीट तक लंबी होती है। इस अंतर्द्वी की भीतरी दीवार मज्जमल के भौति के पदार्थ से मढ़ी रहती है, और लंबाई में बहुत दूर तक उसमें आड़ी-आड़ी सिकुड़नें पड़ी रहती हैं, जो सिकुड़नें अंतर्द्वी की पलकों की भौति नीचे-ऊपर गति किया करती हैं, और अंतर्द्वी के अर्द्ध में आगे-पीछे हिलोरे मारा करती हैं, जिससे भोजन की लुगदी की गति रुका करती है और साथ तथा रस के खिंचाव के लिये अधिक सतह मिला करती है। इसके मदन की मज्जमली सूरत अनगिनत छोटे-छोटे उभड़े हुए रेशों के कारण होती है, जो धारक कालीन की भौति के होते हैं और उन्हें अंतर्द्वी के रेशे कहते हैं। इनका कार्य आगे चलकर वर्णन किया जायगा।

उ्यों ही भोजन की लुगदी इस पतली अंतर्द्वी में पहुँचती है त्यों ही इसमें एक विरोध अर्द्ध मिलने लगता है, जिसे पित्त कहते हैं; यह अर्द्ध उसमें द्रव भरपूर पुन जाता है। यह पित्त बहुत से से रहता है और एक सुदृढ पैली में, जिसे पित्ताशय कहते हैं, एकत्रित रहता है। करोड़ों दो हार्ड के पित्त इस पतली अंतर्द्वी में लुगदी के साथ

मिलने में निम्न स्वर्च होती है। इस विच का कार्य, पैंक्रिया के अर्क के साथ मिलकर रोगान्तर पदार्थों को रम बनाने, और अंतर्दी में लुगदी को मदन रोकने का है, और यह आमाशय शब्द को भी, जो अब तक अपना काम पूरा कर चुका है, अब निकम्मा बना देती है। पैंक्रिया का अर्क पैंक्रिया अर्थात् उस लंबे अवयव से निकलता है, जो आमाशय के पीछे रहता है। पैंक्रिया के अर्क का यह काम है कि भोजन के रोगान्तर पदार्थों को, पतली अंतर्दी में अन्यान्य पदार्थों के साथ में रम रूप में करके शरीर में विच जाने के योग्य पोषण बना देता है। इस काम में पैंक्रिया का एक पाहंट अर्क रोज़ स्वर्च होता है।

पतली अंतर्दी की मज्जमली मदन पर के बाल की भाँति के छागों रेरो ( जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है ) अपनी लगातार हिलोरो-वाली गति को प्रायम रखते हैं। यह गति उस गोल लुगदी के ऊपर काम करती है जो पतली अंतर्दी में होकर गमन करती है। ये रेरो लगातार गति किया करते हैं, और लुगदी में के रम को चाट-चाटकर और नीचे-नीचेकर शरीर में भेजने रहते हैं।

जिन क्रिया-प्रकारों से भोजन परिवर्तित होकर रधिर बन जाता है और शरीर के सब अवयवों में भेजा जाता है वे नीचे लिखे जाते हैं—दाँतों से पोषना, मुँह के छार का मिळाना, घोंट जाना, आमाशय और पतली अंतर्दियों की पाचन-क्रियाएँ, रम का चूसना, शरीर में रम का घुमाना और रधिर को शरीर का अपना खेना। एक बार हम अर्द्ध से इन क्रियाओं पर फिर विचार कर जायें कि जिसमें ये भूख न जायें।

भोजन को चबाना और पोषना दाँतों से होता है। घोंट, जीभ और गलफड़े भी इस काम में सहायता करते हैं। इसमें भोजन बहुत ही बारीक विभ जाता है जिससे वह छार में घुल जाने के योग्य बन जाता है।

सार में घुल जाता यह क्रिया है जिससे दूधों से पोषा हुआ भोजन उम सार में मिलकर सम्भव हो जाता है जो सार में के सार बरानेवाले घटककों में बड़ा भाग है। सार भोजन के घटकों पर काम करना है, और पहले तो उसे डेक्स्ट्रीन (Dextrine) फिर ग्लूकोस (Glucose) बना देता है, जिससे यह घुल जाता है। सार में एक पदार्थ होता है जिसे पीटैलीन (Pytaline) कहते हैं, यही पीटैलीन रासायनिक क्रिया करके अपने अनुकूल द्रव्यों में एक प्रकार का उन्मूलन ला देता है।

खाई हुई चीजों को ऐसे रूप में परिवर्तित कर देना कि उसका रस शरीर में शोष लेने और शरीर रूप में हो जाने के योग्य हो जाय, यही पाचन-क्रिया है। उधों ही भोजन आमाशय में पहुँचता है त्यों ही पाचन-क्रिया प्रारंभ हो जाती है। आमाशय से आमाशय द्रव द्रव स्रवण करने लगता है, और वह खाई हुई चीजों के साथ मिलकर बहुत श्वशी तरह से मथा जाता है, तब वह खाए हुए मांस के परमाणुओं को पृथक्-पृथक् करता है, मांस के परमाणुओं से चर्बी को पृथक् कर देता है और एलब्यूमिनस (Albuminous) द्रव्यों को, जैसे दुग्ध मांस, गेहूँ का सत, आड़े की सक्केदी, इन पदार्थों को एलब्यूमाइनस (Albuminose) बना देता है, और इस रूप में वे शरीर द्वारा चूसे और अपनाए जाने के योग्य हो जाते हैं। आमाशय में जो भोजन का रूप-परिवर्तन होता है वह आमाशय द्रव में के एक मसाला जिसे पेप्सिन (Pepsin) कहते हैं, उसी के द्वारा होता है। इसके साथ-साथ आमाशय द्रव की और भी तेजाबी चीजें इसे सहायता पहुँचाती हैं। जब तक आमाशय द्वारा पाचन-क्रिया होती रहती है, तब तक भोजन में का द्रव भाग, जो पानी पिया गया है, और जो पाचन-क्रिया में खाए हुए भोजन

घटित किया गया है, दोनों आमाशय के मोखनेवाले अंगों द्वारा मोख लिए जाने हैं और रुधिर में पहुँचा दिए जाने हैं, और भोजन में के दृढ़ द्रव्य आमाशय की गति के द्वारा और भी अधिक मधे जाने हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं । आधे घंटे में भोजन के दृढ़ भाग भूरे और लज्जने पदार्थ के रूप में आमाशय से निकलने लगते हैं; इन्हें चाइम (Chyme) कहते हैं । यह पदार्थ भोजन में के शर्करा, नमक, लोह के परिवर्तित रूपांतरों, चर्बी, मांस के रेशे और एल्ब्यूमाइनोस (Albuminose) का सम्मिश्रण होता है ।

यह चाइम (Chyme) आमाशय से निकलकर पतली अंतदी में प्रवेश करता है, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं. और पैन्क्रिएटिक (Pancreatic) सहा अंतदी के अर्क और पित्त से मिलता है, और अंतदी द्वारा पाचन होने लगता है । भोजन का वह भाग जो अब तक नहीं गला था उसको ये सब अर्क गलाते हैं । पाचन-क्रिया अंतदी द्वारा चाइम (Chyme) को तीन पदार्थों में बदल डालती है, जिन्हें ( १ ) पेप्टोन (Peptona) जो एल्ब्यूमाइनस (Albuminous) अंश के पाचन से बनता है; ( २ ) चाइल (Chyle) जो कि रोगान के शर्वन से बनता है; ( ३ ) ग्लूकोस (Glucose) जो कि भोजन के लेहदार पदार्थों से बनता है, कहते हैं । ये सब पदार्थ अधिकतर रुधिर में पहुँचने हैं और उसके अंग बन जाते हैं, और शेष थोड़ा वस्तु पतली अंतदी से निकलकर एक क्रियाद्वारा दरवाजे की राह बड़ी अंतदी या मलाशय में पहुँचती है, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे ।

श्लेष्मा या स्निग्ध उस क्रिया को कहते हैं जिससे ऊपर लिखे हुए रस, जो पाचन-क्रिया द्वारा बने हुए रहते हैं, नलियों और अन्य रसाक्तों मागों द्वारा खींचे जाते हैं । पानी और अन्य अर्क, जो आमाशय के पाचन द्वारा खाने की सुगंधी में से

हृदय है, ये आमाशय के द्वार पर के धून द्वारा नीचे तिर जाने हैं और उभी द्वार की रग के द्वारा यकृत में पहुँचा दिए जाते हैं। पचनी अंशियों द्वारा जो पेप्टोन (Peptone) और ग्लूकोस (Glucose)-नामक रस नीचे जाते हैं, ये भी पचनी अंशियों के बाज की भोलियाओं रेतों द्वारा नीचे गहर द्वारवाली रग में होने हुए यकृत में पहुँचते हैं। यकृत में होकर जहाँ इन रग यकृत द्वारा क्रियाएँ होती हैं, जिनका आगे पत्रकर यकृत के विषय में वर्णन होगा, वे रस हृदय में पहुँचते हैं। रोगानी शर्वत चाल (Chyle) जो पेप्टोन (Peptone) और ग्लूकोस (Glucose) के निकल जाने पर भोजन का शेष अंश रह जाता है यह भी लैक्टल (Lactal)-नामक रग द्वारा छाती की नलिका में पहुँचाया जाता है, जहाँ से यह भी रुधिर में पहुँचता है। इसका वर्णन आगे रुधिर-संचार के विषय में किया जाएगा। रुधिर-संचार के अध्याय में हम इस बात का विवरण देंगे कि रुधिर कैसे पचाए हुए अन्न से पोषण खींचकर शरीर के सब भागों में पहुँचाता है, और कैसे प्रत्येक रेंजा, ज़रा, अवयव और भाग में वह सामग्री पहुँचाता है, जिससे इन रेंजों, ज़रों, अवयवों और भागों की रचना और मरम्मत होती है और शरीर बढ़ता, बिकसता और पुष्ट होता है। यकृत में से पित्त सत्वा करती हैं जो पतली अंतद्वियों में पहुँचती हैं, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। यकृत पृष्ठ और द्रव्य को संचय करता है जिसे ग्लाइकोजन (Glycogen) कहते हैं; यह उन पचे हुए रसों से बनता है जो द्वार के रसों द्वारा लाए हुए रहते हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह ग्लाइकोजन (Glycogen) यकृत में संचय होता है और परचाव क्रमशः पाचन के बीच-बीच में ग्लूकोस (Glucose) अर्थात् ऐसे द्रव्य में परिवर्तित हुआ करता है जो अंगूर की शक्कर की तरह का होता है। पैनक्रियास (Pan-

creas) में से पैनक्रिएटिक (Pancreatic) अर्क निकलते हैं, जो कि पतली छँतदियों में जाकर उन छँतदियों द्वारा पाचन-क्रिया को सहायता पहुँचाते हैं, और विशेष करके भोजन के रोगानदार अंश पर काम करते हैं। गुर्दे कमर में स्थापित हैं; ये पतली छँतदियों के पीछे रहते हैं। ये संख्या में दो और आकार में सेम के बीज की शक्ल के होते हैं। ये रक्त को, उसमें से यूरिया (Urea)-नामक विषले पदार्थ और अन्य क्रज्जु खीजों को निकालकर, साक़ करते हैं। गुर्दों से प्रारिज किया हुआ अर्क दो नलिकाओं में होकर, जिन्हें यूरेटर (Ureters) कहते हैं, मूत्राशय में जाता है। यह मूत्राशय पेट के सबसे निचले भाग में होता है और मूत्र को वर्तन है, जो मूत्र कि रही अर्क है, जिसमें शरीर की रक्षित भरी रहती है।

इस विषय के इस भाग के वर्णन को छोड़ने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया चाहते हैं कि जब भोजन दाँतों से अधूरा पीसा हुआ और खार से अधूरा मिश्रित हुआ आमाशय और पतली छँतदियों में पहुँचता है—जब कि दाँतों और खार बहानेवाले अवयवों को पूरा काम करने का अवसर नहीं दिया गया है—तब पाचन में बाधा और रुकावट पहुँचनी है, और पचानेवाले अवयवों के जिम्मे उनकी शक्ति से बाहर काम हो जाना है, और जो काम उनमें होना चाहिए वह नहीं हो सकता। यह बात वैसी ही है जैसे एक आदमी से कहा जाय कि तुम अपने जिम्मे का भी पूरा काम करो और इस काम को भी करो जिसका तुम्हारे काम से पहले ही उत्तम हो जाना चाहिए था। यह समझेंदार से यह कहना है कि तुम समझें भी बनाने जाओ और साथ-ही-साथ आस भी पीसने जाओ और हाथ भी रकते जाओ। अब आमाशय और पतली छँतदियों में जो रस छोड़नेवाले अवयव हैं वे अवरस बिम्ब-ज-बिम्ब द्रव

व्यर्थ को लोचेंगे, क्योंकि यही उनका कार्य ही ठहरा। यदि प्रा  
 न्तर्गत् लोचने के लिये गुह्य गुह्यक अन्तरंग न होंगे तो वे आमाशुष और  
 वनजी रीतिविधि में के लक्षणे-गङ्गाके रूप ही पदार्थों को लोचेंगे और उन्हें  
 पित्त में पहुँचा देंगे। तबिह हमही दूरि पदार्थों को मारे शरीर में, यहाँ  
 तक कि शरीरक में भी, पहुँचा देगा। जब मनुष्य इस प्रकार अपने  
 शरीर में आप ही विष भर रहे हैं तब ये पित्त की अधिकता,  
 शरीर रस आदि की शिकायतें करें तो हममें आश्चर्य ही क्या है।

# छठा अध्याय

## जीवनद्रव

हम अपने पिछले अध्याय में कह आए हैं कि जिस अंग को हम लोग खाते हैं वह क्रमशः ऐसे पदार्थों में कैसे परिवर्तित हो जाता है जो कि रुधिर द्वारा शरीर के और अपनाए जा सकते हैं, और यह रुधिर शरीर के सब भागों में कैसे पोषण पहुँचाता है, जहाँ शारीरिक मनुष्य के सब अंग बनते, मरम्मत होते और नष्ट किए जाते रहते हैं। इस अध्याय में हम संक्षेप से यह दिखलावेंगे कि रुधिर की ये क्रियाएँ कैसे होती हैं।

पचे भोजन में का पोषण करनेवाला भाग लिपिकर रुधिर हो जाता है। यही रुधिर धमनियों द्वारा शरीर के रेशे-रेशे और ज़र्रे-ज़र्रे तक पहुँचता है कि जिसमें उसकी रचना और मरम्मत करने की क्रियाएँ होती रहें। फिर यही रुधिर अन्य नलियों द्वारा लौट भी आता है और अपने साथ शरीर के टूटे-फूटे ज़र्रे और अन्य प्रजूल और रद्दी चीज़ों को लेता आता है कि जिसमें रद्दी चीज़ें फेफड़ों और शरीर के दूसरे माध्यम करनेवाले अवयवों द्वारा शरीर से बाहर फेंक दी जावे। इसी रुधिर के प्रवाह को, जो हृदय से बाहर की ओर शरीर के प्रत्येक अंगों तक, और प्रत्येक अंगों से भीतर तक की ओर हुआ करता है, रुधिर-संचार कहते हैं।

इस आरचयंत्रक शारीरिक कर्म को जो इंजिन चलाना है उसे हृदय कहते हैं। मैं स्वयं हृदय के वर्णन में आप लोगों का समय न लूँगा; किंतु हृदय कौन-सा काम करता है, उसका वर्णन अवश्य



अब उसी स्थान से प्रारंभ किया जाय जहाँ पिछले अध्याय में हम लोगों ने छोड़ दिया था, अर्थात् उस स्थान से जहाँ अन्न के रस को रुधिर ग्रहण कर और अपना कर हृदय में पहुँचता है, जो हृदय इसे शरीर को पुष्टि पहुँचाने के लिये शरीर में रवाना करता है। रुधिर धमनियों में होकर प्रस्थान करता है। ये धमनियाँ सिकुड़ने और फैलनेवाली नहरें हुआ करती हैं। इनकी शाखाएँ प्रशाखाएँ भी होती हैं। रुधिर बड़ी धमनियों (नहरों) से पतली धमनियों में जाता है; इनमें से और अधिक पतली धमनियों में जाता है, जो बाल से भी इनमें से उन बहुत ही बारीक धमनियों में जाता है, जो बाल से भी अधिक पतली हुआ करती हैं। ये बाल से भी पतली धमनियाँ भी रुधिर-संचार की मार्ग हैं, इनका व्यास  $\frac{1}{1000}$  इंच होता है। ये बहुत ही पतले बाल के सदृश होती हैं। ये धमनियाँ रेशे-रेशे में प्रवेश करके जाल की भाँति फैल जाती हैं, जिससे रुधिर सब अंशों में पहुँच जाता है। इनकी दीवारें बहुत ही पतली हुआ करती हैं, और रुधिर का पोषणकारी भाग इन दीवारों से बहकर रेशे-रेशे द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये बाल-सी पतली धमनियाँ केवल रुधिर को एक-एक रेशे में बहाती ही नहीं, किन्तु अपनी वापसी यात्रा में, जैसा कि अभी धागे वर्णन होगा, रुधिर को खींचती भी हैं और अंतर्दियों के रेशों से रुधिर को खींचकर ऊपर खाने का वर्णन पढ़ते हो चुका है।

बारीक साज सरस धमनियों में, रधिर को प्रवाहित करने लगती हैं जिनसे कि प्रत्येक रेशा रधिर में से पोषण ग्रहण करता है और उसे रचना के काम में लाता है; शरीर के छोटे-छोटे आश्चर्यजनक देहाणु हम कार्य को बड़ी ही सावधानी से करते हैं। ( आगे चलकर इन देहाणुओं के कार्य के विषय में भी कुछ कहा जायगा ) रधिर अपना पोषणभण्डार स्रुचं करके फिर हृदय की ओर अपनी वापसी यात्रा करता है और अपने साथ रेश के रसियान, मृतक देहाणुओं और शरीर के अन्य निष्पक्व द्रव्यों को बटोरता लाता है। यह साज सरस बारीक गिरा मनुष्यों से प्रत्यान करता है परंतु रधिरापवाहक धमनियों में होकर नहीं छौटता, किन्तु रूँची की भौंति के प्रबंध से यह रधिरों-पवाहक ( शरीर के सब अंगों से हृदय में रधिर ले जानेवाला ) पनखी गिराओं में घूम पड़ता है, और उनमें से बड़ी रधिरोंपवाहक गिराओं में होता हुआ हृदय में पहुँचना है। अब फिर दुबारा रधिरापवाहक धमनियों द्वारा यात्रा करके फिर शरीर में फैलने के पड़ने हमके साथ कुछ बिधा होता है। यह फेंकड़ा के समान में पहुँचना है जिनसे हममें की रसियान और मैज भाग करके फेंक दी जायें। किसी हमारे आण्णाय में हम फेंकड़ों की हम बिधा का वर्णन करेंगे।

और आगे बढ़ने के पेरतर हम यह बात बतलाए देते हैं कि एक प्रकार का और भी द्रव पदार्थ होता है जो शरीर में प्रवाहित होता रहता है। इसे पंदा ( Lymph ) कहते हैं और यह बनाकर से रधिर के सरस होता है। हममें कुछ तो रधिर के मण्डाछे रहते हैं जो रधिरवाहक नलिकों की बारांक दीवारों से बहा करने हैं, और कुछ रेश के रदी पदार्थ होने हैं, जिन्हें साज कावे के बाइ पंदा फिर रधिर के हवाले करता है और फिर वे कार्य में जाए जावे लगने हैं। यह पंदा बहुत ही पनखी करों में होकर प्रवाहित होता रहता है, वे पनखी करों हलकी बारीक होती हैं कि सब तरह हममें पंदा हम



रधिर और मित्रदार में भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेच्छा को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति से खाएँगे जिसे “खाना” कहना ही अन्याय है। रधिर जीवन है—आप ही उस रधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है।

अब आइए फेफड़ों के स्मशान पर विचार कीजिए और देखिए कि रधिरोपवाहक शिराओं के उस नीचे, गंदे रधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गंदगी और रदियात से लदा हुआ वापस आया है, कौन-कौन-सी क्रियाएँ होती हैं। पहले स्मशान ही को देखिए।

---

पारा न भरा जाय, ये धौनों में दिगज्जाई लट नहीं देती। ये नहीं बनेक रुधिरोपपादक शिराधों में मिलकर उनमें भरना पंघा छोड़ देती हैं, और तब पंघा हृदय की ओर लौटने हुए गंरे रुधिर में मित्र जाता है। लाघारम (Chyle) भी पतली चीजियों में निरुक्तकर (विप्लवा पाठ देखो) शरीर के निचले भागों से आते हुए पंघा में मिल जाता है और इस तरह से रुधिर में मिल जाता है; इस रस को छोड़कर अन्य सब रस, जो पचे हुए भोजन से निकासे गए होते हैं, द्वार शिरा और बहून द्वारा यात्रा करते हैं; इसलिये यद्यपि ये भिन्न-भिन्न मार्गों से यात्रा करते हैं, परंतु ये सब प्रवाह करते हुए रुधिर में मिल जाते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि रुधिर शरीर का रचनेवाला है, जो सीधे-सीधे या रूपांतरित होकर देह के सब भागों को पोषण और जीवन देता है। यदि रुधिर गुणहीन हुआ अथवा इसका प्रवाह निरुक्त हुआ तो देह के किसी-न-किसी भाग का पोषण अवश्य बाधा में पड़ जायगा और उसका नतीजा खयावस्था होगी। मनुष्य की पूरी तौल का दसवाँ हिस्सा केवल रुधिर होता है। इसका चतुर्थांश के क्लीब हृदय, फेफड़ों, बड़ी धमनियों और शिराओं में रहता है; एक चौथाई मांस-पेशियों में रहता है; शेष भाग देह के शेष भागों और अवयवों में वितरित रहता है। कुल रुधिर का पाँचवाँ भाग मस्तिष्क के प्रयोग में आता है।

रुधिर के विषय में विचार करने में सर्वदा इस बात को स्मरण रखिए कि रुधिर वैसा ही होगा जैसा खाना और जिस तरह से खाना खाकर आप उसे बनावेंगे। आप उत्तम-से-उत्तम रुधिर काफ़ी मिश्रदार में बना सकते हैं यदि आप भोजन को विवेकपूर्वक पसंद करेंगे और यदि आप वैसा ही भोजन भी करेंगे, जैसा कि आपके लिये प्रकृति का उद्देश था। और इसके विषय में आप बहुत बराबर

रुधिर और मित्रदार में भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेष्ट्या को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति में खाएँगे जिसे “खाना” कहना ही अन्याय है। रुधिर जीवन है—आप ही उस रुधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है।

अब आइए पेट-दों के स्मरान पर विचार कीजिए और देखिए कि रुधिरोपवाहक शिराओं के उस भीजे, गंदे रुधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गंदगी और रदियात से छदा हुआ वापस आया है, बौन-बौन-सी क्रियाएँ होती हैं। पहले स्मरान ही को देखिए।

---

## सातवाँ अध्याय देह में का स्पर्शान

स्पर्शान लेने के अणुयुग्म फेफड़े हैं और वे नलियाँ भी जो नाक से फेफड़ों तक गई हुई हैं। फेफड़े संख्या में दो होते हैं और छाती की कोठरी में बीचोबीच की रेखा से एक दाहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर होता है; उन दोनों फेफड़ों के बीच में हृदय, रुधिर की बड़ी-बड़ी नलियाँ और हवा जाने की बड़ी-बड़ी नलियाँ रहती हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपनी जड़ को छोड़कर शेष और छुटा और स्वतंत्र रहता है; इसकी जड़ में हवा की नलियाँ, रुधिरा-पवाहक और रुधिरपवाहक नलियाँ होती हैं जो फेफड़ों को घोंघा और हृदय से जोड़ती हैं। फेफड़े स्पंज के सदृश और अनेक विद्र-घाले होते हैं; इनके रेशे बहुत ही लचीले अर्थात् सिकुड़ने और फैलनेवाले होते हैं। ये बहुत ही बारीक परंतु मजबूत धीले में घिरे रहते हैं, जिस धीले की एक दीवार तो फेफड़े में सटी रहती है और दूसरी छाती की भीतरी दीवार में सटी होती है, और इससे एक प्रकार का द्रव पदार्थ स्रवा करता है जिससे स्पर्शान लेने में धीले की दीवारों एक दूसरे पर आसानी से फिसलाना करती हैं।

स्पर्शान लेने के मार्गों में नासिका के भीतरी मार्ग, फेरिक्स, जेरिक्स, घोंघा और घोंघा की निचली शाखाओं की नलियाँ हैं। जब हम स्पर्शान लेते हैं तब हम नासिका द्वारा हवा भीतर खींचते हैं, जहाँ यह आर्द्र मिश्री के संयोग से गरम हो जाती है; क्योंकि यह आर्द्र मिश्री रुधिर से भरपूर रहती है। हवा फेरिक्स और जेरिक्स में होती हुई घोंघे में पहुँचती है; यह घोंघा नीचे कई

नलिकाओं में विभक्त हो जाता है, जिन्हें घोंघा की शाखा-नलिकाएँ कहते हैं; ये नलिकाएँ भी और महीन महीन अनगिनत नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं, जो फेफड़ों की छोटी-छोटी ठन हवा की कोठरियों में पहुँचती हैं जो फेफड़ों में करोड़ों होती हैं। एक लेखक ने लिखा है कि यदि फेफड़ों की हवावाली कोठरियाँ एक समतल सतह पर फैला दी जावें तो ये चौदह हजार वर्ग फीट जगह घेरेंगी।

हवा फेफड़ों में उस मांसपेशी की चढ़र की क्रिया से खींची जाती है, जो चौड़ी, मज़बूत, चिपटी और चढ़र के सदृश मांसपेशी होती है और जो छाती की कोठरी को पेट से पृथक् करती है। इसकी क्रिया वैसे ही आप से आप हुआ करती है जैसे हृदय की होती है, यद्यपि हम धरनी रक्त इच्छा के बल से कुछ-कुछ अपने आधीन कर सकते हैं। जब यह चढ़र फैलती है तब यह छाती की कोठरी और फेफड़ों के विस्तार को बढ़ा देती है, और इस प्रकार जो रक्त स्थान बनता है उसके भरने के लिये हवा भीतर प्रवेश करती है। जब यह चढ़र सिकुड़ती है तो छाती और फेफड़े भी सिकुड़ते हैं और हवा फेफड़ों से बाहर निकल आती है।

जब फेफड़ों में हवा के साथ कौन-सी क्रिया होती है इसके विचार करने के पहले आइए रधिर-संचार के विषय में देख जायें। रधिर, जैसा कि आप जानते हैं, हृदय द्वारा संचालित होता है और रधिरापवाहक धमनियाँ और बारीक धमनियों में होता हुआ शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है और वहाँ जीवट, पुष्टि और शक्ति देता है। फिर महीन रधिरापवाहक शिराओं और मोटी शिराओं में होता हुआ दूसरे मार्ग से हृदय में लौट आता है, जहाँ से कि वह फेफड़ों में खींचा जाता है।

रधिर जब हृदय से निकलकर रधिरापवाहक धमनियों द्वारा



दायक पदार्थों और शक्तियों से भरा पूरा रहता है। परंतु जब यह रुधिर-पाहक शिराओं द्वारा वापस आता है तब यह गुणहीन, नीला, गँदा और देह के रही पदार्थों से भरा आता है। वह जाने के समय तो हिमालय पहाड़ से निकली हुई पानी की स्वच्छ धारा के सदृश रहता है परंतु लौटने के समय ग्युनिसिपैलिटी की मोरियों के गंदे पानी सा हो जाता है। यह गंदी धार हृदय की दाहनी कोठरी (Auricle) में जाती है। जब यह कोठरी भर जाती है तब यह सिकुड़ती है और उसमें का रुधिर दाहनी की ओर एक छिद्र द्वारा दूसरी कोठरी (Ventricle) में जाता है, और वहाँ से फेफड़ों में पहुँचता है, जहाँ वह लाखों वाक के सदृश महीन रुधिरवाहिनी नलियों द्वारा फेफड़े की हवावाली अलग-अलग कोठरियों में पहुँचता है, जिसका जिक्र पहले हो चुका है। अथ यहाँ पर फेफड़ों की क्रिया पर ध्यान दीजिए।

रुधिर की गंदी धार फेफड़ों की करोड़ों छोटी-छोटी हवावाली कोठरियों में वितरित हो जाती है। अथ श्वास द्वारा हवा भीतर खींची जाती है और हवा में का आक्सीजन, फेफड़ों की पतली रुधिरवाहिनी नलियों की बारीक दीवारों में होकर, जो दीवारें रुधिर रोकने के लिये ताँ काफ़ी मोटी होती हैं परंतु आक्सीजन के प्रवेश के लिये स्थान दे देती हैं, गंदे रुधिर के संपर्क में आता है। जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तो एक प्रकार की अलग होने लगती है, और रुधिर आक्सीजन को ले लेता है और उस कार्बोनिक् एसिड गैस को जो उस रक्तधारा और विपरीत पदार्थों से बनी होती है, जिन्हें रुधिर शरीर के सब अंगों से लाया था। रुधिर जब इस प्रकार स्वच्छ और आक्सीजन मिश्रित हो जाता है तो फिर गुणविरहित, खाल, चमकीला और जीवनदायिनी शक्तियों और पदार्थों से भरपूर होकर हृदय में पहुँचाया जाता है। पहले यह

हृदय की बाईं कोठरी (Auricle) में जाता है, वहाँ से दूसरी बाईं कोठरी (Ventricle) में भेजा जाता है, जहाँ से प्रेरित होकर वह फिर रधिरापवाहिनी धमनियों द्वारा जीवनदान देने के लिये देह के प्रत्येक भागों में भेजा जाता है। यह अनुमान किया गया है कि २४ घंटे के दिन में ३५००० पाइंट रधिर फेफड़ों की बाल-सी पतली नलियों में होकर गुजरता है और सब रधिराणु एक ही क्रतार में होकर गुजरते हैं जिससे अपने दोनों बगलों की ओर के चाकमी-जन से संपर्क करते जाते हैं। जब कोई मनुष्य इन ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों की शारीरिकों पर सविस्तर विचार करता है तो उसे प्रकृति की अनंत सावधानी और चतुराई पर आश्चर्य और प्रशंसा में मग्न हो जाना पड़ता है।

यह बात देखने में आवेगी कि यदि पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा फेफड़ों में न जायगी तो रधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लींटे हुए गंदे रधिर की सफाई न हो सकेगी, और परिणाम यह होगा कि केवल शरीर ही पुष्टि से वंचित न रह जायगा, किन्तु वे रधियात जिनका नष्ट हो जाना आवश्यक था, अब फिर रधिर-संचार में जाती हैं और देह में विष फैलाती हैं, जिससे मृत्यु होती है। गंदी हवा भी ऐसी ही सुराई उत्पन्न करती है पर किंचित् थोड़ी मात्रा में। यह बात भी देखने में आवेगी कि यदि कोई मनुष्य पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा को भीतर न सोँचेगा तो रधिर का कार्य मुनासिब तौर पर न हो सकेगा, और परिणाम यह होगा कि शरीर बहुत कम पुष्ट होगा और रोग पैदा हो जायगा अथवा अस्वास्थ्य की दशा अनुभव होने लगेगी। जो मनुष्य उचित श्वास नहीं लेता उसका रधिर अवरण नीलापन लिए हुए मैले रंग का होता है और उसमें स्वच्छ रधिर की गुण-विशिष्ट लालिमा नहीं पाई जाती। यह प्रायः शरीर को बदरंग कर देने से अपने को प्रकट करता है। उचित श्वास लेने का फल अच्छा

रुधिर-संचार है और अशुद्ध रुधिर-संचार का चिह्न शरीर का अस्वा-  
रंग होना है ।

थोड़े ही ध्यान देने से उचित साँस लेने की प्रधानता समझ में  
आ जायेगी । यदि फेफड़ों की शुद्ध करनेवाली क्रिया से रुधिर साफ  
न किया जायगा तो वह अस्वाभाविक दशा में धमनियों में जायगा;  
न तो यह अशुद्धी तरह से साफ ही होगा और न इसकी वे ही गंदगिर्याँ  
दूर की जा सकेंगी जिनको इसने वापसी यात्रा में शरीर से क्षिपा  
था । ये गंदगिर्याँ जब फिर देह में जावेंगी तो किसी-न-किसी  
बीमारी की सूरत में प्रकट होंगी; या तो किसी रुधिर-रोग के  
रूप में अथवा नहीं तो ऐसे रोग के रूप में प्रकट होंगी जो किसी  
अल्पपुष्ट इंद्रिय, अवयव या रेशे की निर्बल क्रिया से हुन्रा करते हैं ।

रुधिर जब फेफड़ों की काफी हवा से संपर्क रख लेता है तब  
उसकी केवल गंदगिर्याँ ही नहीं दूर हो जाती और विपैली कार्बोनिक  
एसिड गैस ही नहीं पृथक् हो जाती, किंतु वह हवा में से कुछ  
आक्सीजन भी ग्रहण करके अपने में मिला लेता है और शरीर के  
उन सब अंगों में पहुँचा देता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है  
जिससे कि प्रकृति अपना पूरा काम उचित रीति से कर सके ।  
जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तब वह रुधिर के उस  
अंश में मिल जाता है जिसे हीमोग्लोबिन ( Haemoglobin )  
कहते हैं और यह प्रत्येक अणु देह, रेशा, मांसपेशी और अवयव के  
पास पहुँचाया जाता है, जिन्हें वह बलिष्ठ और शक्तिमान् बनाता है  
और निकम्मे देहाणुओं और रेशों के स्थान पर नए सामान जुटा देता  
है, जिन्हें प्रकृति अपने काम में ले आती है । रुधिराणुवाहिनी धमनी  
के शुद्ध रुधिर में २५ प्रति सैकड़ा स्वतंत्र आक्सीजन रहता है ।

आक्सीजन के द्वारा केवल प्रत्येक अंग जीवन्त ही नहीं बनाया  
जाता, किंतु पाचन-क्रिया भी बलुतः भोजन के समुचित रीति से

आक्सीजन मिश्रित होने पर अवलंबित है, और यह मिश्रण तभी होता है जब रुधिर में का आक्सीजन भोजन के संपर्क में आता है और एक प्रकार की जलन उत्पन्न करता है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। इसलिये यह आवश्यक हुआ कि फेफड़ों द्वारा आक्सीजन की पूरी मात्रा ग्रहण की जावे। यही कारण है कि जहाँ फेफड़े निर्बल होते हैं वहाँ अपच का रोग भी माध-ही-माध अवश्य रहना है। इस कथन की पूरी महिमा समझने के लिये आवश्यक है कि यह बात स्मरण रहे कि सारा शरीर पचे और अपनाष्ट हुए भोजन से पोषण पाता है, और अधूरे पाचन और अधूरे रस-ग्रहण का अर्थ अधूरा पुष्ट शरीर है। फेफड़ों को भी पोषण के उर्सी द्वार पर अवलंबित रहना पड़ता है, और यदि अधूरी साँस के कारण रस-ग्रहण भी अधूरा हुआ, जैसा कि सर्वदा हुआ करता है, और फेफड़े कमजोर हो गए, तो वे अपना कार्य करने के लिये और भी अधिक अयोग्य हो जाते हैं तथा शरीर और भी अधिक निर्बल हो जाता है। भोजन और पान के प्रत्येक कण को आक्सीजन से मिश्रित हो जाना चाहिए और तभी उनसे उचित पोषण मिल सकेगा और तभी देह की रहियात ऐसी अवस्था में आ जायेगी कि देह के बाहर निकाल फेंकी जावें। काफ़ी आक्सीजन के अभाव का अर्थ पोषण का अभाव, शुद्धता का अभाव और स्वास्थ्य का अभाव है। सच है “श्वास ही जीवन है।”

रहियात के परिवर्तन अर्थात् सक्राई से एक प्रकार की जलन उत्पन्न होती है, जो गरमी पैदा करती है और शरीर के ताप को समभाव में रखती है। अच्छी श्वास लेनेवाले जुकाम में नहीं फँपते, और उनके शरीर में अच्छा गरम रुधिर पुष्कल रहता है जिसकी वजह से वे बाहरी मौसिम के परिवर्तन को पूरा-पूरा सहन कर लेते हैं।

ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों के अतिरिक्त श्वास-क्रिया से भीतर

अवयवों और मांसपेशियों को कसरत करनी पड़ जाती है, जिस पर पश्चिमी विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया, परंतु योगी लोग उसे प्रशंसन करते हैं ।

अधूरी या छिछली साँस में फेफड़ों की कोठरियों का एक चंदास काम में लाया जाता है, और फेफड़ों की अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है, और आक्सीजन की जितनी ही कमी हुआ करता है, शरीर की उतनी ही हानि होता है । नाच जंतु अपनी स्वाभाविक दशा में सही साँस लेते हैं, और आदि काल के मनुष्य भी वैसा ही करते थे । सभ्य मनुष्यों ने जीवन के अस्वाभाविक तरीके को जो ग्रहण किया—सभ्यता के पीछे-पीछे शैतान बुलाया—तो हमारी श्वास लेने की स्वाभाविक रीति हमसे छूट गई जिसमें मानव जाति की असीम हानि हो गई । मनुष्य की शारीरिक मुक्ति तो सभी होगी जब यह फिर प्रकृति के मार्ग पर लौटेगा ।

# आठवाँ अध्याय

## पोषण

मानव शरीर में लगातार परिवर्तन हो रहा है। हड्डियों के परमाणु, रंजो, मांस, मांसपेशी, रोगान और द्रव द्रव्य लगातार रही जाने जाने हैं, और शरीर में निबाले जाया करते हैं, और शरीर की अद्भुत रसायनशाला में नए-नए परमाणु लगातार रचे जाने हैं और तब रही और पौधे हुए परमाणुओं की जगह पूरी करने के लिये भेजे जाने हैं।

आइए जरा मनुष्य-शरीर की बारीगरी पर पौधों की समता में और कर लें—और स्पष्टगुण यह शरीर समुत्त. पौधों के जीवन में बहुत कुछ मिलता है। पौधों को बीज से चंदुर होने में, और फिर चंदुर से पौधा, उसके फूल, बीज और फल होने में बिब-बिन समुत्तों की आवश्यकता होती है। अगर बहुत सरल है—स्पष्ट वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और पोषणकारी भूमि—ये ही समुत्त सब-बी-सब उसके लिये आवश्यक है कि वह स्पष्ट जीवन को प्राप्त हो। मनुष्य के पार्थिव शरीर के लिये भी ठीक इन्हीं समुत्तों की जरूरत होती है, जिससे वह स्पष्ट, सुदृढ़, बलवान और ठीक रहे। आवश्यक समुत्तों को सूख पाह लिये—स्पष्ट वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और भोजन। हम वायु, सूर्य के प्रकाश और जल के विषय में अन्य आपसों में विचार करेंगे, और वहाँ पाके पोषण-कारी भोजन के विषय में विचार किया जाएगा।

ठीक इसी भाँति जैसे पौधा पौधे-पौधे लगातार बढ़ता है, जैसे ही हम रही के पौधे और उसके स्थाव पर नए प्राणों के स्पष्टिन करने का कार्य करते भी लगातार दिवदान हुआ करता है। हम जेए हम

कारणों और मंत्रों-विशेषों को समझ करनी पड़ जाती है, जिस से  
 रीति-रिवाजों का प्रसार हो नहीं गया, परंतु योगी लोग उसे हू-  
 म्बधते हैं।

ब्रह्म के विद्वत्ता सौम्य में सेइहों की कोशिशों का एक प्रमाण  
 ब्रह्म में लाया जाता है, और सेइहों की अधिकांश शक्ति यह है  
 जानते हैं, और वास्तविकता की जिज्ञासा ही कभी हुआ करता है, रीति  
 को प्रदर्शित ही करते होते हैं। ब्रह्म जंतु प्रपञ्चों स्वाभाविक दूर में  
 सौम्य सौम्य होते हैं, और यदि ब्रह्म के अनुपम भी वैसा ही करते थे।  
 समस्त ब्रह्मों के जीवन के स्वाभाविक तरीके को जो ग्रहण किया—  
 अस्मिक रीति हमने हमें हमें विद्वत्ता मानव जाति की असीम शक्ति  
 है नहीं। ब्रह्म की शक्ति तो तभी होगी जब यह विद्वत्ता  
 शक्ति के मार्ग पर लौटेगा।





गर्भ कार्य की जाकर नहीं रहते, क्योंकि यह मानव प्रकृति के बड़े भाग से संबंध रहता है, यह मनुष्य के प्रकृति मानव के बड़े एक भाग है।

संपूर्ण शरीर और उसके कुछ भाग स्वस्थ, बल और जीवन्त के दो अंगों के द्वारा अगाधार गृहणीकरण पर भरोसा करते हैं। यदि गृहणीकरण थोड़ा हो जाय तो उसका परिणाम शरीर की गजब की मृत्यु होगी। शरीर और परिणाम पदार्थों के स्थान में नए पदार्थों को स्थापित करना वेद की अनिवार्य आवश्यकता है, और इसलिये सन गुरुय का प्रयास करते समय यह पहली ही बात विचारने की है।

हठयोग शास्त्र में भोजन के इस विषय का मूलमंत्र पोषण है। इन्ने इस शब्द को यद्दे अक्षरों में ध्याप दिया है कि यह आपके चित्त में अंकित हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारे शिष्यों को भोजन के प्रयास के साथ-साथ पोषण का प्रयास बना रहे।

योगी के लिये भोजन का अर्थ ऐसी चीज नहीं है जो रसना के स्वाद को उत्तेजित करे, किंतु प्रथम पोषण, द्वितीय पोषण और तृतीय पोषण ही है। चादि से अंत तक सर्वदा पोषण ही है।

बहुत-से लोग आदर्श योगी को दुबला, पतला, अधभुखा और निर्मांस जंतु समझते हैं; जो भोजन पर इतना कम ध्यान देता है कि कई दिन तक बिना खाए रह जाता है—जो समझता है कि “आध्यात्मिक प्रकृति” के लिये भोजन अत्यंत “आधिमौक्तिक” पदार्थ है। इससे बड़ा सचाई से दूर दूरी बात नहीं हो सकती। योगी लोग, विरोध करके वे जो हठयोग के एक साधक हैं, पोषण को शरीर के लिये अपना अग्रम कर्तव्य समझते हैं और अपने शरीर को समुचित पुरा रखने में सर्वदा सावधान रहते हैं और यह देखा करते हैं कि शरीर में नए अंगों की रचना होकर और परिष्कृत अंगों की समता में होती है कि नहीं।

यह बात बहुत सच है कि योगी भटा खज्जद नहीं होता और न उसकी घामना लज़ीज़ और लतीफ़ भोजन की ओर जाती है। इसके विपरीत वह ऐसी मूर्खताओं पर मन-ही-मन हँसता है और अपने मादे पोषणकारी भोजन ही में जी लगाता है, क्योंकि वह जानता है कि इसी मादे भोजन में उसे वह पोषण मिलेगा जो उन हानिकारक पदार्थों से निर्मित रहेगा, जो पदार्थ उसके उम्र भोगी भाई के रंगविरंगे पकवानों में पाए जाते हैं, जो कि भोजन के घमेली अर्थ से अनभिज्ञ है।

हठयोग की एक कहावत है कि "खाया हुआ पदार्थ नहीं, किन्तु पचाकर अपनाया हुआ पदार्थ पोषण करता है।" इस पुरानी कहावत में दुनिया-भर की सचाई भरी है, और इसमें यह बात है जिसे स्वास्थ्य विषयक लेखकों ने पोथियों की पोथियों में लिखा है।

हम आगे चलकर आपका पागियाँ का यह तरीका बतलावेंगे जिस तराक़ से वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त किया करते हैं। योगियों का तरीका मध्य मार्ग है, मार्ग के परस्पर विरोधी दोनों विचारों से दो भिन्न प्रकार के विचारवाले मनुष्य चज़ने हैं, अर्थात् एक तो खूब कम-से-कम खानेवाले और दूसरे निराहार मत के करनेवाले; इन दोनों में से प्रत्येक अपने विचार की महिमा गाता है और अपने विरोधी के विचारों की निंदा करता है। इन लोगों के विवाद पर जब योगी अपने गरज स्वभाव से हँस देता है तो यह समा के योग्य है; क्योंकि यह दृष्टता है कि एक तो पूरे पोषण के लिये कम-से-कम भोजन करना आवश्यक समझता है, और दूसरा हमका विरोधी कम-से-कम भोजन करने में मूर्खता देखता है और उसको हमरा साम्ना नहीं दिखाने देता मिलाप इसके कि बहुत दिन तक मन भर-भरके अधभूये रहे, जिससे बहुत-से ऐसे कृतियों को निबंत्तना से आ धेगा है और बिनी-बिनी को तो करने जीइत को खोबर मनु के मुख में ज़रा पर गया है।

योगी के लिये उपवासजनित अल्प पोषण और कमकर खाने से थपक रस इन दोनों में से किसी प्रकार का भय नहीं रहता—इन प्रश्नों को तो सैकड़ों वर्षों हुए कि वृद्ध योगी गुरुओं ने कभी हल दया दिया और यह मामला इतना पुराना हो गया कि उन वृद्ध योगी गुरुओं का नाम तक भी उनके अनुयायियों को स्मरण नहीं है।

अब कृपा करके सर्वदा के लिये इस एक बात को गॉठ देकर याद कर लीजिए कि हठयोग भूखे रहने के तरीके का पक्षपाती नहीं है। परंतु इसके विपरीत वह जानता और सिखाता है कि मनुष्य का शरीर कभी भी बिना काफ़ी भोजन खाए और खाकर पचाए, पुष्ट नहीं रह सकता। बहुत-से नाजुक, निर्बल और संशंक मनुष्य इसी कारण कम जीवट के और रुग्णवस्था में होते हैं कि वे काफ़ी पोषण नहीं प्राप्त करते।

इस बात को भी याद रखिए कि हठयोग इस विचार को भी हास्यजनक जानकर अस्वीकार करता है कि घ्नूय कस करके भोजन करने से पोषण प्राप्त होता है; और स्वाद-जोलुपों की दशा पर आश्चर्य और रहम करता है, और स्वाद-जोलुपता में केवल नीच पशुता का आभास देखता है जो पूर्ण विकसित मनुष्यत्व से बहुत ही विपरीत है।

योगी की दृष्टि में समझदार मनुष्य जीने के लिये खाता है—न कि खाने के लिये जीता है।

योगी बहुत खानेवाला नहीं होता, किन्तु बड़ा ही स्वादु-भोगी होता है, क्योंकि सादा-से साद खाना खाते हुए भी, उसमें अपनी आस्वादन शक्ति को इतना जगा और उन्मादित कर दिया है कि सभी भूय में इन्हीं सादे खानों में स्वाद मिलता है जो कि उन लोगों को कभी भी मगीब नहीं होता जो पाश्चात्या के बहु-मूल्य तरीकों द्वारा स्वाद की तलाश में रहा करते हैं। योगी का

प्रधान उद्देश है कि पूर्ण पोषण के निमित्त भोजन करना चाहिए तो भी यह खाने भोजन से पैसा बचाव और आनंद प्राप्त करना है जो उसके बारे में भोजन से पूछा करनेवाले भोगी माहों को मान्य ही नहीं हो सकता ।

आगे बताया मैं हम भूख और भोजनानुरता का विषय बता-  
वेंगे—ये दोनों भौतिक शरीर के धर्म्य भिन्न-भिन्न गुण हैं, यद्यपि बहुत-से मनुष्यों को दोनों एक ही बात प्रतीत होती है ।



# नवाँ अध्याय

## भूख और भोजनातुरता

जैसा कि इसके पूर्ववाले अध्याय के अंत में हमने कहा है, भूख और भोजनातुरता दोनों परस्पर विलकुल एक दूसरे से भिन्न गुण शरीर के हैं। भूख भोजन की स्वाभाविक माँग है—भोजनातुरता अस्वाभाविक कोलुपता है। भूख स्वस्थ बच्चे के कपोलों पर गुलाबी रंग की लालिमा की भाँति है—भोजनातुरता शौकीन औरत के रंगे हुए लाज चेहर की तरह है। तथापि बहुत-से मनुष्य ऐसा समझते हैं कि दोनों का अर्थ एक ही है। अब देखना चाहिए कि दोनों में अंतर क्या है।

एक साधारण मनुष्य को, जो युवावस्था को पहुँच गया है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न-भिन्न अनुभवों और लक्षणों को समझना देना यही कठिन बात है; क्योंकि उस उमर के अधिकतर मनुष्य अपनी स्वाभाविक भूख की प्रवृत्ति को इस क्रूर भोजनातुरता से परिवर्तित कर देते हैं कि उन्होंने बहुत बरसों से असली भूख के लक्षणों का अनुभव ही नहीं किया है और भूल गए हैं कि भूख लगने पर कैसा मालूम होता है। और किसी अनुभव का समझना यही ही मुश्किल बात है जब तक श्रोता के मन में उस अनुभव का अथवा वैसे ही अन्य अनुभव का स्मरण न दिया दिया जाय, जिसको कि उसने कभी भिन्न-समय में भोग किया है। हम किसी आवाज़ का वर्णन साधारण श्रवणवाले मनुष्य से ऐसी आवाज़ों की उपमा देकर कर सकते हैं, जिनको उसने कभी सुना है—परंतु जो मनुष्य जन्म ही से बहरा है उसको आवाज़ का अर्थ समझाना

कितना कठिन है, आप ही कल्पना कर लीजिए ; अथवा जन्मांध मनुष्य को रंग का अर्थ बतलाना वा ऐसे मनुष्य को जो जन्म से प्राणशक्ति में हीन है उसे सुगंध को समझाना कितनी कठिन बात है ।

ऐसे मनुष्य को, जो भोजनानुरता की गुलामी में बाहर है, भूख और भोजनानुरता के भिन्न-भिन्न लक्षण प्रतीत होने हैं और दोनों का भेद आसानी से समझ में आ जाता है, और ऐसे मनुष्य का मन दोनों शब्दों के भावों की टीक-टीक ग्रहण कर लेता है । परंतु साधारण मध्य मनुष्य को भूख ही भोजनानुरता का मूल, और भोजनानुरता भूख का परिणाम प्रतीत होती है । दोनों शब्दों का दुष्प्रयोग किया जाता है । हमको साधारण और सुपरिचित उदाहरणों द्वारा इस बात को समझाना पड़ेगा ।

पहले प्यास को लीजिए । सब लोग अच्छी स्वाभाविक प्यास के अनुभव को जानते हैं । जिसमें ठंडे पानी की भीतरी माँग होती है । इसका अनुभव भूख और गले में होता है और इसकी वृत्ति उस पदार्थ से होती है जो प्रकृति का उद्देश है—ठंडा पानी । अब यही स्वाभाविक प्यास तो स्वाभाविक भूख से तुलना रखती है ।

यह स्वाभाविक प्यास उस पानानुरता में कितनी भिन्न होती है जिस आनुरता के वश में होकर मनुष्य मीठे, जायफेदार सोडावाटर, मलाई का चूने और मोठा, जिजर, मदिरा और भोंति-भोंति के शर्बतों को तल्लास करता है । और इसी प्रकार स्वाभाविक प्यास उस आनुरता में कितनी भिन्न होती है जिसे शराबी मनुष्य बिपर, मारी आदि के लिये अनुभव करता है । अब कुछ समझ में आने लगा कि हमारा क्या मतलब है ?

हम लोगों को ऐसा बहने हुए सुनने हैं कि एक ग्याम सोडा-वाटर की बीस प्यास खती है; हमारे बहते हैं कि सोई शराब की प्यास खती है । अब यदि ये मनुष्य मध्यम प्यासे होने, वा हमारे

शब्दों में, यदि सचमुच प्रकृति की माँग द्रव पदार्थ की होती, तो पहले ये लोग स्वच्छ ठंडा पानी ही तलाश करते और यही पानी उनकी प्यास को पूरा-पूरा बुझा देता। परंतु नहीं, पानी सोडावाटर अथवा फिस्की की प्यास को कभी नहीं बुझा सकता। क्यों? क्योंकि यह पानातुरता की चाहना है जो स्वाभाविक प्यास नहीं है; परंतु इसके विपरीत अस्वाभाविक पानातुरता है—व्यतिक्रान्त चाहना है। आतुरता पैदा कर ली गई है—आदत डाल दी गई है—और वह अपनी प्रभुता दिखला रही है। आप ख्याल करेंगे कि इन आतुर-साध्यों के गुरीद भी कभी-कभी सच्ची प्यास का अनुभव करते हैं और ऐसे समय में केवल पानी ही माँगते हैं और आतुरता के भोग का ख्याल भी नहीं करते। ज़रा ख्याल तो कीजिए कि यही बात क्या आपके साथ भी नहीं है? यह स्वादपान के निवारण के लिये उपदेशकीय व्याख्यान नहीं है और न तो मद्यप्रचार-निवारण का उपदेश ही है; परंतु सच्ची प्यास और हासिल की हुई आदत अर्थात् आतुरता का भेद दिखलाने के लिये उदाहरण है। आतुरता खाने और पीने की हासिल की हुई आदत है और इससे सच्ची भूख और प्यास से कुछ भी संबंध नहीं है।

मनुष्य तंबाकू को किसी रूप में भोगने की चाहना अर्थात् आतुरता प्राप्त कर लेता है; जैसे ही शराब, पान, दोहरा, अक्कीम, चरस, गाँजा, चंदू, कोकेन या ऐसे ही द्रव्यों की आदतें डाल लेता है और इनके लिये आतुर हो जाता है। और ऐसी आतुरता या आदतें जब एक बार अस्थी तरह प्राप्त कर ली जाती हैं तब वह स्वाभाविक भूख और प्यास से भी प्रयत्न हो जाती हैं; क्योंकि ऐसे मनुष्य भी जाने गए हैं जो भूखों मर गए हैं, क्योंकि उन्होंने अपना सब धन शराब और नशे के लिये प्रार्थन कर दिया था। मनुष्य ने पीने के लिये अपने बच्चों के कपड़े तक बेच दिए हैं—अपनी मरणाधी आतुर-

रना बुझाने के लिये थोरी और कृतज्ञता कर डाला है। परंतु हम भयंकर आनुराग की चाहना को भूख बढ़ने की बीम बखाना करेगा ? परंतु हम बिग्री वस्तु को पेट में डाल लेने की प्रबल चाहना अर्थात् आनुराग को भूख ही बढ़ने और समझते हैं; हाजि कि ऐसी बहुत-सी चाहनाएँ पैसी ही आनुराग की चिह्न हैं जैसे शराब और दूसरे नशे की चाहना होती है।

नाथ जंतु की स्वाभाविक भूख होती है जब तक कि वह मध्य मनुष्य द्वारा मिठाई वगैरह: खिलाकर, जिसे मूटे ही भोजन रहते हैं, चरबा न दिया जाय। छोटे बच्चे को भी स्वाभाविक ही भूख होती है जब तक वह भी बिगाह नहीं दिया जाता। बच्चों में स्वाभाविक भूख के स्थान पर अस्वाभाविक चाहनाएँ, माता पिता की संपत्ति के अनुसार पैदा की जाती हैं—जितनी ही धन की अधिकता होगी उतनी ही आनुराग की अधिक प्राप्ति होगी। उयों-ज्यों पैसा बचा बढता जाता है त्यों-त्यों असली भूख के अर्थ को भूलता जाता है। मय तो यह है कि मनुष्य भूख को एक दुःखदायी बीज समझते हैं और उसे स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं समझते। जब कभी मनुष्य को बाहर पड़ाव डाल-डालकर यात्रा करनी पड़ जाती है, तब खुली हवा, शारीरिक परिश्रम और स्वाभाविक जीवन से एक बार फिर असली भूख जाग उठती है, और तब वे छोटे लड़कों की भाँति भोजन करते हैं और ऐसे स्वाद के साथ कि जिसे बरसों वे नहीं जानते थे। उनको सचमुच भूख लग जाती है और वे खाना खाते हैं क्योंकि उनके शरीर में भोजन की माँग है वे केवल आदत ही के कारण नहीं खाना खाते जैसा घर पर हुआ करता है कि पेट में लगातार खाने पर खाना भरा चला जाता है।

हमने हाल ही में घनी लोगों की एक मंडली के विषय में पढ़ा है कि वे ध्यान के लिये समुद्र की यात्रा कर रहे थे कि दुर्घटना-



वश असहाय स्थान में पड़ गए। विवश होकर उन्हें दस दिन तक बहुत ही सूक्ष्म भोजन से गुजर करनी पड़ी। जब ये लोग बचाए गए तब वे स्वास्थ्य के रूप नज़र आते थे—गुलाबी रंग, चमकीली आँखें, और सबसे बढ़कर यह बात कि वे स्वाभाविक अच्छी भूख के बहुमूल्य पदार्थ को पा गए थे। उम मंडली के कुछ लोग बरसों से बदहजमी के रोग में मुक्तिला थे; परंतु इन दस दिनों के अनुभव ने जिसमें भोजन बहुत ही कम और बड़े परिश्रम से मिला, लोगों को बदहजमी और अन्य रोगों से मुक्त कर दिया। उनको उचित रीति से पोषण करने के लिये तो काफ़ी मिल गया और देह में जो रहियात जमा हो गए थे और जिनमें शरीर विपाक हो रहा था वे पदार्थ निकल गए। अब वे बहुत दिन तक नीरोग रहें वा न रहें, यह बात उन्होंने के कर्मों पर अवलंबित थी कि चाहें वे भूख का अनुसरण करें चाहे भोजनानुरता का।

स्वाभाविक भूख—स्वाभाविक त्याग की शक्ति—मुँह और गले की नाड़ियों के द्वारा अपने को प्रकट करती है। जब मनुष्य भूखा होता है, तब भोजन का स्वाद या नाम उसके मुँह, गले और खार पैदा करनेवाले अवयवों में एक विशेष संवेदना उत्पन्न करता है। उन भागों की नाड़ियों से एक विचित्र प्रकार की संवेदना प्रकट होती है, जो बह जाती है, और यहाँ के सारे अवयव कार्य में लगने की उत्सुकता प्रकट करने लगते हैं। आमाशय कोई भी संकेत नहीं करता और पेट में भोजन पर प्रकट भी नहीं होता। मनुष्य को मालूम होता है कि अपने पुष्टिदायक भोजन का स्वाद उसे गुणदायक होगा। यकृत, पित्त, पीपल, भोजनभाष आदि की वेदना आमाशय में नहीं होती। ये अवयव तो भोजनानुरता की आदत के अधीन हैं, जो इट कर रहे हैं कि आदत जारी रखी जाये। क्या आदत कभी प्रभाव दिया है कि आदत की आदत भी पेट ही अधीन को प्रकट करती है। प्रकट आदत और आदत के अधीन

भोजनानुरता और पानानुरता दोनों अस्वाभाविक बातों में प्रकट होते हैं। जो मनुष्य हुंसा पीना चाहता है वा तंबाकू खाया चाहता है उसको भी इसी प्रकार की वेदनाएँ होती हैं।

मनुष्यों को प्रायः आश्चर्य होता है कि 'अब वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता जैसा कि लंदन में "मा पकाया करती थी।" क्या आप जानते हैं कि वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता? केवल इसी कारण से कि उस मनुष्य ने अपने शरीर में भूख के स्थान पर भोजनानुरता को जगह दे दिया है, जिससे कि पिछले सादे भोजन का स्वाद अब अमंभव हो गया है। यदि मनुष्य फिर भी अपनी स्वाभाविक रहन द्वारा भूख को उत्तेजित कर दे तो उसे फिर भी बचरन के भोजन का लाभ मिलने लगे—तब उसको सभी रसोदर्याँ वैसी ही मालूम होने लगेंगी जैसी "माता" थी, क्योंकि वह फिर नानुरत हो जावेगा।

आपको शायद आश्चर्य होगा कि इन सब बातों से दृढयोग से क्या संबंध है। संबंध यह है—योगी ने भोजनानुरता को जीत लिया है, और हमसे स्थान पर फिर भूख को पुनः स्थापित किया है। हमको प्रत्येक घास में मुख मिलता है; यहाँ तक कि सूखी रोटी का टुकड़ा भी उसके ब्रिये पोषण और मुख दोनों का देनेवाला है। वह उसे हम भौंति लाता है कि आपको मालूम भी नहीं है, और जिसका वर्णन आगे खजूर किया जायगा। इसलिये योगी भूखा निराहारी सभी नहीं रहता; वह सूख स्वाप, रीक पुष्ट, भोजन का मुख उटानेवाला होता है; क्योंकि उसके आधीन सब अटनियों से स्वादिष्ट अटनी भूख है।

## दसवाँ अध्याय

### भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास

बहुत-से कार्यों को एक में मिलाने और आवश्यक कर्तव्यों को सुलभ बनाने ( जिनमें वह कार्य करने योग्य हो जायें ) की प्रवृत्ति की चातुरी अनेक उदाहरणों में देखने में आती है। इस अध्याय द्वारा प्रकार का एक बहुत ही जागरण्यमान उदाहरण प्रकाशित किया जायगा। हम दिव्यलावणों कि वह कैसे अनेक बातें एक ही साथ पूर करती है और कैसे वह शारीरिक संगठन के अधिकतम आवश्यक कर्तव्यों को सुलभ भी बना देती है।

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में जो योगियों के इयाज है उन्हीं के विचार से प्रारंभ कीजिए। योगियों का यह इयाज है कि मनुष्य और नीच जंतुओं के भोजन में प्राण का एक ऐसा रूप रहता है, जो मनुष्य के बल और शक्ति को क्रायम रखने के लिये जितना आवश्यक है, और प्राण का यह रूप मुख, जिह्वा और दाँतों की नादियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। कूँचने वा दाँतों से पीसने की क्रिया, जिससे भोजन के टुकड़े महीन-महीन कणों में पिस जाते हैं, इस प्राण को पृथक् कर देती है और प्राण के इतने परमाणुओं को जिह्वा, मुख और दाँतों के सम्मुख उपस्थित कर देती है जितना संभव हो सकता है। भोजन के प्रत्येक परमाणु में भोजनप्राण या अन्न की शक्ति के अनेकों प्राणाणु होते हैं, जो प्राणाणु कि दाँतों से की क्रिया द्वारा और जग में के कतिपय द्रव्यों

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ५६

की सामायनिक क्रिया द्वारा पृथक् किए जाने हैं; इनके अस्तित्व का ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को अभी नहीं है, और न ये आजकल के रसायन शास्त्र की परीक्षाओं द्वारा प्रकटित किए जा सकते, यद्यपि भविष्यत् के स्वीजी लोग इनके विषय में वैज्ञानिक प्रमाण दे देंगे। जब यह भोजनप्राण एक बार भोजन में से स्वतंत्र कर दिया जाता है तब यह जिह्वा, मुख और दाँतों की नाबियों के पास दौड़ जाता है, और मांस और हड्डियों में होकर बहुत शीघ्रता से नाड़ी जाल के अनेक केंद्रों अर्थात् चक्रों में पहुँचता है, जहाँ से कि वह शरीर के प्रत्येक भागों में पहुँचाया जाता है और देहाणुओं को शक्ति और जीवत् प्रदान करता है। यह योगी के रूप की मोटी-मोटी बातें हैं; इनका सविस्तर वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

शिष्य लोक आश्चर्य करेंगे कि जब हवा में इतना अधिक प्राण भरा हुआ है तब भोजन में से प्राण खींचने की क्या आवश्यकता है, और यह प्रकृति के विषय में समय का व्यर्थ खोना समझा जायगा कि इतना परिश्रम भोजन में से प्राण लेने के लिये किया जाय। परंतु इसका समाधान यों है। जैसे सब विद्युत् विद्युत् है वैसे ही सब प्राण प्राण हैं—परंतु जैसे विद्युत् की धार के अनेक रूप होते हैं, और मनुष्य के शरीर पर एक दूसरे से बहुत ही भिन्न अंगर ढाकते हैं, वैसे ही प्राण के रूपों के भी अनेक प्रकार के विकास होते हैं; पार्थिव शरीर में प्रत्येक रूप अपना निश्चित कार्य करता है; और भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों के लिये सभी रूप के प्राण की आवश्यकता होती है। हवा में का प्राण एक त्रिस्म का कार्य करना है, पानी में का दूसरे त्रिस्म का और भोजन में से जो प्राण प्राप्त किया जाता है वह तीसरे और त्रिस्म का कार्य संपादन करता है। योगियों के रूप के सविस्तर वर्णन में जाना हम पुस्तक के उद्देश के बाहर की बात होगी, और हमको यहाँ साधारण वर्णन ही पर संतोष करना चाहिए। अमली

विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में अन्नप्राण होना है जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और जिसको उठा लिया हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को दाँतों से सूख अच्छी तरह पीस ढालने से और प्राण को दाँतों, जिह्वा और मुख की नाड़ियों द्वारा खींचने से।

अब भोजन को दाँतों से कुँचने और उसमें लार मिलाने की क्रिया से जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिए। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश है कि भोजन का प्रत्येक ज़रूरी अणु तरल से पीस ढाला जाय और उसमें लार मिल जाय तब उसे भीतर घोंटा जाय ; और इस विषय में कोई भी श्रुति हुई कि पाचन में बाधा पड़ी। अच्छी तरह से कुँचना ही मनुष्य की स्वाभाविक आदत है, जो कि रहन-सहन की कृत्रिम आदतों के तत्काल से, जो हमारी सभ्यता के कारण उपस्थित हो गए हैं, भुज्जवा दी गई है। भोजन को दाँतों से पीस जाना इसलिये आवश्यक है कि वह आसानी से घोंटा जा सके और इसलिये भी कि उसमें लार तथा आमाशय और पतली अंतड़ियों के पाचक द्रव घुल सकें। इससे लार का स्वाद बढ़ता है, जो पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत ज़रूरी अंग है। भोजन में लार का घुल जाना पाचन-क्रिया का अंग है, और लार द्वारा कुछ ऐसा आवश्यक कार्य होता है जो अन्य द्रवों में नहीं हो सकता। आयुर्वेदिक लोग बहुत जोर देकर सिखजाते हैं कि अच्छी तरह से कुँचना और सूख खार मिलाना स्वाभाविक पाचन के लिये अनिवार्य है और पाचन-क्रिया के प्रधान अंग है। कुछ विशिष्टाचार्य लोग तो इस कुँचने और लार मिलाने की क्रिया को माधारण आयुर्वेदिकों की अपेक्षा और भी अधिक महत्त्व देते हैं। एक परिचित आचार्य, जिनका नाम मिस्टर होरेम प्रलेवर है, जो अमेरिका-निवासी है, इस विषय पर बड़ा जोर देकर लिखे हैं और भौतिक शरीर की इस

भोजन में प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ६१

क्रिया की प्रधानता पर आश्चर्य-जनक प्रमाण दिए हैं। अमल बात यह है कि मिस्टर प्रलेचर एक स्वाम तंत्री से बूचने की मलाह देते हैं, जो योगियों के तंत्री से बहुत मिलता है; यद्यपि प्रलेचर साहब तो पाचन-क्रिया में उसके अद्भुत प्रभाव के निहाल से उसके उपदेश करते हैं, परन्तु योगी ज्ञान धीमी ही क्रिया अन्न में प्राण खींचने के अभिप्राय से करते हैं। स्पष्ट यह है कि धीमी क्रिया में दोनों मतलब शामिल होते हैं, क्योंकि प्रकृति के उद्देश का यह एक संग है कि भोजन दोनों से शुरू समझकर ग्राह्य जाय। स्तर के मिलने से पाचन-क्रिया और साथ-ही साथ प्राण की प्राप्ति दोनों एक ही समय में हो जाती है—ध्यान देने योग्य परिणाम की विप्रायण।

मनुष्य की स्वाभाविक दशा में भोजन का शुरू समझ लेना एक सुखद कार्य था और मीठ जंतुओं तथा मनुष्यों के दन्तों में यह भी है। जानवर अपने चारा को शुरू मजे के साथ समझता है, और मनुष्य का बच्चा भी प्यारता है, बुद्धिमान है और मध्य युवा मनुष्य की अपेक्षा बहुत देर तक भोजन को अपने मुख में रक्खे रहता है, परन्तु जैसे अपने माता पिता का सक्क सीखता है और होशियारी से भोजन निगल जान के विचार को ग्रहण कर लेता है। मिस्टर प्रलेचर अपनी इस विषय की विचारों में यह बात स्थापित करते हैं कि यह सच है जो हम बूचने और खाने की क्रिया में मुख देता है। कोटिदो का यह उदाहरण है कि सच भी हम विषय में बहुत कुछ करता है, परन्तु हमारे कतिचित् भी कोई और चीज है, भोजन को मुख में रक्खे रहने, इसे चिढ़ा से हवा-उधर लेने, इसे दोनों से शुरू समझने, और जैसे जैसे इसे हवा-उधर लेने के शुरू के शुरू के शुरू के शुरू का कोश होता है। प्रलेचर स्तर करते हैं कि भोजन को समझने में यह सब लक्ष्य और सच का

विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में प्रयत्न है जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और विषयों जिसे हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को रीति-मूल्य अच्छी तरह पीस डालने से और प्राण को दाँतों, जिह्वे और मुख की नादियों द्वारा खींचने से ।

अब भोजन को दाँतों से चूँचने और उसमें जार मिलाने की प्रक्रिया में जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिए। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश है कि भोजन का प्रत्येक जरा जरा तरह से पीस डाला जाय और उसमें जार मिला जाय ताकि वह भीतर घोंटा जाय ; और इस विषय में कोई भी गूढ़ि हुई कि पाचन में बाधा पड़े। अच्छी तरह ये कृष्ण ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो कि रदन-सहन को कृत्रिम आदतों के तजारा से, जो हमारे सम्पत्ता के कारण उपस्थित हो गए हैं, भुजका दी गई है। भोजन को दाँतों से पीस जाना हमजिये आवश्यक है कि वह आगामी से घोंटा जा सके और हमजिये भी कि उसमें जार तथा आमाशय और पचन-शक्ति के पाचक द्रव धुल सकें। इससे जार का प्रारंभ होता है जो पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत जरूरी घंटा है। भोजन में जार का घुल जाना पाचन-क्रिया का शंग है, और जार का घुल पकना आवश्यक भाग होता है जो अन्य द्रवों में नहीं हो सकता। य

जन में प्राप्त प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ६३

अगर अोजन ( प्राणभरित भाव ) का परिवर्तन होता है जो हुन ही आश्चर्य होना है । प्यारे का धुवन अोजन में इतना रा रहता है कि उसमें मनुष्य शिर में पैर तक पुनश्चिन्त हो जाता । हम जिम बात का वर्णन किया चाहते हैं उसका यह भी अर्थ है उदाहरण है । जो मुख हमें मुनामिष और स्वाभाविक गरीबों में रोजन करने में मिलता है वह बंधन स्वाद ही का मुख नहीं है, किन्तु अधिकतर उस संवेदना में उत्पन्न हुआ है जो कि प्राण के ग्रहण करने में होती है, और जो बहुत कुछ ऊपर दिए हुए उदाहरणों में समझा सकते हैं ; यद्यपि हम जानते हैं कि जब तक आप शक्ति के दोनों विचारों की समता का अनुभव स्वयं न कर लेंगे तब तक आप इस उदाहरण पर हँसी करेंगे ।

जब आप मिथ्या भोजनानुरता को ( जिसे भूल से भूल समझा जाता है ) दमन कर लेंगे तब आप बिना छुँटे हुए गोहूँ की रोटी के सूखे टुकड़े को भी खूब मसल-मसलकर खावेंगे, और उसमें भरे हुए पोषण के कारण उसके केवल स्वाद ही से सतोष न पावेंगे, किन्तु उस संवेदना का भी मुख उठावेंगे जिसके विषय में हमने इतना जो जगाकर वर्णन किया है । मिथ्या भोजनानुरता की आदत छोड़ने और प्रकृति के उद्देश पर आने में थोड़े अभ्यास की जरूरत है । जो भोजन जितना ही अधिक पुष्टिकारक होगा, वह स्वाभाविक रूप से इतना ही अधिक तृप्तिकारी होगा, और यह भी एक बात स्मरण करने के योग्य है कि भोजन में जितनी ही पोषण शक्ति होगी इतना ही उसमें अन्नप्राण भी होगा—प्रकृति की आतुरी का एक और उदाहरण ।

योगी बहुत धीरे-धीरे अपना भोजन खाता है, प्रत्येक आस को तब तक मसलता रहता है जब तक उसमें उसे तृप्ति मिलती रहती है । अधिकांश दशा में तब तक उसे तृप्ति मिलती रहती है जब तक



ग्रंथ प्रतीत हो तब तक समझना चाहिए कि अभी उसने निकालने के लिये शेष है; और हमारा भी विश्वास है कि रा बहुत सही है। परंतु हम लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि यदि हम अबपर दें तो, ऐसा बाध होना है, जो हमें भोजन निगल जाने में एक प्रकार का ऐसा तोप देता है जो तब तक रहता है जब तक कि भोजन में का कुल या क़रीब-क़रीब कुछ नहीं खींच लिया जाता। आप देखेंगे, यदि आप योगी केंद्रों की तरीक़ों को ग्रहण करेंगे कि आपका जो मुँह में से भोजन को हटाने चाहेगा और उसे तुरंत निगल जाने के स्थान पर आप उसे शरीर में मुँह में धुलाते रहेंगे और अंत में आपको एकएक क्षण कि सब ग्राम शायब होकर भीतर चला गया। यह मज़ा सारे सादे भोजन में और उस भोजन में जो आपका बहुत ही सही एक समान प्रतीत होगा।

इस मज़ा का वर्णन करना अशक्य है; क्योंकि इस मज़ा का अनुभव ही साधारण लोग नहीं कर सकते हैं। इसके समझने में तो कुछ हम कर सकते हैं यह यह है कि इसको उपमा हम अन्य देते ही संवेदना से दें, यद्यपि हमें आशंका है कि इसे आप लोग हल जनक समझेंगे। आप उस संवेदना को जानते हैं जो ऐसे मनुष्य के पास पैडने से होती है जो बड़ा आत्मन्वी है, और जिससे आप सचि अपनी जीवत ग्रहण कर रहे हैं। कुछ मनुष्यों के देह में इतना सचि प्राण होता है कि वे स्वभावतः उमका प्रवाह बढ़ाया करते हैं, और उसे दूसरों को दिखाने के लिए, जिसका यह परिणाम होता है कि दूसरे उमके लोग पैडने को बहुत परंद करते हैं, और उस मनुष्य से कुछ नहीं हुआ चाहते, क्योंकि उमके रूप में होने को जनक भी ही नहीं चाहता। यह एक बड़ा कारण है। दूसरा उदाहरण उम मनुष्य का है जिस पर आपका प्रेम हो। ऐसी वृत्ति है

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ६६

प्राण के नए-नए अणुओं को पेश करता जाता है और नादियाँ उन्हें सींचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्से तक मुख में रखते रहते हैं, उसे धीरे-धीरे अच्छी तरह से मसजा करने हैं, और उसे ऊपर कढ़ी हुई अनिच्छापूर्व क्रिया से भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण से जो मज्जा मिलता है, उसका पूरा सुख उठाते हैं। आप इसकी भावना तय कर सकते हैं, जब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज अपने मुख में ले लें और धीरे-धीरे उसे मसजने लगेँ और उसे अवसर दें कि वह शनैः-शनैः आपके मुँह में शहर की भीति गल-कर भीतर गायब हो जाय। आप यह देखकर आश्चर्यित होंगे कि यह अनिच्छापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी सूधी के साथ हुई है—भोजन शनैः-शनैः अपने अन्नशाल को नादियों को देकर आप गल जाता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा जीजिए और यह विचार करके उसे सूख मसजिए कि वहाँ बिना निगले वह कितनी देर तक मुँह में ठहरता है। आपको मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसजते रहेंगे, तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा; और वह पतली लेई की भीति होकर ऊपर लिले हुए तरीके से धीरे-धीरे आप-से-आप भीतर चढ़ा जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बराबर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा-बहुत फैँच-फाँचकर निगल लिया गया है, दूना पोषण और तिमुरा प्राण देगा।

दूसरा मनोरंजक उदाहरण दूध का जीजिए। दूध द्रव होता है और इसलिए इसके मसजने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परंतु बात वही रही (और सावधानी से सजरावा करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित

उसके मुँह में भोजन रहता है, क्योंकि प्रकृति की अर्जितता भोजन को शनैः-शनैः गुलाकर भीतर छोड़ देती है। योगी जो जयकों को धीरे-धारे घुमाता है, और जिह्वा को अवर देता है भोजन को द्रव्य आलिंगन करे, और दाँत प्रेम से भोजन में हूँ; जानता है कि हम भोजन से अपने मुँह, जिह्वा और दाँतों की कर्त्तव्यता द्वारा अन्न-प्राण खींच रहे हैं, और हम उत्तेजित और शक्तिमान् होते हैं, और अपने शक्ति-भंडार को भर रहे हैं। माय-ही-माय बहुरंग जानता है कि हम भोजन को समुचित रीति से आमाशय और पतंग अंतर्दियों के पाचन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उसकी स्वभाव जिये अच्छी सामग्री दे रहे हैं।

वे लोग जो योगियों के तरीके से भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पाते, क्योंकि प्रत्येक घ्रास से अधिक-से-अधिक पोषण खींचा जाता है और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अधूरा कुच कर और अधूरा लार मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन बहुत-सा बर्बाद जाता है और सदती-गलती हुई दशा में शरीर से बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीके में कोई चीज रही बना कर नहीं फेंकी जाती जब तक वह दर असल रही नहीं हो जाती भोजन में से पोषण का एक-एक ज़र्रा तक खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं की से खींचा जाता है। भोजन चपाने से ज़र्रे-ज़र्रे हो जाता है और लार का द्रव उसके अंग-अंग में घुल जाता है, धार के पाचनकारी अंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा दमर डालने हैं कि दममें का प्राण रूतंत्र हो जाता है और नाड़ी-जाल द्वारा शीघ्र भिजा जाता है। जयकों, जिह्वा और गालों की सहायता से जो भोजन संशोधित होता है, यह नादियों के सम्मुख

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ६५

प्राण के नए-नए अणुओं को पेश करता जाता है और नादियाँ उन्हें मीचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्ध तक मुख में रखे रहते हैं, उसे धीरे-धीरे अच्छी तरह से मसजा करते हैं, और उसे ऊपर कही हुई अनिच्छापूर्व क्रिया में भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण में जो मज्जा मिलती है, उसका पूरा सुख उठाने हैं। आप हमकी भावना सब कर सकते हैं, जब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज अपने मुख में ले लें और धीरे-धीरे उसे मसजने लगे और उसे अवसर दें कि यह शनैः-शनैः आपके मुँह में शकर की भाँति गल-कर भीतर गायब हो जाय। आप यह देखकर आश्चर्यित होंगे कि यह अनिच्छापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी सूखी के साथ हुई है—भोजन शनैः-शनैः अपने अग्रगण्य को नादियों को देकर आप गल जाता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा लीजिए और यह विचार करके उसे सूख मसजिए कि देखें बिना निगले यह कितनी देर तक मुँह में ठहरता है। आपको मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसजने रहेंगे, तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा, और यह पतली लेई की भाँति होकर ऊपर लिखे हुए तरीके से धीरे-धीरे आप-से-आप भीतर चला जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बराबर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा-बहुत कँच-कँचकर निगल लिया गया है, दूना पाँचगुना और तिगुना प्राण देगा।

दूसरा मनोरंजक उदाहरण वृष का लीजिए। वृष द्रव होता है और हमलिये इसके मसजने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परंतु बात वही रही (और सावधानी में सज्जरा करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित

जगचे दिव भी भोजन करना है, क्योंकि मृत्ति की कर्पण में भोजन को शरीर-शरीर गुलाबर भोजन पौष देती है। कौन से जगकों को भी धार गुलाबर है, और मिट्टी को धार देता है जिस भोजन को एक आविर्भाव करे, और वृत्त में भोजन में हों; व जानता है कि हम भोजन में धारने में है, मिट्टी और दोनों की मृत्ति द्वारा धार प्राण लीन रहे हैं, और हम उत्पन्न और मृत्तिमान होने हैं, और धारने मृत्ति मृदा को धार रहे हैं। माय-मी-माय वरदा है जानता है कि हम भोजन को मृत्तिमान शक्ति में धारमान और धारने भोजनियों के पावन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उमदी रखने जिसे धारने सामग्री दे रहे हैं।

ये लोग जो योगियों के तरीक़ों में भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पोंगे, क्योंकि प्रत्येक प्राण में अधिक-से-अधिक पोषण खींचा जाता है और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अपूर्ण कुछ कर और अपूर्ण लार मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन घटुत-सा पचता जाता है और सक्ती-गलती हुई दशा में शरीर में बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीक़ों में कोई चीज़ रही बना कर नहीं फेंकी जाती जब तक वह दर असल रहा नहीं हो जाती, भोजन में से पोषण का एक-एक ज़रा तफ़ खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं ही से खींचा जाता है। भोजन चयाने से ज़रें-ज़रें हो जाता है और लार का द्रव उसके अंग-अंग में घुल जाता है, लार के पाचनकारी अंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा असर डालते हैं कि उसमें या प्राण स्वतंत्र हो जाता है और नाड़ी-जाल द्वारा खींच लिया जाता है। जवदों, जिह्वा और गालों की जो भोजन संचालित होता है, वह नादियों के समुदाय



हुई ) कि यदि एक अश्वमेध नृप गले में से हाँडर वेर में बाँधिया जाय, तो वह दण्ड उगने ही नृप की चोरी, जो चोरी चोरी गयी है थी। अश्व-भा मुँह में रगड़कर ग्राम से गुमनाम हो गई, चाहे में यदि वह योग्य और अश्वमेध नहीं देता। यद्यपि वे शपथ अश्वमेध योग्य से जब नृप नहीं गता है, तो वह मुँह और जीभ को गुमनाम-गुमनाम नृप नहीं गता है और उसके मुँह के भीतर की स्थितियों से दण्ड गता करता है, जो नृप में के प्राय की गृहस्था देता जाता है और नृप में निधिन होकर रासायनिक किया से उसे पावन-योग्य बनाता जाता है; यद्यपि कभी नृप को पिना गुमनाम नहीं निगलता; यद्यपि वह बात ही है कि जब तक यद्यपि के मुँह में दंत नहीं निकलते, तब तक उसके मुँह से सखा और नहीं गता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि ऊपर लिखी हुई रीति से जीव करें। जब आपको भोजन मिले, थोड़ा समय निकाल खोजिए; तब धीरे-धीरे भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का अवसर दीजिए; और भोजन को तुरंत निगल न जाए। यह भोजन का गलने देना सभी संभव होगा, जब कुचलते-कुचलते वह मलाई की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से लार से मिल जायगा; और उसके कण अर्धपाचित दशा को पहुँच जायेंगे और उनमें से अन्नप्राण कुछ निकल जायगा। एक बार एक सेब या कोई फल इसी प्रकार खाने का यत्न कीजिए, उसी थोड़े ही खाने में आपको काफ़ी भोजन खाने की वृत्ति हो जायगी, और आपको कुछ-कुछ बड़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा

नहीं करते कि वे घरनी घरों की आदत को एकदम बदल देंगे। परंतु हमें निश्चय है कि इस प्रकार भोजन करने में थोड़ा-सा भी अभ्यास करने से मनुष्य के ऊपर परिवर्तन आ जायगा; और हम जानते हैं कि इसी तरह थोड़ा-थोड़ा चल करते रहने से प्रतिदिन के भोजन के समझनेवाले तरीके में एक स्वामी उन्नति हो जायगी। हम यह भी जानते हैं कि शिष्य को एक नई स्वामी मालूम होगी—भोजन में अधिक स्वाद मिलेगा—और शिष्य “प्रेम” में भोजन करना सीख लेगा और प्राप्त की यों ही श्रुति से निगल न जायगा। जो मनुष्य इस तरीके, का कुछ दिन अनुसरण करेगा, उसके स्वाद की एक नई दुनिया खुल जायगी और पहले की अपेक्षा अब भोजन करने में उसे बहुत अधिक सुख मिलेगा, उसके भोजन का पाचन बहुत अच्छा होने लगेगा और उस का अंश बच जायगा; क्योंकि उसके अधिक मात्रा में पोषण और अन्नप्राण मिलेंगे।

जिनके पास समय और अवसर है कि इस तरीके को पूरा-पूरा वर्त सकें; उनके लिये संभव है कि वे थोड़ा भोजन में बहुत अधिक ताज़न और पोषण प्राप्त कर सकें; क्योंकि उनका स्वादा दुष्टा अन्न बाँटा न होगा; इसकी परीक्षा उनके मस्तिष्क की आँख से हो सकती है। जो बुराईयों और नाशकता के रागी हैं वे तो अवरण-अवरण इस तरीके को पाचन करके इसका लाभ उठवें।

योगियों को खोग अन्नभोजी जानते हैं; परंतु वे ही पूरे तरह से पूर्णपोषण की महिमा और आवश्यकता समझते हैं, और शरीर को सर्वेदा पुष्ट और रचनाकारी सामग्रियों से युक्त रखते हैं। इसका रहस्य यह है कि वे भोजन में के पोषण को बर्बाद नहीं करते, उसके सब पोषण को लींच लेते हैं। वे अपने शरीर में रहीं पदार्थों का बोझ नहीं छोड़ते रहते। जो शरीर की कृति की गति में अवरोध होने के कारण उसके दूर करने में रुचि का कारण हो। वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से



हुई) कि यदि एक अघमेरा दूध गले में से होकर पेट में वा  
 दिया जाए, तो वह उम उमने ही दूध की अघेदा, जो धीरे-धीरे  
 चूसा गया है और पच-भर मुँह में रगड़कर जोम में चुभजाया गया  
 है, आधे से अधिक पोषण और अन्नप्राण कभी नहीं देता। यद्यपि  
 के स्तन अघदा योतज में जय दूध लीयता है, तो वह मुँह और  
 जोम को चुभला-चुभलाकर दूध पीचता है और उसके मुँह के  
 भीतर की क्लितियों से दूध ग्रहण करता है, जो दूध में के प्राण को  
 छुटकारा देता जाता है और दूध में मिश्रित होकर रासायनिक  
 क्रिया से उसे पाचन-योग्य बनाता जाता है; यद्यपि कभी दूध  
 को बिना चुभजाए नहीं निगलता; यद्यपि यह बात सीक  
 है कि जय तक यच्चे के मुँह में दौत नहीं निकलते, तब तक उसके  
 मुँह से सखा जार नहीं खचता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि ऊपर लिखी हुई रीति से  
 जाँच करें। जय आपको मौका मिले, थोड़ा समय निकाल लीजिए;  
 तब धीरे-धीरे भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का  
 अवसर दीजिए; और भोजन को तुरत निगल न जाइए। यह भोजन  
 का गलने देना तभी संभव होगा, जय कुचलते-कुचलते वह मलाई  
 की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से लार से मिल  
 जायगा; और उसके कण अर्धपाचित दशा को पहुँच जायेंगे और  
 उनमें से अन्नप्राण कुछ निकल जायगा। एक बार एक सेब या  
 कोई फल इसी प्रकार खाने का यत्न कीजिए, उसी थोड़े ही खाने में  
 आपको काफ़ी भोजन खाने की शक्ति हो जायगी, और आपको कुछ-  
 कुछ बढ़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना  
 और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये  
 दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा

# ग्यारहवाँ अध्याय

## भोजन

खाद्यान्नाद्य का विचार हम बिलकुल अपने शिष्यों के पसंद पर छोदे देने हैं। अपने लिये तो हम प्राप्त और का भोजन पसंद करते हैं, यह विरवास करके उसके खाने से उत्तम-से-उत्तम फल प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि जिंदगी-भर की क्या कई पीढ़ियों की, पकी हुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती; और मनुष्य को अपने ही तज्जब और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिष भोजन पसंद करते हैं, स्वास्थ्य के हित के लिये और मांस-भोजन से पूर्वी पहेँज के कारण भी अच्छे कामिल योगी फल आदि और बिना बूटे हुए गोहूँ की सारी रोटी अधिक पसंद करते हैं। परंतु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनका भोजन-विधि और ही है, तब वे अक्सर के अनुकूल अपने को थोड़ा-बहुत बना खेने में बहुत पशोपेक्ष नहीं करते; और अपने को किसी के उपर भार नहीं बनाते, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम मछी भोजि मगलकर खाना खावेंगे, तो हमारा आमाशय हमारे भोजन की अच्छी सुधि ले लेगा। सब जान तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्प्राय चीजें भी खाई जा सकती हैं, यदि उपर जितनी हुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाय।

हम हम अच्छा को मुसाजिर योगी के भाव में खिलने हैं। हमारी इच्छा अपने शिष्यों पर भोजन विषयक अधिक दबाव डालने की नहीं है। मनुष्य को सब अपनी बुद्धि और तज्जब से काम

अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त करते हैं—थोड़ी सामग्री से अधिक अन्नप्राण खींचते हैं।

यदि आप पूरा-पूरा इस विधान को न बतं सकें, तो भी अगर डार दिष्ट हुए तरीकों से बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। हमने साधारण मोटी-मोटी बातें लिख दी हैं—शेष आप स्वयं ही कर लीजिए—अपने लिये जाँच कर लीजिए—यही तरीका किसी बात को किसी तरह सीखने का है।

हमने इस किताब में कई जगहों पर बतलाया है कि प्राण के खींचने में मानसिक अवस्था का प्रधान प्रभाव पड़ता है। पर बात हवा ही से प्राण खींचने के विषय में नहीं है, बल्कि भोजन से भी प्राण खींचने के विषय में भी है। भोजन करते समय, सर्वदा यह ध्यान बना रहे कि “हम भोजन के ग्रस का कुल प्राण खींचे लेते हैं” और इस प्राण की भावना के साथ-साथ पोषण की भावना भी रखिए, तब आपको ऐसा करने से, न करने की अपेक्षा, बहुत अधिक लाभ होगा।

---

# ग्यारहवाँ अध्याय

## भोजन

खाद्यालास्य का विचार हम बिलकुल अपने शिष्यों के पसंद पर छोदे देने हैं। अपने जिसे तो हम घास तौर का भोजन पसंद करते हैं, यह विरवाम करके उसके खाने से उत्तम-से-उत्तम फल प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि किंदगी-भर की क्या कई पौदियों की, पकी हुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती; और मनुष्य को अपने ही तजर्बे और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिश्र भोजन पसंद करते हैं, स्वास्थ्य के दिन के जिसे और मांस-भोजन से पूर्वी पहेँज के कारण भी अच्छे कामिल योगी फल आदि और बिना बूटे हुए गोहूँ की मादो रोटी अधिक पसंद करते हैं। परंतु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनकी भोजन-विधि और ही है, तब वे अवसर के अनुकूल अपने को थोड़ा-बहुत बना खेने में बहुत परशेपेस नहीं करते; और अपने को किसी के ऊपर भार नहीं बनाते, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम मल्ली भोजि मगलकर खाना खाएँगे, तो हमारा आमास्य हमारे भोजन की अच्छी सुधि से खेगा। सब बात तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्प्राय चीजें भी खाई जा सकती हैं, यदि ऊपर जिली हुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाए।

हम हम अच्छाच को सुसाजित योगी के साथ में खिलने हैं। हमारी हृष्टा अपने शिष्यों पर भोजन विषयक अधिक हवाय रखने की गरी है। मनुष्य को सब अच्छी बुद्धि और तजर्बे से काम

अधिक से अधिक योग्य प्राप्त करने हैं—बोली प्रयोगों में  
समय ही लेते हैं।

चरणगण शीघ्रते हैं ।  
 यदि आप धूल धूल हवा विमान को न बर्न मर्न, तो मर्न  
 फिर हूँ लीकी से बहुत कुछ उक्ति कर सकते हैं । हने  
 मोरी मोरी बाने सिद्ध ही है—शेन आप शरीर की बर्नमर्न—  
 सिद्धे मर्न कर शक्ति—यही तरीका किसी बात को  
 साह मर्नने का है ।

हमने हम दिताब में कई जगहों पर बगजाया है कि जरा सीपने में मानसिक अवस्था का प्रधान प्रभाव पड़ा है। बाग हवा ही से प्राण सीपने के विषय में नहीं है, बल्कि रंग से भी प्राण सीपने के विषय में भी है। भोजन करते हुए सर्वदा यह प्रयास बना रहे कि "हम भोजन के प्राप्त का कुल प्राप्त होने हैं" और हम प्राण की भावना के साथ-साथ पोष्य की भावना भी रहिये, तब आपको पैसा करने से, न करने की अवस्था, गुरु अधिक लाभ होगा।

समझेंगे, पर हम करें क्या—तबयों से हमारे कथन की पुष्टि होगी।

यदि हमारे पाठकों का जो अनेक प्रकार के भोजनों के हानि-लाभ के विचारने में लगना हो, तो उन्हें हम विषय की कुछ उन अच्छी किताबों को पढ़ना चाहिए, जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। परंतु उन्हें हम विषय को खूब गहरे धोर से मोच लेना चाहिए और किसी लेखक के प्रायः प्रवर्तित मत पर अंधे की भाँति न विश्वास कर लेना चाहिए। हमारे सामने जो भोजन आते हैं, उनको हानि-लाभ के विषय में अच्छी किताबों के पढ़ने से शिखा ही मिलेगी और ऐसी शिखा से शनैः-शनैः हमारे भोजन-दृष्टि भी परिवर्तित होने लगेंगे। परंतु ऐसे परिवर्तन विचारों और तबयों के द्वारा होने चाहिए न कि किसी मतवादी के केवल कह देने से। हमारी यह राय है कि हमारे शिष्य इन प्रश्नों पर अवसर विचार किया करें कि हम अधिक भाँस तो नहीं खा रहे हैं ? हम अधिक चर्बी तो नहीं खा रहे हैं ? हम काशी फल खाते हैं कि नहीं ? क्या हमारे भोजन में विना कूटे गेहूँ का कुछ रोटी रहे, तो अच्छा न होगा ? क्या हम बहुत पेचीदा तरीकों से पकाए खीर और मजीश खानों की ओर तो नहीं मुक्त हो जा रहे हैं ? यदि हमसे कोई खाने के विषय में सलाह लें, तो हम तो यही कहेंगे कि अनेक प्रकार का भोजन करो, पर पेचीदा रीतियों से पकाए हुए खाने से बचकर रहो, बहुत चर्बी मत खाओ, तलनेवाली कढ़ाही से प्रवर्जित रहो, बहुत भाँस मत खाओ, प्रायः कर मुँह और गाल का मोत तो कभी मत खाओ, धीरे-धीरे अपने भोजन की प्रवृत्ति को सोंधे-साँधे खाने की ओर मुड़ाओ, प्रमीर से बनी हुई रोटियों आदि को कम करो, गरम चपातियों को तो अपने भोजन से प्रायः ही बर दो, खाने तक खूब धीरे-धीरे मसखी जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं;

करना चाहिए, ऊपर से दबाव डालना ठीक नहीं। यदि कोई मनुष्य जिसी-भर से मांस खाना चाहता हो, तो उसके लिये बिना मांस के भोजन करना बहुत ही कठिन हो जायगा; यैवे ही वो मनुष्य पसल हुआ भोजन करता भाषा है, उसके लिये बिना पकाया भोजन पर आदि का खाना भी बहुत कठिन पड़ जायगा। आपसे हमें किं इतना ही कहना है कि आप इस विषय पर थोड़ा शौर कर लें, कि जैसी आरकी प्रवृत्ति पड़े, वैसा करें; पर हाँ, यदि भोजन को बदलते जायें, तो बहुत अच्छा है। यदि आप अपनी प्रवृत्ति ही पर भरोसा करेंगे, तो यह प्रायः आपसे वही वस्तु पसंद करावेगी, जो उस समय आपके लिये आवश्यक होगी; और हम प्रवृत्ति पर भरोसा करना, खाद्यान्नाय के कठिन नियमों के पालन की अपेक्षा अच्छा समझते हैं। जिनका आपको भावे आप चाहिए, परंतु उसे धीरे-धीरे प्रब सम-लिए और अपने पसंद का प्रयोग बहुत-सी चीजों में कीजिए। इस इस अध्याय में कुछ ऐसी बातों का जिक्र करेंगे, जिन्हें बुद्धिमान मनुष्य स्वयं छोड़ देंगे; परंतु हम केवल साधारण सलाह की मति कहेंगे। मांस-भोजन के विषय में हम लोगों का विश्वास है कि शनैः-शनैः मनुष्य को मालूम हो जायगा कि मांस उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है; परंतु हम लोगों का विश्वास है कि मांस का खाना वा त्याग करना मनुष्य की अपनी ही प्रवृत्ति से उपजना चाहिए न कि ऊपर से दबाव डालकर उससे कराना चाहिए। क्योंकि जब ठमकी प्रबल हृष्टा मांस खाने को हो गई, तो वह वस्तुतः मांस खाने के समान ही हो गया। जब मनुष्य की गति और आगे होगी, तो ठमकी मांस खाने की हृष्टा समाप्त हो जायगी; परंतु जब तक वह समय न आवे, तब तक दबाव डालकर उससे मांस का खाना छुड़वा देना कोई लाभ न करेगा। हम जानते हैं

इस कथन को बहुत-से पाठक प्रचलित मत का विषय

हम अपने शिष्यों को भोजन के विषय में ऐसा भीह नहीं बनाया चाहते कि वे प्रत्येक ग्राम लौक्य, मार्ग और उमका तब निर्णय करें। हम हमको आस्थाभाविक तरीका समझते हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसे तरीके से भोजन से भय उत्पन्न होता है और प्रवृत्ति-मानस शक्ति-शक्ति भावनाओं से भर जाता है। हम इसी तरीके को अपना समझते हैं कि भोजन के पसंद के विषय में साधारण सावधानी और विचार से काम लिया जाय और तब उम विषय से निश्चित हो जाया जाय; और पोषण तथा ताज्जुत का ध्यान करते भोजन किया जाय, भोजन को उसी प्रकार समझा जाय, जैसे हम कह आए हैं और यह जानते रहें कि प्रकृति अपने काम को अपनी मूर्ति कर लेगी।

अहाँ तक संभव हो, प्रकृति के मार्ग ही पर बने रहो, उमसे दूर न जाओ; उसी के उद्देश को उचित और अनुचित के पहचान में अपना प्रमाण बनाओ। बलवान्, स्वस्थ मनुष्य अपने भोजन से डरता नहीं; उसी प्रकार जो मनुष्य स्वस्थ बनना चाहता है, उसे भी अपने भोजन से डरना न चाहिए। प्रसन्न रहो, ठीक सीस को, ठीक रीति से भोजन करो, उचित रीति से रहो, तो तुम्हें प्रत्येक ग्राम पर भोजन की रासायनिक परीक्षा करने का मौका ही न मिलेगा। अपनी प्रवृत्ति पर भरोसा करने में डरो मत, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य की वह पथ-प्रदर्शिका है।



भोजन से डरो मत, यदि तुम उसे उचित रीति से खाओगे, तो वह तुम्हारी हानि न करेगा, बशर्ते कि तुम उससे डरोगे नहीं।

बेहतर होगा कि सुबह का पहला भोजन हल्का हो; क्योंकि सवेरे शरीर में मरम्मत होने की बहुत आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि शरीर रात-भर आराम करता रहा है। यदि संभव हो, तो नारता पहले कुछ व्यायाम कर लो।

यदि आप उचित रीति से भोजन करने की स्वाभाविक रीति को धारण कर लेंगे और उचित भोजन का मज्ञा पा जायेंगे, तो अस्वाभाविक भोजनानुरता की जो आदत पड़ गई है, वह आप ही छुट जायगी और स्वाभाविक भूख लौट आयेगी। जब स्वाभाविक भूख लौट आयेगी, तो प्रवृत्ति केवल पोषणकारी ही भोजनों को चुनेगी; और तुम उसी वस्तु को चाओगे, जिसकी तुम्हें उस वक्त पोषण के निम्न अत्यंत आवश्यकता होगी। मनुष्य की प्रवृत्ति, यदि व्यर्थ के उन पदार्थों द्वारा बिगाड़ न दी जाय, जो केवल भोजनानुरता उत्पन्न करते हैं, तो वह वही अच्छी पथदर्शिका होती है।

अगर आपकी तबियत कुछ घराब हो, तो एक वक्त भोजन न करने में पशोपेश मत कीजिए, आमाशय को अवसर दीजिए कि जो कुछ उसमें है, उमी को दूर करे। बिना स्वाप हुए मनुष्य कई दिन तक बिना किसी भय के रह सकता है, परंतु हम बहुत जल्दे उपवास की सलाह नहीं देते। हमारी यह राय है कि तबीयत घराब होने पर आमाशय को थोड़ा आराम दे देना बुद्धिमानी है; हमने मामूली करनेवाली शक्ति को अवसर मिलता है कि वह ठम रही पदार्थ को निहाल बाहर करे, जो दुःख दे रहा है। आप देखेंगे कि जानकर जब बीमार पड़ते हैं, तो खाना छोड़ देने हैं, और तब तक पड़े रहते हैं जब तक स्वास्थ्य न आ जाय, और रहरय होने पर वे खाने लगते हैं। हम उनमें यह पाठ सीखकर कायरा बड़ा सकते हैं।



# बारहवाँ अध्याय

## देह की सिंचाई

एकयोग-शास्त्र का प्रधान नियम एक यह है कि जीवों के जिये जो प्रकृति का मह्य दान जज्ञ है, उसका विचार-पूर्णक प्रयोग किया जरा। मनुष्य का स्वाभाविक तदुद्देशों का कायम रखने के जिये पानी एक प्रधान साधन है, इस बात पर मनुष्य के स्वान को चाक्षिपु हारे की आवश्यकता भी न होती, परंतु मनुष्य कृत्रिम सामानों, आदतों, रवाजा आदि का ऐसा दास बन गया है कि वह प्रकृति के नियमों को भूल गया। वह प्रकृति के मार्ग पर लौट आवे, तभी वह कुछ भाग कर सकता है। छोटा बच्चा अपनी प्रवृत्ति द्वारा पानी के लाभ को जानता है, और पानी पाने के लिये बड़ी चाह दिखलाता है; परंतु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों स्वाभाविक आदत से दूर होता जाता है, और अपने हर्ष-गिर्द के बड़े लोगों की राजत आदतों में पड़ जाता है। यह बात विशेष करके उन लोगों के संबंध में ठीक-ठीक घटती है, जो लोग बड़े-बड़े नगरों में रहते हैं, जहाँ की कड़ों का गरम पानी बेस्वाद होता है, और इस प्रकार वे शनैः-शनैः पानी के स्वाभाविक प्रयोग से पृथक् हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य पानी पीने (या यों कहिए कि न पीने) का और प्रकृति की माँग को मुक्तवी कर देने की नई आदतों को धारण कर लेते हैं; और अंत में प्रकृति की माँग की उन्हें चेतना तक नहीं होती। हम मनुष्यों को ऐसा कहते अक्सर सुनते हैं कि "हमें पानी क्यों पीना चाहिए; हमें तो प्यास नहीं लगती।" परंतु यदि वे प्रकृति के मार्ग पर बने रहते, तो उन्हें अवरय प्यास लगती; और उन्हें प्रकृति की माँग सुनाई



कौन मनुष्य होगा जो क्रमावर्तार घोंदे को पूरी मित्रदार में पानी देगा ? परंतु मनुष्य पीछे भीर जानवर को तो वह पदार्थ देता है जिसकी उनके बिचे अपनी माधारण भ्रष्ट से ज़रूरत समझता। परंतु अपने ही को जीवनदायक द्रव से वंचित रखता है; पर हमका फल्र घैमे ही भोगेगा, जैसे बिना पानी पाए पीछे भीर से फल्र भोगने हैं। जब अगर पानी पीने के प्रश्न पर विचार करने हों, तो पीछे भीर घोंदे के इस उदाहरण को स्मरण रखें।

अब यह देखना चाहिए कि शरीर में पानी किस-किस काम में आता है, और तब विचारा जाय कि इस विषय में हम स्वाभाविक जीवन जी रहे हैं कि नहीं। प्रथम तो हमारे शरीर का ७० प्रति सैकड़ा भाग पानी है। इस पानी का कुछ भाग हमारे संगठन में प्रयुक्त होता है, और लगातार हमारे शरीर से शृषक् होता रहता है, और जितना पानी खर्च हो जाता है, उतना ही पानी फिर शरीर में भर देना चाहिए, यदि शरीर को स्वाभाविक दशा में रखना स्वीकार हो।

यह शरीर-यंत्र चमड़े के अगणित छिद्रों द्वारा देहवाष्प और पसीने के रूप में लगातार जल छोड़ रहा है। पसीना उस शारीरिक द्रव मल को कहते हैं, जो चमड़े के छिद्रों से इतनी शीघ्रता से फँका जाता है कि बिंदुओं के रूप में एकत्रित हो जाता है। देहवाष्प उसे कहते हैं, जो पानी शरीर के छिद्रों से लगातार और अज्ञात रूप से वाष्प-रूप में निकला करता है। जॉब से मालूम हुआ है कि यदि चमड़े से वाष्प निकलना बंद कर दिया जाय, तो जंतु मर जाय। पुराने रोम के एक स्तौंडार में एक लड़का सोने के पत्रों से सिर से पैर तक आच्छादित करके एक देवता की मूर्ति बनाया गया था—सोने के पत्रों के हटाने के पहले ही लड़का मर गया; क्योंकि चार्निश और स्वर्ण-पत्रों के कारण उसके देह का वाष्प निकल न सका। प्रकृति की क्रिया

में बाधा पहुँची और शरीर उचित रीति से कार्य न कर सका, इस-  
लिये जीव ने उस मर्मि-कुट को छोड़ दिया ।

परमाने और देहवाण के सामायनिक विश्लेषण से जाना गया है  
कि ये देहयंत्र के रही पदार्थों से भरे हुए होते हैं—मल और परि-  
त्यक्त वण से भरपूर होते हैं—जो, यदि देहयंत्र में कारी पानी न  
पहुँचाया जाय, तो शरीर ही में रह जायें, इसमें विष उत्पन्न कर दें  
और परिणाम में रोग तथा मृत्यु को बुला लें । शरीर की मरम्मत  
वा काम सर्वदा हुआ करता है, येकार और रही रोजे हटाए जाया  
करते हैं और उनके स्थान में नई ताज़ी सामग्री उस क़दर में से,  
जिसने भोजन में से नई सामग्री संग्रह की है, जुटाई जाती है । यह  
रही अवरयमेव शरीर से बाहर निवालो जानी चाहिये, और प्रकृति  
इसे निवाले में कुछ सावधान रहती है—यह देहयंत्र में बूढ़े-बुरकट  
का रखना कभी भी पसंद नहीं करती । यदि यह रही पदार्थ देहयंत्र  
ही में रहने दिया जाय, तो यह विष हो जाता है और रोग की अवस्था  
उत्पन्न कर देता है । यह, बीटाणु, उनके बीज, अंडे-बच्चे इत्यादि का  
उत्पत्तिस्थान और अनागद बन जाता है । बीटाणु स्वयं और  
रक्षक शरीर-यंत्र को अधिक हानि नहीं पहुँचाते; परंतु ज्यों ही वे जल-  
हंकी मनुष्य के संपर्क में आते हैं, और उसके शरीर को रही और बूढ़े  
बुरकट तथा आना प्रकार की संदियों से भरा पाते हैं, त्यों ही वे  
वहाँ ही देरा बाज़ार अथवा कारंवाई टुक कर देते हैं । इस इस  
विषय में कुछ और बातें भी ज्ञान के विषय के साथ बतलावेंगे ।

हरदोस के प्रति दिन के जीवन में पानी सर्वप्रधान कार्य करना  
है । सोनी इसे भीतर और बाहर दोनों ओरि प्रयोग करता है । वह  
स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये इसका प्रयोग करता है, और जहाँ  
रोग के शरीर की स्वाभाविक क्रिया को निबंध कर दिया है, वहाँ पर  
बिर भी स्वास्थ्य स्थापित करनेवाले इसके गुणों की मदद की

शिखा देता है। हम इस फिताय के कई भागों में पानी के प्रयोग का जिक्र करेंगे। हम इस विषय की मुख्यता को शरीर शिष्यों के हृदय में अंकित कर दिया चाहते हैं; और उनसे आग्रह के साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा-सादा जान कर तुच्छ न समझ बैठ, और इसे छोड़ न जायें। हमारे प्रति इन पाठकों में से सात को इस सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे धाँढ़ न जाइए। सुना आपने? हम आप हों से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनों इसलिये भी आवश्यक हैं कि उनके साथ-साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देहयंत्र के निरुद्ध पदार्थों को निकालकर फेंकने में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुदों को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न है। बिना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये असमर्थ हो जाता है।

स्वाभाविक युवक १½ पाइंट से लेकर २ पाइंट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है; परंतु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करते हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की अपेक्षा शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है; क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है, कि गर्मी बहुत जल्द और सत्परता से प्रसारित हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत-सा पानी प्रवास द्वारा बाहर फेंका जाता है। मूर्खद्वियों तो अपना कार्य करने में बहुत ही ज़िपादा पानी बाहर निकालती हैं; स्वस्थ युवक ३ पाइंट पानी इस प्रकार प्रसारित करता है। इतना पानी फिर भी भरना होगा, सभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

कई कार्यों के लिये शरीर में पानी आवश्यक होता है। उमका पृष्ठ कार्य तो यह है ( जैसा ऊपर वर्णन किया गया है ) कि शरीर में जो जलानार उत्पन्न-क्रिया हो रही है, उमसी अधिष्ठा को रोके और उमसी नियमित दूँ में रखे। यह उत्पन्न-क्रिया फेफड़ों द्वारा खींचे हुए हवा के ऑक्सीजन के भोजन के कार्बन के संयुक्त में घाने से होती है। लाखों-करोड़ों देहाणुओं में यह उत्पन्न क्रिया होती रहता है और यही देहत्तर उत्पन्न करता है। पानी जब देहयंत्र में होकर गुज़रा करता है, नव तापमाप्य को स्थापित रख सकता है और ताप का बहाव नहीं होने पाता।

शरीर पारवर्तनी के लिये भी पानी को काम में लाता है। यह रुधिरोपवाहक और रुधिरारवाहक धमनियों और शिराओं में होकर बहा करता है, और रुधिराणुओं तथा अन्य पोषण पदार्थों को शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों और भागों में पहुँचाया करता है, जिससे ये रचना के कामों में, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, जाएँ जायें। शरीरयंत्र में द्रव की कमी के कारण रुधिर में भी कमी आ जायगी। रुधिर की वापसी यात्रा में, जब वह रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा छीटता है, द्रव निष्कम्पी रुधियों को ग्रहण करता आया है ( इन रुधियों का अधिदांश विष हो जाता, यदि शरीर ही में पड़ा रहता ) और उन्हें गुदों के मल-न्यागों अवयवों, चमड़े के छिद्रों और फेफड़ों के हवाले करता है, जहाँ से विप्रेर्यी मृतक सामग्री—और निष्कम्पी रुधियों बाहर फेंक दी जाती है। बिना पुष्कल द्रव के, यह कार्य प्रकृति के उद्देश के अनुसार नहीं सिद्ध हो सकता। और बिना काशी पानी के, जाएँ हुए भोजन की सीढ़ी, शरीरयंत्र की राल, पुरीय अर्थात् मैत्रा अण्डों तरह गोला नहीं रह सकता कि आसानी से मलाशय में से शरीर के बाहर निकल जाय; और परिश्राम में कोष्ठबद्ध और उमकी संगिनी बीमारियों हो जाती है। योगी



शिक्षा देता है। हम इस किताब के कई भागों में पानी के प्रयोग का जिक्र करेंगे। हम इस विषय की मुख्यता को अपने शिष्यों के हृदय में अंकित कर दिया चाहते हैं; और उनमें आप्रमत्तों के साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा-सादा बात कर तुच्छ न समझ बैठें, और इसे छोड़ न जायें। हमारे प्रति दस पाठकों में से सात को इस सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे छोड़ न जाइए। सुना आपने? हम आप ही से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनों इसलिये भी आवश्यक हैं कि उनके साथ-साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देहयंत्र के निष्क्रम्य पदार्थों को निकालकर कंकाल में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुदों को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न है। बिना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये असमर्थ हो जाता है।

स्वाभाविक युवक १½ पाइंट से लेकर २ पाइंट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है; परंतु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करने हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की अपेक्षा शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है; क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है, कि गर्मी बहुत जल्द और सरलता से प्रसारित हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत-सा पानी प्रश्वास द्वारा बाहर फेंका जाता है। गृध्रेंद्रियों तो अपना कार्य करने में बहुत ही ज़िपादा पाने, बाहर निकालती हैं; स्थल युवक ३ पाइंट पानी इस प्रकार प्रसारित करता है। इनका पानी फिर भी भरना होगा, तभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

देहतर है कि हम साक़ शब्दों में इसे कहें। ये सब बातें केवल गनी को कमी के कारण होती हैं। ज़रा ध्यान तो कीजिए आप अपने शरीर के बाहरी भाग को साक़ धरने के लिये तो इतने उलझ रहें और भीतर इतना मैले से भरा रहे।

मानव शरीर के सब भीतरी भागों में पानी की आवश्यकता रहती है। उसे लगातार सिंचाई की ज़रूरत रहती है, और यदि यह सिंचाई देह को न दी जाय तो देह को उतना ही भोगना पड़ता है जितना मिचाले के बिना भूमि को भोगना पड़ता है। स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक देहाणु, रेशा और अवयव को पानी की ज़रूरत है। पानी सब पदार्थों को गहरा और घुसा देनेवाला होता है। इसलिये शरीर-यंत्र को हम योग्य बनाए रहता है कि वह पानी से घुले भोजन में से पोषण ग्रहण और वितरण कर सके और यंत्र के निचले पदार्थों को दूर बढ़ा सके। यह अवसर कहा जाता है कि स्थिर हो जीवन है, और यदि ऐसा है तो पानी को क्या कहना चाहिए, क्योंकि बिना पानी के शून्य भी कुछ नहीं।

पुरुषों के लिये भी पानी आवश्यक है कि वे अपना मूत्रोत्सर्जन का काम कर सकें। इसकी ज़रूरत सार पित्त, वैनक्रिपेटिक द्रव, ग्रामा-शयिक द्रव, और शरीर के अन्य द्रवों की बनावट में भी पड़ती है; और इन द्रवों के बिना पाचनक्रिया बिल्कुल अशक्य है। आप पानी पीना बंद कर दीजिए वमन इन सब आवश्यक चीज़ों में कमी आ जायगी। अब आपा आपके प्यान में ?

आगर आप इन बातों को धींगियों की कल्पना समझकर इन पर संदेह करें तो आपको उचित है कि आप शारीरिक शास्त्र (Physiology) को किसी अच्छी वैज्ञानिक किताब को पढ़ें, जो किसी परिचित पुरातन विद्वान् की लिखी हो। आपको हमारे कपनों की पुष्टि और समर्थन मिल जायेंगे। एक नामी शारीरिक विज्ञान-

लोग जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण यदकोष्ठ की बीमारियाँ होने का कारण होती हैं—वे यह भी जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण यदकोष्ठ की बीमारियाँ बहुत शीघ्र दूर हो जायँ, यदि मनुष्य पानी पीने की स्वाभाविक आदत पर आ जाय। हम हम विषय वार्णन एक पूरे अध्याय में करेंगे, परंतु इस विषय पर हम अपने शिष्यों का ध्यान बार-बार आवर्पित किया चाहते हैं।

पानी की काफ़ी मिश्रदार, रुधिर की उचित उत्तेजना और उसके पूरे संचार के लिये भी चाहिए—शरीर के निकलने वाले द्रव्यों को दूर करने में भी जल चाहिए—शरीर द्रव हो भोजन-रस को खींचता और अपनाता है, इसलिये भी जल की आवश्यकता है।

जो मनुष्य काफ़ी पानी नहीं पीते, उनके देह में रुधिर के एकत्रित होने में भी खामी रहती है। वे बिना रुधिर के सूखे व पीने नज़र आते हैं। उनका चमड़ा सूखा ज्वराकांत-सा दिखाई देता है और उनके शरीर से देहवाष्प बहुत कम निकलती है। उनकी सूत अस्वस्थ मनुष्य की-सी होती है, जिसे देखकर सूखे हुए फूल याद आ जाते हैं, जिन्हें खूब पानी में भिगोने की आवश्यकता होती है, जिससे वे भरे और स्वाभाविक नज़र आयें। ऐसे मनुष्य क्रीब-क्रीब सर्वदा यदकोष्ठ का रोग भोगा करते हैं—यदकोष्ठ के साथ-साथ और भी अगणित रोग उसके संग चलने हैं, जैसा हम अन्य अध्याय में दिखलायेंगे। उनका बड़ी घेंतड़ी अर्थात् मलाशय मंदा और मीले से भरा रहता है; और उनके शरीरयंत्र में उसी मलाशय के एकत्रित मीले से रस पड़ूँपा करता है, जिसे कि बुरी और दुर्गंध रसाम द्वारा बाहर फेंकने का यत्न प्रकृति द्वारा किया जाता है; अथवा बद्धूरा पसीना या देहवाष्प या अस्वाभाविक मूत्र द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा होती है। यह गुणवर पाठ नहीं है; परंतु बिना इन बातों के बड़े आपका ध्यान इधर आयेगा ही नहीं, इसलिये

दो घाटें रोज़ ! ज़रा हमे ड्र्याल तो कीजिए । आप लोग तो केवल एक पाइंट या इससे भी कम पानी रोज़ पीते हैं । अब भी आपको आश्चर्य है कि क्यों आप इतनी शारीरिक पीड़ाओं को भोगते हैं ? अब जो आप बद्धजमी, बद्धकोष्ठ, रुधिराभाव, निर्यक्त नाड़ी आदि अनेक रोगों को भोगते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । आपका शरीर उन अनेक प्रकार के विपरीत द्रव्यों से भर गया है, जिनको पानी की कमी के कारण प्रकृति गुदों और चमड़ों के छिद्रों द्वारा बाहर न फेंक सकी । इसमें भी क्या आश्चर्य है कि आपका मज्जाशय पुराने जमे हुए सघृत मज्जा से भरा हुआ है और आपके शरीर को विषाक्त कर रहा है, जिसको प्रकृति अपने नियमानुसार साफ़ न कर सकी क्योंकि आपने उसे पानी ही नहीं दिया जिससे वह मल की नादियों को साफ़ कर सके । आपके पास खार और आमाशयिक द्रव की कमी है तो इसमें भी क्या ताज्जुब है ? विना पानी के प्रकृति उन्हें कैसे बना सकती है ? आपका रुधिर अच्छा नहीं है तो इसमें भी क्या आश्चर्य ? प्रकृति कहीं से जल पावे कि अच्छा रुधिर बनावे ? आपकी नादियाँ भी अस्वरय और अनरीत हैं तो क्या आश्चर्य जब सभी चीज़ें पानी विना बिगड़ रही हैं ? यद्यपि आप मूर्ख हो रहे हैं तो भी बेकारो प्रकृति, जहाँ तक कर सकती है, करने में नहीं चुकती । वह आपके शरीर ही से थोड़ा पानी खींच लेती है कि जिससे कल विजकुल बंद न होने पावे, परंतु वह अधिक पानी खींचने की हिम्मत नहीं करती—इसलिये वह बीच का मार्ग पकड़ती है । वह वैसा ही करती है जैसा आप कुएँ का पानी सूखने पर करते हैं अर्थात् जैसे आप थोड़े पानी से ज़ियादा काम लिया चाहते हैं और अधूरा ही काम करके सम करते हैं वैसे ही प्रकृति भी करती है ।

योगी लोग द्रव्य पुच्छल पानी निन्द्य पीने में तनिक भी नहीं

पात्रों ने कहा है कि स्थोभाषिक शरीर के रेशों में इतना पानी रहता है कि यह बात स्वयंमिथ की भाँति कही जा सकती है कि "यह देहाणु पानी ही में रहने हैं।" और यदि पानी ही नहीं है तो जीवन और स्वास्थ्य कैसे रह सकते हैं ?

आपको यह बतलाया गया है कि २४ घंटे में गुर्दे ३ पाइंट मूत्र त्यागते हैं जिसमें शरीर के निचले द्रव्य और विपरीत रासायनिक पदार्थ देह-यंत्र से गुर्दों द्वारा खींचकर एकत्रित रहते हैं। इसके अलावे हम दिखाया आए हैं कि घमड़े द्वारा भी वेंद पाइंट से दो पाइंट तक पानी पसीना और देहवाष्प के रूप में खारिज किया जाता है। इतने ही २४ घंटे के समय में १० से १२ औंस पानी फेकड़े भी प्रवास द्वारा बाहर फेंकते हैं। मल के साथ मिश्रित भी कुछ पानी निकलता है। कुछ थोड़ा पानी आँसू, यक्षाम आदि के रूप में और भी बाहर निकलता है। अब इतने बाहर निकले हुए पानी के स्थान में कितने पानी की जरूरत पड़ेगी ? आइए देखा जाय। कुछ पानी तो भोजन में मिश्रित भीतर पहुँचता है; वह भी खास करके खास-खास ज्ञानों में; परंतु यह पानी उस पानी की अपेक्षा कम होता है जो मल के निकालने में जाता है। अच्छे-अच्छे आचार्यों की सम्मति है कि २ क्वार्टर से ५ पाइंट तक पानी औसत दूजें नित्य पुरुष और स्त्री का स्वास्थ्य रखने के लिये आवश्यक है जिससे खारिज हुए पानी की कमी पूरी होती रहे। यदि इतना पानी शरीर को न दिया जायगा तो शरीर अपने ही यंत्रों का पानी खींचने लगेगा और मनुष्य सूखी सूरत, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, धारण करने लगेगा। परिणाम यह होगा कि शारीरिक सब क्रियाएँ निर्वल होने लगेंगी और मनुष्य भीतर और बाहर दोनों ओर से सूखने लगेगा, शरीर के कल-पुत्रों में आर्द्रता और सफाई की बहुत कमी हो जायगी।

रात को सोने के समय योगी लोग एक ग्लास पानी पी लेते हैं, इस पानी को देह-यंत्र सींच लेना है और रात में इसे शरीर की सफाई के काम में लाता है; रक्षित मूत्र के साथ मखेरे बाहर निकाल दिए जाने हैं। एक ग्लास पानी से मखेरे जगने ही पी लेते हैं, इसका विचार यह है कि भोजन के पहले यह आमाशय को साफ़ कर देता है और जो तलपट और रद्दी उम्रमें रात को जमा हो रहते हैं उन्हें धो डालता है। वे प्रत्येक भोजन के पहले भी एक-एक ग्लास पानी पी लेते हैं और थोड़ी मुलायम बसरत भी कर लेते हैं, इससे यह विश्वास करते हैं कि पाचन अवयव भोजन के लिये तैयार हो जावेंगे और स्वाभाविक मूत्र जग उठेगा। भोजन के समय भी थोड़ा पानी पी लेने में वे नहीं डरते (इसको पढ़ते हुए बहुत-से स्वास्थ्यार्थ भयभीत हो उठेंगे) परंतु इस बात से सावधान रहते हैं कि उनका भोजन पानी से धो न जाय। पानी से भोजन को भीतर निकलने में केवल लार ही जलमिश्रित नहीं हो जाता, किन्तु जय तक भोजन भीतर जाने के लिये तैयार नहीं रहता सभी भीतर खला जाता है और योगी की भोजन मसलनेवाली क्रिया में बाधा पहुँचाता है (इस विषय के अध्याय को देखो)। योगियों का विश्वास है कि इसी भौति भोजन के साथ पानी पिया हुआ हानिकारक होता है और इसी कारण से भी—नहीं तो प्रत्येक भोजन के साथ वे थोड़ा पानी पी लेते हैं कि आमाशय में भोजन मुलायम हो जाय और वह थोड़ा पानी आमाशयिक द्रव आदि को निपल नहीं बनाता।

बहुत-से हमारे पाठक गंदी शैतनियों के साफ़ करने में गरम पानी की महिमा को समझने होंगे। हम ऐसी आवश्यकता के अनुसार गरम पानी के प्रयोग को अक्षुण्ण समझते हैं, परंतु हमारा इरादा है कि अगर हमारे शिष्य जीवन के योगी विधान का सावधानी से बर्ताव, जैसा हम किताब में दिया गया है, करेंगे तो उनका आमाशय

करते, वे इस बात से नहीं डरते कि अधिक पानी पीने से सूजन पनना हो जायेगा, जैसा वे सूने मनुष्य खयाल किया करते हैं। यदि प्राक्-रूपकता से अधिक पानी कमी पी लिया जाय तो प्रकृति उसे तुरंत और शीघ्रता से निकाल देगी। चांगी लोग सर्र के पानी की उो सम्यता का अस्वाभाविक समझा है, चाहना नहीं करते—उनको म-दिमी तक का टंडा पानी प्रिय है। वे जब प्यासे होते हैं तभी पानी पी लेते हैं—उनका प्यास भी स्वाभाविक (अधिक) होती है, जिमको सूखे मनुष्यों की प्यास की भाँति जगाना नहीं पड़ता। वे बार-बार पानी पीते हैं, पर खयाल रखिए कि वे एक ही बार बहुत-सा पानी नहीं पी लेते। वे पानी को एकबारगी पेट में उड़ेज नहीं देते क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा अभ्यास व्यतिक्रान्त, अस्वाभाविक और हानिकारक है। वे थोड़ा-थोड़ा करके कई बार पानी पीते हैं। जब काम करते रहते हैं तब पानी भरा बर्तन पास रखते हैं, और बार-बार उसमें से थोड़ा-थोड़ा पानी पिया करते हैं।

जिन लोगों ने बहुत बरसों से अपनी प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया है उन्होंने पानी पीने की प्राकृतिक आदत को भुलवा दिया है, और उसे फिर प्राप्त करने के लिये ज्ञासे अभ्यास की जरूरत है। थोड़े अभ्यास से बहुत जल्द पानी पीने की माँग पैदा हो जावेगी, और समय पाकर स्वाभाविक प्यास जग उठेगी। अच्छा उपाय यह है कि एक ग्लास पानी अपने पास रखिए और थोड़ी-थोड़ी देर पर उस-में से पी लिया कीजिए और साथ ही यह खयाल भी करते जाइए कि आप क्यों यह पानी पी रहे हैं। अपने मन में कहिए कि “मैं अपने शरीर को पानी दे रहा हूँ जिसकी उसको अपना काम अच्छी तरह से करने की जरूरत है, और यह हमें शरीर की स्वाभाविक दशा को ला देगा—हमें अच्छा स्वास्थ्य और बल देगा और हमें बलवान्, स्वस्थ और स्वाभाविक मनुष्य बना देगा।”

आप सब लोग स्मरण करेंगे कि कभी-कभी एक प्याला पानी पी खेने में चित्त कैसा उत्तेजित और ताज़ा हो जाता है और कैसे आप फिर अपने काम में लग जाने के योग्य हो जाते हैं। जब आप मुस्ती मालूम करें तो पानी को न भूलें। यदि योगियों की स्वास क्रिया के संबंध में हमका प्रयोग किया जाय तो यह मनुष्य को अन्य उपायों की अपेक्षा शीघ्रतर ताज़ी शक्ति देगा।

पानी चूमने के समय चण-भर उन्हे मुँह ही में धोभ लीजिए और तब पी जाइए। जिह्वा और मुँह की नाड़ियों सबसे प्रथम और शीघ्रता से प्राण खींचनेवाली होती हैं, और यह तरीका बहुत लाभदायक होगा विशेष करके जब मनुष्य थक गया हो। यह स्मरण रखने योग्य बात है।

---



गंदा ही न होगा कि उसे साफ करने की आवश्यकता पड़े वनध आमाशय अच्छा स्वस्थ रहेगा। विचार-पूर्वक भोजन करने की आदत के प्रारंभ में गंदे आमाशयवाले मनुष्य को इस प्रकार गरम पानी के प्रयोग से लाभ हो जायगा। हमका सर्वोत्तम तरीका यह है कि एक पाईट पानी सघेरे गरमता के पहले अथवा दूसरे भोजनों के एक घंटा पहले धीरे-धीरे चूमकर पी लिया जाय, यह पाचन के अवयवों में मोसपेशियों की क्रिया को उत्तेजित करेगा, जिससे देह-यंत्र में एकत्रित हुआ मल उसमें से बाहर निकलने की चेष्टा करेगा जिससे गरम पानी से ढीला और पतला कर दिया है। परंतु यह अल्प ही काल के लिये उपाय है। प्रकृति का उद्देश सर्वदा गरम पानी पीने का नहीं है और स्वस्थ दशा में वह साधारण ठंडा पानी चाहती है—और स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये वैसे ही पानी की जरूरत है—परंतु जब प्रकृति के नियमों के उल्लंघन से स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, तो गरम पानी अच्छा है कि फिर प्राकृतिक मार्ग पर आने के पहले सफाई कर ली जाय।

हम इस अध्याय के अन्य भागों में स्नान और पानी के ऊपरी प्रयोग के विषय में और अधिक कहेंगे—यह अध्याय पानी के भी-तरी ही प्रयोग के विषय में है।

पानी के ऊपर लिखे हुए गुणों, कार्यों और प्रयोगों के अतिरिक्त हम यह भी कहेंगे कि पानी में प्राण की मात्रा भी अधिक हुआ करती है, जिसके एक भाग को वह शरीर में छोड़ देता है, यदि शरीर को आवश्यकता हो और शरीर तलब करे। कभी-कभी मनुष्य को एक प्याला पानी की आवश्यकता केवल उत्तेजना ही के लिये हो जाती है—कारण यह है कि किसी वजह से प्राण की साधारण मुह्यता कम पड़ जाती है और प्रकृति यह समझकर कि मल से शीघ्रता और आसानी से प्राण मिल सकता है, पानी माँगती है।

बीमारियों और अस्वस्थ दशाओं को भोग रहे हैं, जो उनकी इसी मूर्खता के कारण उपरिष्ठ हो गई हैं । जो लोग इस अध्याय को पढ़ेंगे, उनमें से बहुतों को हमारा कथन एक नए ज्ञान का उदय होगा—दूसरे लोग जो इन बातों में पहले ही से अभिज्ञ हैं, वे इस किताब में मधी बातों के उद्घाटन का स्वागत करेंगे, यह समझते हुए कि बहुतों का ध्यान हम विषय की ओर आकर्षित होने से उनका भला हो जायगा । हमारा अभिप्राय देह-यंत्र की राख, शरीर से निकले हुए पुरीष के विषय में साक्र-माक्र बातें करने का है ।

ऐसी साक्र-माक्र बातों की आवश्यकता है, यह बात इसी से प्रमाणित होती है कि आजकल के मनुष्यों के तीन चौथाई, थोड़ा या बहुत बड़कोष्ठ की बीमारी और उसके दुःखदायी परिणामों को भोगते हैं । यह बात प्रकृति के विपरीत है और इसका कारण इतनी आसानी से दूर किया जाता है कि मनुष्य आश्चर्य करने लगता है कि क्यों ऐसी दशा प्रापम रक्खी जाती है । इसका एक ही उत्तर हो सकता है इसके कारण और इसके निवारण से अनभिज्ञता । यदि हम मनुष्य को इस विपत्ति के दूर करने के कार्य में सहायक हो सकें, और हम प्रकार मनुष्यों को प्रकृति के मार्ग पर पुनः लौटा जाने में स्वाभाविक दशा के स्थापित करने में समर्थ हो सकें, तो हम उन लोगों के, जो इस अध्याय से पृथ्वा करते हैं और इससे मुँह पेंत लेते हैं, पृथ्वाप्यञ्जक नाक भी तिकों-बने पर ध्यान न देंगे—और इन्हीं मनुष्यों को इस विषय के उपदेश को सबसे अधिक आवश्यकता है ।

जो लोग हम पुस्तक के पाश्चैदियों-संबंधी अध्याय को पढ़ें हैं, वे स्मरण करेंगे कि हमने हम विषय को उम स्थान पर छोड़ दिया था, जहाँ भोजन पतली चीजों में पहुँच गया था और उसमें का रस देह-यंत्र द्वारा खींचा जा रहा था । अब आगे हम हम बात को

## तेरहवाँ अध्याय

### शरीर-यंत्र की राख और फुजला

यह अध्याय आप लोगों में से उन मनुष्यों को जो अब भी शक्ति या उसके किसी अंग की नापाकीजगी और अश्लीलता के प्रयासों से बद्ध हैं—यदि हमारे शिष्यों में भी संयोग से ऐसे मनुष्य हों—यह अध्याय अरुचिकर लैयेगा। आप लोगों में से वे मनुष्य जो पार्थिव शरीर की कुछ प्रधान क्रियाओं के अस्तित्व पर ध्यान देना नहीं चाहते, और इस प्रयास पर कि कुछ शारीरिक क्रियाएँ प्रतिदिन के जीवन की एक अंग हैं लज्जा मानते हैं, उनको यह अध्याय अरुचिकर प्रतीत होगा, और वे इस अध्याय को इस पुरतक का बल्लंभ समझेंगे। ऐसी बात कि जिसको छोड़ ही देना अच्छा था, जिस पर ध्यान ही नहीं देना उचित था। उन लोगों में से हमारा यह कहना है कि हम पुरानी कहानी के उस शत्रुमुर्ख की राय के अनुसरण करने में कोई लाभ नहीं देखते ( किंतु बड़ी हानि देखते हैं), जिन्होंने अपने व्याधों के भय से अपने सिर को बालू में गाड़ दिया था, और अनिष्ट बात को अँत की ओट कर दिया था, और उनकी उपस्थिति पर ध्यान ही नहीं दिया था कि व्याधे उसके पास पहुँच गए और उसे पकड़ लिए। हम लोग कुछ शरीर और उसके कुछ भागों तथा क्रियाओं का इतना आदर करते हैं कि उनमें कोई नाशक या अशुभ बात नहीं देखते। और हम इन क्रियाओं के विषय में विचार करने या बातचीत करने में शृंखला करने की राय में निरा मृत्तंगा के और कुछ नहीं देखते। अगुलकर विषयों से मुँह केर खेने के रिवाज का यह परिणाम हुआ है कि मानव जाति के बहुत-से मनुष्य उन

साँचा ऊपर जाता है, तब मुखर ऊपर-ही-ऊपर बाईं ओर जाता है, तब बाईं ही ओर साँचा नीचे आता है, जहाँ एक विशेष प्रकार का मोड़ होता है, वहाँ से कुछ पतला होकर (जिसे पतली नाड़ी कहते हैं) गुदा में पहुँचता है, यहाँ शरीर का वह हिस्सा है, जहाँ से मल बाहर हो जाता है।

मलाशय एक बड़ी मन्थपाहिनी नाड़ी है, इस मल को ग्राह्य तौर से बाहर निकाल बढ़ाना चाहिए। प्रकृति का उद्देश है कि मल बहुत जल्द निकाल दिया जाय और मनुष्य अपनी मैमिगिक अवस्था में, जानवरों की भाँति, इस मल को बहुत शीघ्र ही निकाल बढ़ाना है। परंतु उधो-उधो वह अधिक समय होता जाता है, उधो-उधो उसे मल के बहा देने में कम सुविधा होती जाती है और इसलिये वह प्रकृति के हुक्म की पायंदी को मुक्तवी कर देता है; अंत में वह हुक्म देने-देंते थक जाती है, तब अपने अनेक कामों में से किसी दूसरे काम में लग जाती है। मनुष्य इस अस्वाभाविक अवस्था को, पानी पीना कम करके और भी बढ़ा देता है और मल को मुलायम, नम, ढीला बनाने के निमित्त ही आवश्यक पानी में कमी नहीं करता, किंतु, शरीर-भर में पानी की इतनी कमी कर देता है कि प्रकृति निराश होकर शरीर के अन्य भागों में थोड़ा बहुत पानी पहुँचाने के लिये इसी मलाशय के रहे-सहे थोड़े पानी को मलाशय की दीवारों द्वारा खींचने लगती है। जब चरमे का पानी नहीं पाती, तब गंदी मोरियों ही के पानी से काम निकालती है। नतीजे की कल्पना आप ही कीजिए। मनुष्य जो इस मलाशय के मल को, पानी कम कर देने के कारण, निकाल नहीं सकता, उसी का परिणाम बढ़-कोष्ठ होता है और वह बढ़कोष्ठ अनेक अस्वस्थताओं का उत्पत्ति-स्थान है, जिसकी वास्तविक दशा पर किसी का ध्यान नहीं पहुँचता। बहुत-से मनुष्य, जिनका प्रतिदिन मलविसर्जन भी होता है, कोष्ठ-

देखेंगे कि जब देह-यंत्र यथामाप्य कुल पोषणकारी रस को खींचे है, तब भोजन की सीढ़ी का क्या होता है—उस पदार्थ का त्रिमेयंत्र काम में नहीं ला सकता।

ठीक इसी जगह यह कह देना मुनासिब होगा कि जो लोग योग के तरीके से अपने भोजन को खाते हैं, जैसा इस किताब के अन्य अध्यायों में बतलाया गया है, उनके भोजन की सीढ़ी व मनुष्यों की सीढ़ी की अपेक्षा जिनका भोजन थोड़ा ही बहुत पावर और अपना के योग्य बनकर आमाशय में पहुँचाता है, मित्रदा में बहुत कम होगी। मामूली मनुष्य अपने भोजन का कम से कम आधा भाग सीढ़ी के रूप में निकाल देता है—परंतु जो लोग योगी तरीके का अनुसरण करते हैं, उनको सीढ़ी बहुत ही थोड़ी और मामूली मनुष्यों की सीढ़ी की अपेक्षा बहुत कम बंदबूदार होती है।

अपने विषय को श्रुत्य समझने के लिये हमें शरीर के उन अवयवों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए जिन्हें यह काम करना पड़ता है। बड़ी अंतर्द्वी या मलाशय वह अंग है जिस पर ध्यान देना होगा। मलाशय एक लंबी नाली है, जो क्रूरिय-क्रूरिय पाँच फीट लंबी होती है और जो पेट में दाहनी ओर नीचे से ऊपर उठती है और ऊपर ही ऊपर बाईं ओर ऊपर जाती है, तब बाईं ही ओर नीचे जाती है और यहाँ पर यह मोड़ खाती है और कुछ पतली हो जाती है और अंत में मल फेंकने के द्वार, गुदा में समाप्त हो जाती है। पतली अंतर्द्वी खाए हुए भोजन की लुगदी को इस बड़ी अंतर्द्वी या मलाशय में, दाहनी ओर नीचे की तरफ एक किवाड़दार द्वार से छोड़ देती है; यह किवाड़दार द्वार ऐसा बना रहता है कि उसमें से चीजें निकल तो सकती हैं, पर उसमें प्रवेश नहीं पा सकती। कीड़े की शकल का मांसखंड, जहाँ पेंडिसिटिस-नामक बीमारी होती है, इसी द्वार के नीचे रहता है। पेट में दाहनी ओर

भी इतना बुरा हो जाता है कि हममें कीड़े पड़-जाने हैं और हमी  
 चंदे देने और पृथि कराने हैं। जो मज पतली अंतर्दियों में मज्जा-  
 शय में आता है, वह गाढ़ा खेई की भाँति होता है और यदि मज्जा-  
 शय व्याकृत और चिकना हुआ और गति स्वाभाविक हुई, तो जरा-सा  
 और ठोस और हलके रंग का होकर हमें शरीर के बाहर हो जाना  
 चाहिए था। मज्जाशय में जितनी ही देर मज रहता है, उतना ही  
 मज्जा और सूखा होता जाता है और उतना ही उसका रंग भी गाढ़ा  
 हो जाता है। जब काफ़ी पानी नहीं पिया जाता और प्रकृति के  
 लक्षणों को प्रसन्न के वक्त के लिये मुकनवा कर दिया जाता है और  
 फिर भुजा दिया जाता है, तब सूखने और मज्जा होने की क्रिया  
 प्रारंभ हो जाती है। और जब बहुत देर के परधान मज त्यागने की  
 वक्त आता है, तो मज का एक भाग बाहर जाता है, शेष  
 मज्जाशय में चिपटने के लिये रह जाता है। दूसरे दिन सोदा और  
 भी मज हममें चिपट जाता है और हमी भाँति हुआ करता है, जब  
 तक कि जीर्ण चटकोट की बीमारी नहीं हो जाती, और उसके अनु-  
 सारी रोग जैसे बदनहमी, पिनाधिकता, चकनरोग, गुर्दे की बीमा-  
 रियों आदि नहीं हो जाती—वस्तुतः हम मज्जाशय की गाढ़ा चकन्या  
 से सभी बीमारियों को लेती पहुँचती है और बहुत-सी बीमारियों  
 तो प्रायः हमी कारण से पैदा ही होता है। बी रोगों में आये तो  
 हमी चकन्या द्वारा संबंधित या उत्पन्न होते हैं।

हम मज को देह-संज्ञ के रश्मि में लिख जाने के दो तरीके होने  
 हैं, पहले तो देह-संज्ञ की पानी पाने की इच्छा, दूसरे प्रकृति का जी  
 मोदकर उपयोग कि मज को लीचकर पसोने, गुर्दों और केशों  
 की राह निकाल दे। प्रकृति के इस प्रकार उस मज के दूर करने के  
 उपयोग का, जो मज्जाशय द्वारा दूर होना चाहिए था, परिणाम दुर्गंध  
 पसीरा और दुर्गंध कीस हुआ करते हैं। प्रकृति इस मज के क्षण

यह रोग भी कैसे रहते हैं, यद्यपि उनको हमकी प्रवर भी नहीं रहती। मलाशय की शीपारों में जमा हुआ सफ़्त मल अकस्मात् चिपट जाता है और कुछ तो यहाँ बहुत दिनों से चिपटा पड़ा है, अकस्मात् चिपटे हुए मल के बीच में एक छोटे छिद्र द्वारा प्रतिदिन के मल का थोड़ा भाग बाहर निकल जाया करता है। बहुतोठ उप रोग को कहते हैं, जिसमें मलाशय पूरा साफ़ और चिपटे हुए मल के कारण निर्वाच नहीं रहता।

जब मलाशय पुराने चिपटे हुए मल से भर जाता है, या अंश-मात्र भी भर जाता है, तो यह कुछ शरार के लिये विष उत्पन्न करता है। मलाशय की दीवारें होती हैं, जो मलाशय की चीजों का रस खींचा करती हैं। डॉक्टरों के बर्णनों से प्रत्यक्ष है कि मलाशय में दवा घोलने से यह सब शरीर में पहुँच जाती है। इस प्रकार दवा थोड़ी हुई शरीर-यंत्र के दूसरे भागों में पहुँच जाती है और जैसा पहले कहा गया है, मल के द्रव भाग को वेद-यंत्र खींच लेता है; मोरी का गंधा जल प्रकृति के काम में, शरीर में स्वच्छ जल कम पहुँचाने के कारण, काया जाता है। कोष्ठमल मलाशय में कितने दिनों तक पुराना मल टहरेगा, जल्दी विश्वास में नहीं आता। ऐसी घटनाएँ लिखी हुई मिलती हैं कि जब मलाशय की सफ़ाई की गई है, तब उसमें से बहुत महीनों पहले खाए हुए फलों के बीज मल के साथ निकलते हैं। रेचक औषधियों से ऐसे पुराने और सफ़्त लिपटे हुए मल नहीं निकलते, क्योंकि रेचक औषधियाँ केवल आमाशय और पतली अंतर्द्वियों के द्रव्यों को ढीला करती हैं, और मलाशय में कुछ मनुष्यों के मलाशय में तो पुराने मल जमा होकर मुलायम पत्थर के कोयले की भाँति सफ़्त हो गए रहते हैं, यहाँ तक कि उनका पेट भी फूल जाता और सफ़्त हो जाता है। यह पुराना मल

करने और स्वाभाविक दशा प्राप्त करने के लिये हमें क्या करना चाहिए ?" अस्त्रा, हमारा उत्तर यह है—“पहले तो आप मल के अस्वाभाविक ज़ाबोरे को दूर कीजिए तब प्रकृति के पप का अनुसरण करके अपने को मधुर, गाढ़ और स्वस्थ बनाइए। हम इन दोनों बातों के करने की तरीकीय घताने का पल्ल करेंगे।”

यदि मलाशय में थोड़ा मल जमा है, तो मनुष्य उसे पानी पीने में अधिकता करके और मल त्यागने की स्वाभाविक गति, इच्छा और आदत को उल्लेखित करने से और मलाशय के देहाणुओं की चेतनता पर धमर पहुँचाने से ( जैसा आगे वर्णन होगा ) दूर कर सकता है। परंतु उन मनुष्यों में से जो मन-ही-मन हमसे यह प्रश्न कर रहे हैं, आपसे वे अधिक ऐंसे हैं, जिनके मलाशय थोड़ा बहुत पुराने, सघन, चिपटे हुए, हरे रंग के उस मल से भरे हुए हैं जो वहाँ महीनों, बल्कि और भी अधिक समय से पड़ा है; इनके लिये तो विशेष उपाय बतलाना पड़ेगा। हम बिपत्ति की बुझाने में चूँकि वे प्रकृति के पप से दूर चले गए हैं, हमलिये हमें पहले प्रकृति का महापता पहुँचाना चाहिए, जिससे अब तो उसे काम करने के लिये गाढ़ मलाशय मिले। उपाय के इशारे के लिये जानवर-योनि में हँसना चाहिए। सीकड़ों परं हुए कि भारतवर्ष के निवासियों में देखा कि एक प्रकार की खंडी टोंगोंवाली चिड़िया—जिसके बड़े-बड़े खोंच थे—बड़ी दूर की यात्रा करके बड़ी बुरी अवस्था में छोट आई थी, जिसका कारण था तो कोहबद खपल्ल करनेवाले फलों का खाना था जहाँ गई थी वहाँ पीने के पानी की कमी थी—संभव है कि दोनों बातें रही हों। ऐसी चिड़िया बहुत ही लंबी हुई दशा में नदी के तीर पर पहुँची, जो निर्बलता के कारण अब वह भी न सकती थी। चिड़िया ने तब अपने खोंच और मुँह को नदी के पानी से भर लिया और तब खोंच को गुदा में दाखल करने में पानी भरने



रहने की सुराहियों को जगती है, और इसलिये इस सब को दूना मागों में मिटा देने का प्रणव उद्योग करना है। चाहे इस उद्योग में रुधिर और शरीर अर्द्धविनाश ही क्यों न हो जायें। मलाशय की इस दुरवस्था ही के कारण अनेक बीमारियाँ और पीड़ाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि जब कारण पक बात दूर कर दिया जाता है ( अर्थात् मलाशय साफ कर दिया जाता है ), तो मनुष्य ऐसी-ऐसी बीमारियों से बचने होने लगते हैं, जिनका ज़ाहिरा कुछ भी संबंध कारण से नहीं था। मलाशय की दुरवस्था के कारण जो बीमारियाँ पैदा होती और बढ़ती हैं, उनके अलावे यह बात भी बहुत ही साफ है कि ऐसे मलाशयवाले के शरीर में छूट की बीमारियाँ और टीकाइयों जैसी बीमारियाँ बहुत होती हैं; क्योंकि उनका ऐसा बुरा मलाशय इन बीमारियों के कीटाणुओं के अनुकूल शरीर को बना देता है। जो मनुष्य अपने मलाशय को साफ रखता है, उसको इन बीमारियों में पड़ने का बहुत ही कम भय रहता है। तनिक कल्पना तो कीजिए कि यदि हम म्युनिसिपैलिटी की गंदी मलपवादिनी सोरियों की गंदगी को अपने शरीर के भीतर भर लें, तो क्या परिणाम हो—क्या वह कोई आश्चर्य की बात है कि जिस गंदगी के बाहर पड़े रहने से बीमारियाँ फैलती हैं, वही गंदगी नस-नस में फैली रहे और बीमारी न हो। मेरे दोस्तों, अज्ञान से काम लीजिए।

अब हम समझते हैं कि हमने बहुत-सी विपत्तियों के कारण ( गंदे मलाशय ) के विषय में बहुत कुछ कह दिया, ( हम इस विषय में और भी कड़ी-कड़ी बातों से सैकड़ों सफाई भर दें पर ) शायद आप ऐसी दशा में आ गए हैं कि पूर्ण—“अच्छा मैं विश्वास करता हूँ कि ये सब बातें सही हैं और जो बात मुझे तकलीफ दे रही है, वह बात बहुत समझ में आ गई, परंतु इस गंदगी को दूर

य फिर बिप का भय न रह जाता रहा होगा। परंतु हम  
तने अधिक पानी के प्रयोग का उपदेश नहीं करते—स्मरण रखिए  
म लोग तब के पुराने कुत्रवाले मनुष्य नहीं हैं।

हाँ, अम्याभाविक दशा के कारण मलाशय के इन गंदे द्रव्यों को  
दूर करने के लिये प्रकृति को अम्यायी महापता की आवश्यकता  
पड़ती है और उसे मल को दूर करने के लिये लंबी चोंचोंवाली  
चिड़ियों और हिंदू-बुलपतियों के उदाहरण को, इस धीमती शताब्दी  
के परिष्कृत औजारों द्वारा, अनुसरण करना ही सर्वोत्तम उपाय है।  
जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह एक रबर की सस्ती पिचकारी है।  
यदि आपके पास एनिमा-नामक पिचकारी हो, तो और भी अच्छी  
बात है, नहीं तो मामूली ही पिचकारी से, जिसमें रबर का तुला  
लगा हो, काम निकल सकता है। एक पाइंट गरम पानी लीजिए—  
इतना गरम हो कि जिसे हाथ आराम से सह सके। पानी को पिच-  
कारी द्वारा मलाशय में छोड़िए। कुछ चयों तक मलाशय में पानी  
को रोके रहिए और तब शरीर से निकाल डालिए। इस अभ्यास  
के लिये रात का समय बहुत अच्छा है। दूसरी रात दो पाइंट गरम  
पानी लीजिए और उसका भी वैसे ही प्रयोग कीजिए। तब एक रात  
नागा कर दीजिए और बादवाली रात में तीन पाइंट पानी लीजिए।  
तब दो रात नागा कीजिए और तीसरी रात को ४ पाइंट पानी  
लीजिए। शूनैः-जनैः आपको मलाशय में पानी रोकने का अभ्यास हो  
जायगा और अधिक पानी से मलाशय ज़ासी और से साफ़ हो जा-  
यगा। थोड़ा पानी पहले से पीले मल को धो डालेगा और सफ़्त  
मल को दीवारों से धुँदाकर उसे खड़-खंड कर देगा। चार पाइंट  
अर्थात् दो कट पानी से भय मत खाइए। आपका मलाशय इससे  
भी अधिक पानी धारण कर सकता है; कोई-कोई मनुष्य तो चार  
कट पानी छे छेते हैं, परंतु हम इतने पानी को अतिशय समझते

सगी, जिसमें मोचे की चर्मी में उम्रे आराम मिलने लगा। इस विषय को विदिया ने कई बार किया, जब तक उमकी चैतनी मित्रवत् मात्र न हो गई। तब आखिरी गह्र धीटकर आराम करने लगी उस तक उममें फिर जीवत् न आ गया; फिर नदी में दूध पानी पड़े कर हट और चंचल बनकर उड़ गई।

कुलपतिवों और पुरोहितों ने जब इस घटना को और विदियों पर उसके आश्चर्यजनक प्रमाण को देखा, तो इस विषय में विचार करने लगे और किसी ने कहा कि इसकी परीक्षा वृद्ध मनुष्यों में से किया पर का जानो चाहिए, जो परिधम की कमी और बैठे रहने का आदत में प्रकृति के मोचे मार्ग में विचलित हो गए थे और कोष्ठपद के रोग में पड़ गए थे। जब उन लोगों ने पिचकारी की भौंति का एक भौजार खंटी में सुरास-वाली घास का बनाया और इसके द्वारा कोष्ठपदवाले वृद्धों की चैतनी में पानी छोड़ने लगे। परिणाम बड़ा आश्चर्यजनक हुआ। वृद्ध मनुष्यों को मानो जीवन का नया पट्टा मिल गया, उन लोगों ने नई दुल्लहिन से विवाह किया और वे कुल के उधमों में लग गए और फिर उन्होंने कुलपति का भार अपने सिर ले लिया जिससे नवयुवकों को बड़ा आश्चर्य हुआ जो इनके जीवन से पहले बहुत निराश हो चुके थे। दूसरे कुलों के वृद्ध मनुष्यों तक ये समाचार पहुँचे और वे नवयुवकों के कंधों पर चढ़कर इनके पास आने लगे— और जब लौटे तब बिना सहायता के पैदल गए। तब का जो वर्णन सुनने में आता है उससे अनुमान होता है कि उनकी विचकारी की क्रिया यकी हिम्मत की रही होगी, क्योंकि उसमें बहुत अधिक पानी का वर्णन किया जाता है, और प्रयोग के समाप्त होने तक उनका मलाशय अच्छी तरह साफ हो जाता रहा होगा और ऐसी दशा का हो जाता रहा होगा कि उसमें

देते—हम इसको स्वाभाविक आदत नहीं समझते, और हमारा यह विश्वास है कि यदि स्वाभाविक आदतों ही का अवलंबन किया जायगा, तो स्वाभाविक रीति में मज का त्यागना हुआ करेगा और पिचकारी के प्रयोग की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हम पिछले ही जमा हुए मज की सहाई के लिये पिचकारी के प्रयोग का उपदेश करते हैं। महीने में एक बार यदि मज के बढ़ने को रोकने के लिये पिचकारी से लो जाय, तो उसमें हम हानि नहीं देखते। अमेरिका में बहुत-से ऐसे स्वास्थ्य-संस्था हैं, जो सर्वदा पिचकारी के प्रयोग करने का उपदेश देते हैं। हम उनसे सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि हमारा सिद्धांत यह है कि “प्रकृति के पथ पर लौट आओ” और हमारा विश्वास है कि प्रकृति नियम का पिचकारी का प्रयोग नहीं चाहती। योगियों का विश्वास है कि काशी ताजा शुद्ध पानी पिया जाय, नियमानुसृत मज त्याग जाय और मछाना से कुछ “बाग बह” ली जाय, तो बड़कोष्ठ से बने रहने के लिये जो कुछ आवश्यक है, सभी हो जाय।

एक द्रव्य की पिचकारी (धौल) दिया के परचार (और हमसे पहले भी) अच्छी तरह से पानी पीना प्रारंभ करो, जैसा हम इस विषय के अध्याय में कह आए हैं। प्रतिदिन दो बार पानी पिया करो, हमसे जुड़े उच्चति दिखाई देने लगेंगी। कमजोर निचल करके उठी समय पर नियम मज त्यागने के निमित्त आया करो चाहे हाजम मालूम होती हो या न मालूम होती हो। धीरे-धीरे आपकी आदत गिर हो आयेगी, क्योंकि प्रकृति आदत हाजने की नहीं चाहती रहती है। संभव है कि आपकी मज त्यागने की आवश्यकता हो पर वह आपकी मालूम न पड़ता हो, क्योंकि आपने तो बार-बार आपकी आदतें बनाई की रीति-रिवाज की अनुसरण कर दिया है, इसलिए आपकी वह रीति से फिर प्रारंभ करना

हैं। पानी लेने के पहले और पीछे पेट को मसिष्ट और जर्र समाप्त हो जाय, तो योगी की पूरी सॉस का अभ्यास कर रूग्ण जिसमें आपको उत्तेजना मिल जाय और रश्मि-संचार में सौख्य हो जाय।

इन प्रयोगों में जो मज्ज निकलेगा, वह मातृक रिक्त वाजों को बहुत ही चरबिद्ध होगा, परंतु प्रत्येक तो मज्ज को पीने के लिये दूर कर देने का है। इस प्रयोग में जो मज्ज पहले आता है वह बहुत ही दुर्गंध और घृणोत्पादक होता है, परंतु, जीवा-नैश्वर्ग्य न हो, शरीर के भीतर रहने की व्यवस्था तो हमें बाहर ही निष्कास देना पड़ता है। वह भीतर रहेगा, ता भी उतना ही दूराव रहेगा, जिस बाहर निकलने पर है। इस ऐसी घटनाओं को भी जाने हुए हैं, जिसे बहुत मज्ज के बड़े-बड़े दुष्कृत, गणन और हरे, जैसे तृप्ति के भी हों, मनुष्यों के शरीर में निकले हैं, और इनकी बरतू उपायों के निकली हैं, जिसमें वही प्रमाण मिल गया है कि हमारे भीतर रहने में कितनी हानि हो गई होगी। नहीं, वह बिल प्रमाण वाले बाबा पाद नहीं हैं, परंतु वह पाद या आधारवक है कि बाग भीनी लकड़ी की मरिमा को समझ जाय। बाहर को देना जान वेना कि जिस गणन में बाहरने मज्जास्य का गणन किया है, उस गणन में बाहरको स्वाभाविक मज्ज स्वागने की बागन बाग या विरक्त नही हुई है। इसकी वज्र बिना नहीं है, क्योंकि पानी ने उम मज्ज को भी बहाया है, जिसे बाग मज्ज स्वागने के समझ निष्कासने। वह मज्ज की लकड़ी की बिना समझ हो जायेगा, जो हमारे हाथ या जीव रिक्त बागन बाहरको स्वाभाविक रिक्त में मज्ज स्वागने की वज्रता होने लगेगी।

अब इसी वज्र वज्र बागन बागन इन वज्र की बाग रिक्त है कि इस वज्र बागन रिक्तारी के बागन का बागने नही

अब मेरे मित्रो, यदि आप को छवद् के रोग को भोगे हैं, और कौन नहीं भोगे हैं, तो आप ऊपर ज़िम्मी सलाह को ज़ामदायक गायेंगे। इसमें फिर घड़ी गुज़ाबी कपौत्र और मुंदर चमड़े हो गायेंगे—इसमें सूत्रापन, यह ख़ारदार ज़बान, यह दुर्गंध श्वाप, यह दुःखदायी यकृत और भरे मज़ाशय से जो-जो बीमारियों का परिवार उ खड़ा होता है—वह अवरोधित ज़ागी, जो सब शोषों की मूल—मय दूर हो जावेंगे। इस क्रिया को परीचा कीजिए, तो आप जीवन का शुभ भोगने लगेंगे और स्वामादिक स्वच्छ तथा स्वस्थ रूप्य हो जायेंगे। अब समस्ति के समय करने ग़लाम को चमकते ऊँटों पानी से भर कीजिए और इस स्वास्थ्य-प्राथना में सम्मिलित जाइए “यह स्वास्थ्य के लिये—पुच्छल स्वास्थ्य के लिये है।” र ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे पानी को पीजिए, मन-ही-मन यों कहते हैं “यह पानी हमारे लिये स्वास्थ्य और बल का जानेवाला—यह स्वयं महतिदल पुष्टिकर औषधि है।”



पड़ेगा। इस बात को भूलिए मत—यह सीधी परंतु कालत बात है।

जब आप पानी पीने लगे, तब स्वतः सूचना दिया करें, तो उसे लाभकर पावेंगे। मन-ही-मन यों कहिए, “इस इस पानी को इस-लिये पी रहे हैं कि यह हमारे शरीर-यंत्र में आवश्यक द्रव उपस्थित करे। यह हमारी श्रैतदियों का प्रकृति के उद्देश के अनुसार स्वतंत्रता से और नियमित रूप पर संचालित करेगा।” आप अपने देह-यंत्र में जो कार्य माचा चाहते हों, उसका ध्यान बनाए रखिए, तो जरूर ही फल सिद्ध होगा।

अब एक ऐसा बात है, जो आपको जब तक आप उसके पूरे विवरण को न समझेंगे, कङ्कल-सी मालूम हो सकती है। (इस परी उसकी क्रिया-मात्र देखते हैं, और उसके विवरण को आगे अन्य अध्याय में समझावेंगे)। यह मन्त्राशय से “बात कहना” है। वेद पर, मन्त्राशय के स्थानों पर हाथ से मुद्रायाम धारियाँ दो और उससे कहो, (हाँ, बातें करो) “देखो मन्त्राशय, हमने तुम्हारी अच्छी तरह से समझाई कर ली है, और तुम्हें साक्षात् और तात्कात बना दिया है—इस तुम्हें उचित रीति से अपना काम करने के लिये पानी दे रहे हैं—इस नियमित आदतें बाल रहे हैं, जिनसे तुम्हें काम करने का पूरा अपसर मिले—और अब तुम्हें काम करने में लग जाना चाहिए।” मन्त्राशय के स्थान पर कई बार धारियाँ धारित और कहा कीजिए “अब तुम्हें करना है। पड़ेगा।” और तुम्हें मालूम होगा कि मन्त्राशय उसे का छोड़ेगा। वास्तव यह बात आपका लक्षकों की श्रेष्ठ-सी प्रतीति होगी है—आप इससे आर्थ को लक्ष्य लगे, जब आप आवापन अवस्था के शासन-विषयक अध्याय को पढ़ेंगे। यह वैज्ञानिक बात के सिद्ध करने का माया उपाय है—प्रत्यक्ष शक्ति की प्रकाशित करने का सरल रीति है।

बिना स्वामंत्रि के उमका जीवन केवल कतिपय क्षण ही द्वारा नाश जा सकता है।

मनुष्य जीवन के लिये स्वामंत्रि पर ही अवलंबित नहीं रहता, किंतु वह सही साँस लेने की भावना पर अवलंब कामा है कि जिससे लगातार जोषट और रोगों से छुटकारा बना रहे। अपने स्वामंत्रि लेने की शक्ति पर विचार-पूर्वक अधिभार रखने से इस भूमि पर के हमारे आयु के दिन बढ़ जायेंगे, क्योंकि हमें अधिक जोषट और रोगों से मुक्तिमिला करने की शक्ति मिलती रहेगी; और इसके विपरीत अधिभार और अभावधानी की साँस से जोषट घट जाने के कारण और रोगों के लिये द्वार खुले रहने से आयु के दिन घट जाने हैं।

मनुष्य को उमकी स्वाभाविक अवस्था में स्वामंत्रि की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। नीच जंतुओं और बच्चों की भाँति, वह स्वाभाविक और उचित रीति से साँस लेता था, परंतु सभ्यता ने उसे इस और अन्य विषयों में बिलकुल बदल दिया है। उसने चलने, खड़ा होने और बैठने की अनुचित रीतियों को धारण कर लिया है, जिन्होंने उसके स्वाभाविक और सही तरीके से साँस लेने के नैसर्गिक अधिकार को उससे छीन लिया है। उसने सम्यता का महंगा मूल्य दिया है। जंगली मनुष्य आज भी स्वाभाविक रीति से साँस लेता है, यदि सम्य मनुष्य की सम्यता की छूट से वह भी बलवन्त न हो गया हो।

उन सम्य मनुष्यों की श्रम, जो सही साँस लेते हैं, बहुत थोड़ी है, और इसका परिणाम संकुचित छातियों, मुँह के हुए कंधों और श्वास लेने के अवयवों की भयंकर बीमारियों की वृद्धि में जिसमें वह संघातक राक्षस भी शामिल है, जिसे चर्चा करते हैं प्रोत्थित होता है। प्रख्यात प्रमाण पुराणों ने कहा है कि सही साँस



# चौदहवाँ अध्याय

## योगियों की श्वासक्रिया

जीवन बिलकुल श्वास लेने की क्रिया पर अवलंबित है। “श्वास ही जीवन है।”

पूर्वाय और परिचमीय लोग विचारों और नामावलिओं में घाटे कितना ही भेद करें, पर इन मूल-तत्त्वों में दोनों सहमत हैं।

श्वास ही लेना जाना है, और श्वास के बिना जीवन नहीं है। केवल उच्च योनि ही के जंतु जीवन और स्वास्थ्य के लिये श्वास पर अवलंबित नहीं रहते, किंतु नीच योनि के जंतुओं को भी जीवन के लिये श्वास लेना पड़ता है, और पौधों को भी अपनी सजातार सत्ता रखने के लिये हवा के आश्रित होना पड़ता है।

नवजात शिशु एक लंबी गहरी साँस खींचता है, उसे एक पण उसकी प्राणदायिनी शक्ति ग्रहण करने के लिये रोक रखता है, और तब फिर लंबी प्रश्वाम द्वारा उसे बाहर निकाल देता है, और अहा ! उसका इस पृथ्वी पर का जीवन शुरू हो जाता है। बृद्ध मनुष्य निर्यत्न श्वास देता है, श्वास लेना बंद कर देता है और उत्तका जीवन समाप्त हो जाता है। नवजात शिशु की पहली साँस से लेकर मरते हुए मनुष्य की अंतिम साँस तक साँस लेने की लगातार कहानी रहती है। जीवन श्वासों ही की एक श्रृंखला है।

श्वास लेना, शरीर की क्रियाओं में से, सर्वप्रधान क्रिया समझी जा सकती है, क्योंकि यस्तुतः अन्य सभी क्रियाएँ इसी के आश्रित रहती हैं। मनुष्य बिना खाए कुछ समय तक रह सकता है; उससे भी लघुतर समय तक बिना पानी पीए रह सकता है; परंतु

नाम में जीवनशक्ति या प्राण को अधिक प्रवाह के साथ भेज सकता और उस इंद्रिय या भाग को अधिक दृढ़ और बलवान् बना सकता है। वह सही समय लेने के विषय में उन सब बातों को जानता है जिन्हें उसके पश्चिमी भाई जानते हैं, परंतु, वह यह भी जानता है कि उसमें आवर्तोजन, ईंदोजन और मींदोजन के अन्तर्गत कुछ और भी है, और रुधिर में केवल आवर्तोजन मिश्रित करने के लिए और बाक भी मिश्र की जाती है। वह प्राण के विषय में जानता है, जिसमें उसके पश्चिमी भाई अनभिज्ञ है, उस महाशक्ति नाभ के प्रयोग की प्रकृति और रीति को ही तरह जानता है, और उसे पूरा ज्ञान है कि उस प्राण मानव शरीर और मन पर कैसा पड़ता है। वह कि तात्त्विक रसायन ( प्राणायाम ) द्वारा मनुष्य पंच में अपने को मिला सकता है और अपनी गुप्त विरासत में महाप्राप्ति पहुँचा सकता है। वह जानता है कि रसायन द्वारा वह अपनी और दूसरों की रीति ही को सही तरह कर सकता, बिना, भय और शिष्टों को भी दूर कर सकता है।

य के विचार में पहले हमको उस पंच की बारीगरी जान देना होगा, जिसके द्वारा रसायन की शक्ति। रसायनिकता की बारीगरी, ( १ ) चंद्रमा की गति की शक्ति और ( २ ) सूर्य के उस कोण के बाँटने से, जिसमें चंद्रमा रहते हैं, कोणिक गति और पंच के कोण के दृष्टि का वह गति में ( जिसे सूर्य का कोणिक गति कहते हैं ) वह सूर्य की गति, पश्चिम की ओर गति ( ३ ), सूर्य के

खेनेवालों की एक पीढ़ी भी मानवजाति का उद्धार कर दे, वे सामाजी इतनी विरक्त हो जाय कि वह चारधरों की दृष्टि में वे जाने लगें, चाहे वह पूर्वी या पश्चिमी दृष्टि से देखा जाय, जो मॉन खेने और स्वास्थ्य का संबंध गुरुतः देखने में और समझने में आता है।

पश्चिमी विद्या बगलानी है कि शारीरिक स्वास्थ्य बहुत ही मही मॉन खेने पर अवलंबित है। पूर्वी आचार्य केवल यही नहीं स्वीकार करते कि उनके पश्चिमी भाई मही हैं, किंतु कहते हैं कि उपरि मॉन खेने की आदत में शारीरिक मामों के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्ति, उमर, मुग्न आत्माधिकार स्वतः दृष्टि, सदाचार, और यहाँ तक कि उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी स्वास्थ्य-विज्ञान को समझ खेने में हो सकती है। पूर्वीय दर्शन के संप्रदाय के संप्रदाय हुए विज्ञान के आधार पर स्थापित हुए हैं, और इस विद्या को यदि पश्चिमीय जातियों ग्रहण करेंगी और अपने विशेष गुण के कारण इसे कार्यरूप में परिणत करेंगी, तो उनमें आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न कर देंगे। पूर्व देश के मंत्र पश्चिम के प्रयोग से जय मिलेंगे, तो यही उत्तम फल होगा।

इस जगह योगियों के स्वास्थ्य-विज्ञान का चर्च किया जायगा, जिसमें केवल उतनी ही विद्या नहीं है, जो पश्चिमी शरीर-शास्त्रियों और स्वास्थ्य-आचार्यों को ज्ञात है, किंतु इसमें योग का गूढ़ विषय भी है। यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य के मार्ग को उसी तरीके से नहीं बतलाती, जिसे पश्चिमी वैज्ञानिक गहरी साँस आदि कहते हैं, परंतु ऐसी तर्कों में भी प्रवेश करती है, जो बहुत कम लोगों को ज्ञात हैं।

योगी ऐसे अभ्यासों को करता है, जिससे उसे शरीर पर अधिकार — ज्ञात है और वह इस योग्य हो जाता है कि किसी इंद्रिय या

रखने से फेफड़ों को उनकी चरम सीमा तक फैला सकते हैं और इस तरह हवा के प्राणदायक गुणों को अधिक-से-अधिक मात्रा में इस देह-यंत्र के लिये ग्रहण कर सकते हैं।

योगी लोग श्वासक्रिया को चार साधारण तरीकों में बाँटते हैं, अर्थात्—

- ( १ ) उच्च श्वासक्रिया ।
- ( २ ) मध्य श्वासक्रिया ।
- ( ३ ) नीची श्वासक्रिया ।
- ( ४ ) योगी की पूर्ण श्वासक्रिया ।

इस पहले तीन तरीकों को साधारण वर्णन कर देंगे और चौथे तरीके का, जिसके आधार पर योगी का श्वास-विज्ञान स्थापित है, अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे।

### ( १ ) ऊर्चा श्वासक्रिया

इस प्रकार की श्वास को परिधमी लोग हँसखी की हड्डी की साँस कहते हैं। इस प्रकार से श्वास लेनेवाला मनुष्य पमलियों को उठा देता और हँसखी की हड्डी और कंधों को ऊपर उभाड़ देता है, साथ ही पेट को भीतर खींच लेता है, और उसमें की चीज़ों को ऊपर खींचकर छाती और पेट को घुपक् करनेवाली चर से भिजा देता है, जो चर भी ऊपर खिंच जाती है।

छाती और फेफड़ों का ऊपरी भाग, जो सबसे छोटा होता है, काम में लाया जाता है, और इसलिये कम-से-कम मात्रा में हवा फेफड़ों में जाती है। इसके अतिरिक्त श्वास की चर का ऊपर उठ जाने से उर और पैजाब नहीं हो सकता। छाती की बनावट को अल्पकाल करने से मनुष्य के चित्त पर यह बात बैठ जावेगा कि इस प्रकार श्वास लेने में अधिक-से-अधिक परिश्रम के प्रयोग से कम-से-कम लाभ होता है।

हड्डी और नीचे पेट और छाती को पृथक् करनेवाली मांस की चद्दर से घिरा होता है। इसकी उपमा सब ओर से बंद कुम्बेश्वर यन्त्र से दी गई है, जिसका कुम्ब ऊपर की ओर होता है, पीछा रीढ़ की हड्डी से बनता है, आगा छाती की हड्डी से और गालें पसलियों से बनती हैं।

पसलियाँ सण्या में २४ होती हैं, प्रत्येक गाल में बारह-बारह और रीढ़ की हड्डी की दोनों ओर से निचलती हैं। उपरी जोड़ियाँ तो सभी पसलियाँ फही जाती हैं, जो सीधे छाती की हड्डी से जुटी होती हैं; और निचली पाँच जोड़ियाँ मूठी पसलियाँ या हिलने-डोलनेवाली पसलियाँ फही जाती हैं, क्योंकि ये उस प्रकार जुटी नहीं होती; इनमें का भी दो ऊपरवाली तो मुलायम हड्डी (कुरी) द्वारा अन्य पसलियों से जुटी होती हैं; शेष में कुरी भी नहीं होती और उनके अगले बिरे बिलकुल छुटे होते हैं।

श्वासक्रिया में पसलियाँ ऊपरी दो तह मांसपेशियों से संचालित होती हैं। छाती और पेट के बीचवाली मांस की चद्दर, जिसका दर्शन ऊपर हो चुका है, छाती के खोखले को पेट से पृथक् करती है।

श्वास भीतर खींचने की क्रिया में मांसपेशियों फेफड़ों को फैला देती हैं, जिससे फेफड़ों में रिक्तस्थान उत्पन्न हो जाता है, और उस स्थान को भरने के लिये प्रत्येक भौतिक नियम के अनुसार बाहर से हवा भीतर जाती है। श्वास लेने में जिन मांसपेशियों का काम पड़ता है, उन्हीं पर प्रत्येक श्वास-विषयक बात अवलंबित है, इसलिये उन मांसपेशियों को हम सुविधा के लिये "श्वासवाली मांसपेशियाँ" कह सकते हैं। बिना इन मांसपेशियों की सहायता के फेफड़े फैल नहीं सकते, और इन्हीं मांसपेशियों के उचित प्रयोग और उन्हें अपने आयत्त में रखने पर, श्वास-विज्ञान अधिकतर अवलंबित है। इन मांसपेशियों को उचित रीति से अपने आयत्त में

कहते हैं; और यह यद्यपि ऊँची साँस की अपेक्षा कम आपत्तिजनक है तो भी नीची साँस और योगी की पूर्ण साँस की अपेक्षा तो बहुत ही खराब है। मध्य श्वास में छाती और पेट के बीच की चढ़र ऊपर खिंच जाती है, और पेट भीतर खिंच जाता है। पसलियाँ कुछ ऊपर उठती हैं और छाती कुछ थोड़ी फैल जाती है। यह तरीका उन मनुष्यों में पाया जाता है जिन्होंने इस विषय का अध्ययन नहीं किया है। चूँकि हमसे बेहतर दो तरीके और हैं इसलिए हम तरीके का बहुत थोड़ा ही वर्णन किया गया है और बड़ भी हमलिये कि आपका ध्यान उनकी त्रुटियों पर आकर्षित हो।

### ( ३ ) नीची साँस

साँस लेने का यह तरीका पहले पढ़े हुए दोनों तरीकों से बहुत ही अच्छा है और हाल सालों में बहुत-से पश्चिमी लेखकों ने इसकी बड़ी महिमा गाई है और इसकी प्रशंसा "पेट की साँस", "गहरी साँस" आदि नामों से की है; और लोगों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित होने से लाभ भी बहुत हुआ है, क्योंकि बहुत-से लोग जो पहले ऊपर लिखी हुई दोनों रीतियों से साँस लेते थे, अब हम रीति से साँस लेने लगे। इसी नीची साँस के आधार पर बहुत-से नए तरीके निकाले गए और शिष्यों को इन नए ( १ ) तरीकों के लिये फकी क्रीमत्तें भी देनी पड़ीं। परंतु, जैसा हम कह चुके हैं, हमसे लाभ बहुत हुआ है, और अंत में उन शिष्यों को, जिन्होंने महुँगी क्रीमत्तें दीं, और निरुपेक्ष रीति को त्याग कर अर्द्धा रीतियों को धारण किया, क्रीमत्त के अनुसार लाभ मिल गया।

यद्यपि बहुत-से पश्चिमी विद्वान् हम तरीके को सर्वोत्तम तरीका लिखते और कहते हैं, परंतु योगी इसे जानते हैं कि यह उस तरीके का एक अंग-मात्र है, जिसे वे सैकड़ों वर्ष से अभ्यास करते आते हैं, और जिसे "योगी की पूर्ण साँस" कहते हैं। यह बात स्वीकार करने

ऊँची श्वासक्रिया मनुष्य की जानी हुई क्रियाओं में से सबसे निकृष्ट है और इससे अधिक-से-अधिक शक्ति प्रचुर करने में आवश्यकता पड़ती है और थोड़ा-से-थोड़ा लाभ होता है। यह शक्ति बरबाद करनेवाला और कम लाभ देनेवाला तरीका है। यह पश्चिमी जातियों में बहुत प्रचलित है; बहुत-सी औरतें इसी श्वास में मुग्धिता हैं; और गवैए, पादरी, बक्रील और दूसरे लोग, जिन्हें बेहतर ज्ञान होना चाहिए था, वे भी मूर्खता से इसी तरीके को बर्तते हैं।

शब्दोपपादक श्रवणों और श्वास के श्रवणों की बहुत-सी बीमारियाँ इसी बुरे तरीके से साँस लेने का सीधा नतीजा है; और इस रीति से साँस लेने में नाज़ुक श्रवणों पर जो-जो तनाव पड़ता है, उसमें वे कड़ी और बुरी आवाज़ें पैदा होती हैं, जो चारों ओर सुनाई दिया परती हैं। बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार साँस लेते हैं, उन्हें से साँस लेने की बुरी आदत में प जाते हैं, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

यदि शिष्य का कुछ भी संदेह इस प्रकार साँस लेने के विषय कहीं हुई बातों पर हो तो उसे स्वयं परीक्षा कर लेनी चाहिए। पहले वह केफड़ों में से सब हवा निकाल दे, तब सीधा ग्यदे होकर, जिसमें हाथ गालों में खट्खटे रहें, कंधों और हँसला की हड्डी को ऊपर उठावे और फिर साँस ले। उसे मालूम होगा की साँस ली हुई हवा की मित्रदार मामूली मित्रदार से बहुत ही कम है। अब फिर कंधों और हँसला की हड्डी को गिराकर साँस ले तब उसे श्वास लेने में ऐसी स्पष्ट शिष्टा मित्र जायगी जिसे वह अपने और बोले हुए शब्दों द्वारा प्राप्त शिष्टा की अपेक्षा बहुत दिन तक स्मरण रख सकेगा।

( १ ) सत्य साधना

साँस लेने के इस तरीके की परिणामी विज्ञान प्रणाली की साँस

सारा फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीका अधिक-से-अधिक आरसी-जन उपस्थित करने और अधिक-से-अधिक प्राण संचित करने के कारण मनुष्य के लिये अत्यंत हितकर है। योगी लोग जानते हैं कि पूरी साँस की रीति विज्ञान की जानी हुई सब रीतियों में सर्वोत्तम है।

### ( ४ ) योगी की पूरी साँस

योगी को पूरी साँस में ऊँची, मध्य और नीची तीनों प्रकार की साँसों के अच्छे गुण हैं और यह साँस तीनों प्रकार की साँसों के दोषों से बची हुई है। यह रीति साँस लेने के सारे यंत्र, फेफड़ों के प्रत्येक भाग, हवा की प्रत्येक कोठरी, और श्वास की प्रत्येक मांसपेशी को काम में लगा देती है। समस्त श्वास लेने का यंत्र, साँस की इस रीति में संचालित हो जाता है; और कम-से-कम शक्ति के ध्यय से अधिक-से-अधिक काम होता है। छाती का खोखला घरो और अपनी चरम सीमा तक फैल जाता है, और यंत्र के सब भाग अपने-अपने स्वाभाविक कर्तव्यों और क्रियाओं को करते हैं।

इस प्रकार साँस लेने में सबसे बड़ा यह गुण है कि श्वास लेने की मांसपेशियों पूरे तौर से काम में लगाई जाता है; और अन्य तरीकों में उनके एक भाग-मात्र प्रयोग में आते हैं। पूरी साँस लेने में और मांसपेशियों में से मांसपेशियों जिनका अधिकार परतियों पर रहता है, जोर से काम करना है, जिससे अवकाश बढ़ जाता है कि फेफड़े फैल सकें, और अवयवों को सुनामिश महारा, आवश्यकता पड़ने पर, मिल जाता है। कुछ मांसपेशियों तो निचली परतियों को उनके स्थान पर पकड़े रहती हैं, और कुछ उन्हें बाहर की ओर दबाना है।

और फिर इस रीति में पेट और छाती के बीचवाली चर पर



के योग्य है कि पूरी साँस को समझने के पहले नीची साँस से शक्ति हो जाना ही चाहिए ।

एक बार फिर पेट और छाती को घृयक् करनेवाली चर्र पर ध्यान दीजिए । यह क्या है ? हम लोग देख आए हैं कि यह एक मोसलेरी है जो पेट और उसके पदार्थों को छाती और उसके पदार्थों में घृयक् करती है । जब यह स्थिर रहती है तो पेट की ओर से देखने में आनमान की भाँति या छाता की तरह दिखलाई देती है; इसलिये यदि ऊपर छाती की ओर से हम पर दृष्टि डाला जाय तो यह कुन्वेरार अर्थात् उभड़े हुए टीले की भाँति दिखलाई देती है । जब यह चर्र काम करने लगती है तो कुन्वा नीचे को दबता है और चर्र पेट के अवयवों को दबाती है जिससे पेट कुछ आगे उभड़ जाता है ।

नीची साँस लेने में ऊपर लिखे हुए पहले तरीकों से साँस लेने की अपेक्षा फेफड़ों को और भी स्वतंत्रता से काम करना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि अधिक हवा साँस में जाती है । इसी से अधिकतर परिचमों विद्वान् इसी नीची साँस को ( जिसे वे पेट की साँस कहते हैं ) वैज्ञानिक सर्वोत्तम तरीका कहते और लिखते हैं । परंतु पूर्वाय योगी बहुत दिनों से हमसे भी अच्छे तरीके को जानता है और कुछ परिचमी छेसक भां भव हम यात को समझने लगे हैं । योगी की पूरी साँस को छोड़कर अन्य रीतियों में यह एक बड़ा दोष है कि किसी तरीके में भा फेफड़ा हवा से भर नहीं जाता—त्रिपाश-से-त्रिपादा फेफड़ों का एक भाग-मात्र भरता है—यहाँ तक कि नीची साँस में भी । ऊँची साँस में फेफड़ों का ऊपरी भाग जाता है; अन्य साँस में अन्य भाग और कुछ ऊपरी भाग भरता है; नीची साँस में नीचेवाले और बीचवाले हिस्से भरते हैं । यह बात प्रष्ट है कि त्रिग तरीके में सारा फेफड़ा हवा से भर जाय यह तरीका अन्य तरीकों की अपेक्षा अधिक पसंद करने के योग्य है । त्रिग तरीके से

ठठाना चाहता है तो उसे जो लगाकर इस क्रिया का और अभ्यास कर लेना चाहिए। श्वास-विज्ञान की क्रियाओं को कर लेने में बहुत फल प्राप्त होता है और जिसने इस को प्राप्त कर लिया है, वह इच्छा-पूर्वक अन्य तरीकों में फिर जायगा और अपने मित्रों से यही कहेगा कि "हमें अपने का पूरा फल मिल गया।" हम इन बातों को अभी कह कि आप हम योगीश्वासक्रिया के सिद्ध करने की आवश्यकता श्रमता को पूरी तरह से समझ जायें, और इसे छोड़कर इस की आगे लिखी हुई क्रियाओं में से किसी चित्ताकर्षक क्रिया लिपट जायें। हम फिर आपसे कहते हैं कि सही रीति से आरंभ कीजिए तो सही नतीजा मिलेगा; परंतु यदि आप नींव साथ लापरवाही करेंगे तो आपका सारा भवन, शीघ्र ही या, बह जायगा।

योगियों की पूरी सौंस कैसे प्राप्त की जाय इसकी शिक्षा देने के यह बेहतर होगा कि पहले केवल श्वास ही के विषय में सरल श्रम दे दिए जायें और तब इसके परचान् उसके संबंध में साध्या-प्यान देने योग्य बातें बतलायें और तब आगे बढ़कर छाती, पेशियों और फेफड़ों को, जो अधूरी सौंस लेने से संतुष्टित में पड़े हुए हैं, पूरा विकसित करने के लिये अभ्यास चर्यान् रतें दें। ठीक इसी स्थान पर हम यह कह दिया चाहते हैं कि पूरी सौंस प्रचरदस्तो की, या अस्वाभाविक बात नहीं है, किन्तु, के विपरीत मूल नियमों पर झूटना, प्रकृति के मार्ग पर वापस ना है। स्वस्थ युवक अंगाली और स्वस्थ मध्यमता का बच्चा दोनों ही प्रकार सौंस लेते हैं; परंतु मध्यम मनुष्य ने जीवन की अस्वा-विक रीतियों को रहन, खजान और बछ परनने आदि में ग्रहण र बिधा है और अपनी भैरगिक स्थिति को खो दिया है। और

आयत्त में रहती है और अपने फायों को उचित रूप पर धौ द्ध भौति करती है कि अधिक-से-अधिक फायें हो सके ।

ऊपर लिखी हुई वस्तुतियों की क्रिया में नीचे की पम्पक्रियाएँ हो चढ़र द्वारा अधिकृत रहती हैं, जो उन्हें थोड़ा नीचे खींचती हैं और अन्य मांसपेशियाँ उन्हें आगे स्थान पर पकड़े रहती हैं और पम्पक्रिया के बीच की मांसपेशियाँ उन्हें बाहर की ओर प्रेरित करती हैं; इस संयुक्त क्रिया से छाती के बीच का खोखला पूरा-पूरा बढ़ जाता है । इस मांसपेशीक्रिया के अनिर्दिष्ट ऊपर का पम्पक्रिया भी वस्तुतियों को खींचवाली मांसपेशियों द्वारा ऊपर को उठाई और बाहर की ओर फैलाई जाती हैं जिससे ऊपरी छाती का विस्तार भी पूरी तरह फैल जाता है ।

यदि आपने धारो प्रकार की श्वासक्रियाओं का विशेषताओं को अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, तो आपको तुरंत मालूम हो जायगा कि पूरे शरीर में शेष तानों प्रकार की क्रियाओं की दृष्टि से आ जाती हैं और इनके अनिर्दिष्ट बढ़ जाय होता है कि छाती के ऊपरी, मध्य, और नीचेवाले भागों की संयुक्त क्रिया से और भी लाभ बढ़ जाता है और स्वाभाविक ताल प्राप्त हो जाता है ।

योगियों की पूरे शरीर सम्पूर्ण श्वास-विज्ञान की मूलाधार श्वास-क्रिया है और शिष्य को इससे भर्त्ता भौति अभिज्ञ हो जाना चाहिये और इसे पूरी तरह से सिद्ध कर खेना चाहिये तभी वह आगे लिखी हुई अन्य क्रियाओं से फल प्राप्त करने की धारा कर सकता है । इसे अधूरा ही करने से संतुष्ट न हो जाना चाहिये, परंतु जी खगा कर अध्याप करने रहना चाहिये, जब तक कि यह श्वास करने का स्वाभाविक तरिका न बन जाय । इसमें मिश्रण समाव और धैर्य की धारणकरना ज़रूरी, परंतु इन बातों से विनाश कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता । श्वास विज्ञान का मूलका कोई शिष्याव नहीं है और शिष्य

भाग तक, जो हँसली की इट्टी के स्थान में है, समगति से फैलता जाता है। द्विचक्र-द्विचक्र कर साँस मत खींचना। धीमी लगातार एक क्रिया बनाने का यत्न करो। अभ्यास द्वारा, इस साँस की क्रिया को तीन भागों में बाँटने की इच्छा हट जायगी और एक रस लगातार साँस हो जायगी। थोड़े ही अभ्यास के बाद आप दो सेकंड में पूरी साँस भीतर खींच सकेगे।

( २ ) श्वास को भीतर ही कुछ चला तक रोक रखो।

( ३ ) छाती को स्थिर दशा में रखकर धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो, श्वास बाहर निकलते समय ज्यों-ज्यों हवा बाहर निकले त्यों-त्यों पेट भीतर दबता जाय, जब हवा कुछ निकल जाय छाती और पेट को ढीला कर दो। थोड़े अभ्यास से कसरत का यह भाग आसान हो जायगा; और जब एक बार गति प्राप्त हो जायगी तब परचात् तक इच्छा करने से यह आप-से-आप हुआ करेगी।

यह बात देखने में आवेगी कि साँस के इस तरीके से श्वास छेने का सारा यंत्र काम में लाया जाता है, और फेफड़ों के कुछ भागों को। जिनमें दूर-से-दूर की भी हवा की कोठरी शामिल है, कसरत मिल जाती है। छाती का खोखला चारों ओर फैल जाता है। आप यह भी देखेंगे कि पूरी साँस वस्तुतः नीची, मध्य और ऊँची तीनों साँसों की मिखावट है जो ऊपर दिए हुए क्रम से एक दूसरे के परचात् शीघ्रता से इस तरह आती रहती है कि जिससे एक सम, लगातार, पूरी साँस बन जाती है।

यदि आप बड़े शरीर के सम्मुख इस श्वास का अभ्यास करेंगे तो आपको बड़ी सहजता मिल आवेगी, और यदि आप हाथों को पेट के ऊपर रखते रहेंगे तो आपको गति भी मालूम होगी। श्वास खींचने के क्षण में कभी-कभी कंधों को थोड़ा ऊपर बढ़ा देना अच्छा होता है, इस तरह हँसली की इट्टी बढ़ के जाने से दहने फेफड़े की

हम पाठकों को यह भी स्मरण दिजाया चाहते हैं कि पूरी साँस का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक श्वास में फेफड़े पूरी तरह से हवा से भरे जायें। मनुष्य श्वास द्वारा हवा की साधारण ही मात्रा, इस पूरी साँस की क्रिया द्वारा खींचकर, चाहे हवा की मात्रा थोड़ी हो या बहुत हो, फेफड़े के सब भागों में वितरित कर सकता है। परंतु दिन में कई बार तो अवश्य, जब-जब अवसर मिले, शरीर-मंत्र को अच्छी तरतीब और दशा में रखने के निमित्त खूब हवा भरम पूरी-पूरी साँस लेना ही होगा।

नीचे लिखी हुई सादी कसरत से आपको साकल विदित हो जायगा कि पूरी साँस क्या चीज़ है—

( १ ) थकड़कर सोधे खड़े हो जाओ या बैठो। नाक के द्वारा धीरे-धीरे हवा भीतर खींचो, पहले फेफड़ों के नीचेवाले भाग को हवा से भरों, जो पेट और छाती को घुंथकरनेवाली चदर को फास में डाले से होता है, जिससे पेट के अवयवों पर थोड़ा दबाव पड़ता है और पेट का अगला भाग ज़रा बाहर आगे की ओर निकल आता है, तब फेफड़ों के मध्य भाग में, नीचेवाली पसलियों, छाती की हड्डी और पानी को फैलाकर हवा भरों। फिर ऊपरी छाती को आगे निखावकर, और इस तरह से छाती को ऊपर उठाकर जिसके माथे ऊपरी १४ व १५ जोड़े पसलियों के भी हों, फेफड़ों के ऊपरी भाग में हवा भरों। अंतिम क्रिया में पेट का नीचेवाला भाग कुछ भीतर की ओर ढूँट जायगा, जिस गति से फेफड़ों को आधार मिल जायगा और फेफड़ों के ऊँचे-ऊँचेवाले भाग के भरने में भी सहायता मिल जायगी।

पहले पढ़ने में तो ऐसा मान्य होगा कि इस श्वास में घुंथ-घुंथ तीन गति है। परंतु यह बात सही नहीं है। श्वास का खींचना अगानार होता रहता है, पानी का पूरा मोमका, नीचे दबी हुई पूर्व-कठिन चरम से खींच कर छाती के मध्य से ऊपर तक

## पंद्रहवाँ अध्याय

### सही साँस लेने का प्रभाव

पूरी साँस लेने से जो लाभ होने हैं उनकी महिमा जिनकी ही नहीं जाय सोयी है। जिस शिष्य ने पहले के सत्रों को ध्यान से पढ़ लिया है उसको तो हम समझने हैं कि इन कामों को गिनाने की शायद ही आवश्यकता हो।

पूरी साँस के अध्याय में पुरुष या स्त्री सभी रोग और अन्य पंचरों के रोगों से निर्मल हो जाते हैं, यही कृपा होने की संभावना ही नहीं रहती और इसी प्रकार स्वामी की मूर्तियों के रोगों का भय जाता रहता है। सभी रोग दोष जीवट के कारण, जो स्वामी में कम दृष्टा गीबने से हो जाता है, होता है। जीवट की खोपना से शरीर-रक्ष, बीटापुष्टों के हमलों के लिये अपना द्वार खोल देता है। अपूर्ण साँस लेने से पंचरों का एक बड़ा भाग निष्पन्न हो जाता है, और ऐसे ही भाग बीटापुष्टों को खोला देने हैं, जो पहले निर्बल रोगों पर हमला करके बहुत बुरा बर्ताव की भूमिका लेते हैं। पंचरों के अपने स्वभाव से ही बीटापुष्टों से खल जाने हैं, और पंचरों के रोगों को अपने और स्वयं बनाने का एक-एक प्रयास करी है कि पंचरों से मनुष्य का रोग खिटा जाय।

सभी रोगवाले मनुष्य याद, सब संकीर्ण दाता के होने हैं। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि वे मनुष्य मनुष्य की रीति से भी नहीं लेने को जानते हैं वह यह है और हमारे हृदय दाता व तो विवशित हो भले भी न हो सके। जो मनुष्य पूरी रीति का आकाश रखता है उसका पूरी और दाता होता है, संकीर्ण

ऊपरी छोटी ललरी में भी हवा प्रवेश कर जाती है ; यही स्थान कभी कभी ट्यूबरक्यूलोसिस ( *Tuber culosis* )-नामक बीमारी फैलने की जगह है ।

अभ्यास के शुरू में पूरी साँस को प्राप्त करने में कुछ थोड़ी बहुत दिक्कत मालूम देगी, परंतु थोड़े ही अभ्यास से आप पकड़े हो जायेंगे और जब आप इसे एक बार प्राप्त कर लेंगे तब फिर साँस की उगरी रीतियों में न जायेंगे ।

---

रसग्रहण की क्रिया स्वाभाविक और ठीक नहीं रहती, तब शरीर के पोषण में दिन-पर-दिन कमी होती जाती है, भूख मंद पड़ जाती है, शारीरिक बल घट जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्य सूखने और हीन होने लगता है। ये सब बातें उचित साँस के अभाव से होती हैं।

अनुचित साँस से नाड़ियाँ अर्थात् ज्ञान और शक्ति के तंतु भी हानि उठाने हैं, क्योंकि मस्तिष्क, मेरुदंड, नाड़ीकेंद्र और स्वयं नाड़ियाँ भी, जब रुधिर द्वारा अभूरा पोषण पाती हैं तब शक्ति की धाराओं को उत्पन्न करने, संचय करने और प्रवाहित करने का अयोग्य भौजार बन जाती हैं। और यदि पुष्कल आक्सीजन फेफड़ों द्वारा ग्रहण न किया जायगा तो वे अवश्य अपुष्ट रह जावेंगी। इस विषय का एक और भी पटल है कि यदि उचित साँस न ली जायगी तो नाड़ियों की शक्ति धाराएँ, बलिकाएँ कहिए कि स्वयं वह शक्तियाँ जिनमें कि धाराएँ उत्पन्न होती हैं, क्षीण हो जाती हैं; परंतु यह एक पृथक् ही विषय है जिसका वर्णन इस किताब के अन्य अध्यायों में किया गया है; और यहाँ हमारा यह अभिप्राय है कि आपके ध्यान को हम बात की ओर आकर्षित करें कि अनुचित साँस के कारण नाड़ीजात्र की कारीगरी शक्ति संचालन करने की क्रिया में असमर्थ होती जानी है।

पूरी साँस के अभ्यास करने के अभ्यास में श्वास द्वारा हवा भीतर खींचने समय, छाती और पेट को पृथक् करनेवाली चर मिजुइती है और यही, आमाशय तथा अन्य अवयवों पर डलका दबाव डालती है; जो क्रिया फेफड़ों की गति के तात्त्व में मिजुइर इन अवयवों को शुद्धावस्थित से मर्दन किया करती है, और उनकी क्रियाओं को उत्तेजित करती है। और उनके स्वाभाविक कार्यों को उत्साहित करती है। प्रत्येक श्वास का खींचना इस भीतरी, कसरत में सहायता



घातीवाला मनुष्य भी यदि इस रीति में साँस लेने का अभ्यास भोगे तो उसकी घाती भी विकसित होकर स्वाभाविक विस्तार को प्राप्त जायेगी। ऐसे मनुष्य यदि अपने जीवन का आधार करते हैं तो उन्हें घाती के थोरेसले को विकसित करना चाहिए। जब कभी आरामे मालूम हो कि आप अनुचित रीति से सर्दी खा रहे हैं और जुकाम होने की संभावना है तो आप तुरन्त जोर से पूरी साँस का अभ्यास करके जुकाम को रोक सकते हैं। यदि बहुत सर्दी खा गए हों तो कुछ मिनट तक तुरन्त अच्छी तरह पूरी साँस लीजिए जिससे आपका सारा शरीर तमतमा जायगा। बहुत-से जुकाम पूरी साँस और अर्ध भोजन द्वारा अच्छे किए जा सकते हैं।

रुधिर की उत्तमता अधिकांश उसकी केरुहों में उचित रीति से आक्सीजन से मिश्रित होने पर अवलंबित है, यदि उसमें आक्सीजन थोड़ी मात्रा में मिलता है तो वह खराब हो जाता है, और अनेक प्रकार की गंदगियों से भर जाता है, और शरीर-यंत्र पोषण के अभाव से हानि उठाता है और रुधिर से गंदगियों के न दूर होने के कारण वस्तुनः विप्रेया हो जाता है। चूँकि सारा शरीर, प्रत्येक इंद्रिय और प्रत्येक अवयव पोषण के लिये रुधिर पर अवलंबित है, इसलिये अस्वच्छ रुधिर का प्रभाव सारे शरीर-यंत्र पर अवश्य बहुत बुरा असर डालेगा। उपाय बहुत सरल है—योगी की पूरी साँस का अभ्यास कीजिए।

अनुचित साँस लेने से आमाशय और अन्य पोषण के अवयव हानि उठाने हैं। आक्सीजन की कमी के कारण केवल वे अपुष्ट ही नहीं रहते, किन्तु, चूँकि पचने और शरीर में अपनाए जाने के पहले भोजन का रुधिर में से आक्सीजन लेना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये यह बात स्पष्ट है कि अधूरी साँस से पाचन और अपनाने की क्रियाएँ कितनी निर्बल हो जाती हैं। और जब अपनाना अर्थात्

प्रचीले तरीकों से स्वास्थ्य की तलाश में भंडार का भंडार धन खर्च कर देते हैं। स्वास्थ्य तो द्वार पर अवस्थित है, और वे ध्यान नहीं देने। सच है जिस पत्थर का धवई अस्वीकार करता है, वही पत्थर स्वास्थ्य-मंदिर के प्रधान कोने पर का पत्थर है।

---

पहुँचाता है और पोषण तथा मज्जत्याग के अवयवों में स्वाभाविक रुधिर संचार करके मदद करता है। ऊँची और मध्य सर्पों में इस भीतरी मर्दन के जाओं से अवयव वंचित ही रह जाते हैं।

आजकल पश्चिमी संसार शारीरिक शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दे रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। परंतु अपने इस प्रयत्न के साथ ही यह इस बात को न भूल जाय कि बाहरी ही मांसपेशियों की कसरत ही सब कुछ नहीं है। भीतरी अवयवों को भी व्यायाम की आवश्यकता है, और इस व्यायाम के लिये प्रकृति का उद्देश्य ही सर्पों का लेना है।

प्रकृति का प्रधान औज़ार, इस व्यायाम के लिये, छाती और पेट के बीचवाली भांस की चदर है। इसकी गति से पोषण और मज्जत्याग के प्रधान-प्रधान अवयव संचालित होते रहते हैं; और यह प्रत्येक स्वाम और प्रश्वाम में उन्हें दबाती और मर्दन करती है, उनमें रुधिर प्रवाहित करती और फिर निचोड़ निकालती है, जिससे अवयवों में शक्ति भरी रहती है। कोई अवयव या शरीर का भाग क्यों न हो, यदि उसका व्यायाम न होगा तो वह शनैः-शनैः बेकाम हो जायगा, और अपना काम न करेगा; और चदर की क्रिया द्वारा भीतरी व्यायाम को न कराने से बीमारी की दशा उत्पन्न हो जाती है, पूरी सौम कथित चदर को मुनासिब हरकत देती है और मध्य तथा ऊपरी छाती को काम देती है। यह अपनी क्रियाओं द्वारा सच-मुच "पूरी" है।

केवल पश्चिमी ही शरीरशास्त्र की दृष्टि से, विना पूर्वाय विज्ञान और दर्शनों के संबंध के, यह योगियों की पूरी सर्पों की क्रिया, प्रायः प्रसन्न, की ओर ध्यान के लिये, जो स्वास्थ्य को प्राप्त और संवित किया चाहता है, अत्यंत आवश्यक है। इसकी सरलता ही के कारण सहजों मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देने, और वेचोदे तथा



बहुतना है और योग्य तथा सम्मान के अवसरों में सम्मान  
दिए जायें। यह सब करना है। ईश्वर और मानव दोनों के  
भीषण और के साथ ही सम्मान के अवसर मिलें ही रह जाते हैं।

आजकल गरीबों में बहुत अर्थिक विषय की और बहुत  
दे रहा है, यह सभी समझा जा रहा है। यह सब हम सब  
में यह सब बात को न भूल जान कि कारी की मशीनों  
कारण हो सब कुछ नहीं है। भीषण अवसरों को भी सम्मान  
आवरण बना है, और इस व्यापार के विषे मशीन का बोल  
गोव का श्रेय है।

मशीन का प्रधान चीज़ा, इस व्यापार के विषे, धारों  
के बीच-बीच में भीषण है। इसकी मशीन में दोषय और  
के प्रधान-प्रधान अवसर में-मशीन होने रहते हैं। और  
इसमें और प्रयोग में उन्हें दुबाली और मशीन कारी  
हथि सम्मानित करणों और फिर निचोड़ बाजली है, जि  
में शक्ति भरी रहती है। कोई अवसर या शरीर का  
हो, यदि उसका व्यापार न होगा तो यह शरीर-ना  
जायगा, और धरना काम न करेगा। और यह  
भीषण व्यापार को न कहाने में भीषणों की दशा  
है, पूरी मशीन कथित यह को मुनासिब हरकत में  
तथा ऊपरी धारों को काम देती है। यह अपनी नि

में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और श्वासक्रियाओं के प्रत्येक अभ्यासों के अंत में भी इसे करते हैं, और हमने इस किताब में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह सफाई की श्वासक्रिया फेफड़ों को साफ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और श्वास लेने के अवयवों को चौकता बनाकर उनको स्वस्थ दशा में रखने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया सारे शरीर को बहुत ताज़ा कर देनेवाली पाई गई है। वक्ता लोगों और गवैयों के जब श्वास के अवयव थक जायें तब इसे वे बहुत सुखदायिनी पावेंगे।

( १ ) पूरी साँस भीतर खींचो।

( २ ) कुछ गेकंड तक हवा को भीतर ही रोक रखलो।

( ३ ) अपने ओठों को बैसा बना लो जैसा सीटी बजाने में बनाते हो ( परंतु गालों को मत फुलाओ ) तब ओठों के बीचवाले हिस्से से थोड़े जोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। क्षण-भर ठहर जाओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा जोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक-रुककर यही क्रिया करते जाओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। याद रखो कि ओठों के बीच के हिस्से से हवा निकालने में बहुत बड़ा जोर लगाना चाहिए।

जब मनुष्य थककर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देनेवाली पाई जायगी। कुछ बार परीक्षा करने से शिष्य उसके गुणों को भली भाँति समझ जायगा। इस कमरत का तब तक अभ्यास करने जाओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और सरलता-पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह इस किताब में दी हुई अनेकों कमरतों में प्रत्येक के अंत में दी जाती है, और इसलिये इसे बहुत धैर्यी तरह से सिद्ध कर लेना चाहिए।

# सोलहवाँ अध्याय

## श्वास के अभ्यास

हम नीचे श्वास को तीन रीतियाँ बनाने दें, जो योगियों को बहुत प्यारी हैं। पहली तो विष्णुवात योगियों की, साक्र करनेवाली श्वासक्रिया है जिसके द्वारा योगियों के फेफड़े इतने मुद और बलवान् हो जाते हैं। ये लोग इस साक्र करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा प्रत्येक श्वास के अभ्यास को समाप्त करते हैं, और हमने हम किताब में इसी तरीके को अनुसरण किया है। हम योगियों के उस अभ्यास को भी देते हैं, जिससे नादियों में शक्ति संचाहित होती है, और जो अभ्यास युगों से उनमें प्रचलित चला आता है, और जिसमें परिचामी स्वास्थ्याचार्य लोग कुछ भी अधिक न जोड़ सके, यद्यपि कुछ लोगों ने योगाचार्यों से लेकर इसे अपनी पद्धति में मिला लिया है। हम योगियों की आवाज़ साक्र करनेवाली कमरत को भी देते हैं, जो अच्छे पूर्वी योगियों की मधुर और प्रबल वाणी का कारण है। हम तो यह समझते हैं कि यदि हम किताब में इन तीन कसरतों के अलावा और कुछ न होता तो भी यह किताब हमारे शिष्यों के लिये बहुमूल्य होती। इन कमरतों को हमारी ओर से उपहार या प्रसाद समझकर ग्रहण कीजिए और इनका अभ्यास कीजिए।

योगी की साफ करनेवाली श्वासक्रिया

योगी लोग एक प्रकार की श्वासक्रिया का, बड़े मन से, उस समय अभ्यास करते हैं जब उन्हें फेफड़ों को साक्र करने या फेफड़ों

में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और श्वामक्रियाओं के प्रत्येक अभ्यासों के अंत में भी इसे करते हैं, और हमने इस विचार में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह सत्राई की श्वामक्रिया फेफड़ों को साफ़ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और श्वाम लेने के अवयवों को चौदसा बनाकर उनकी स्वरूप द्वारा में रहने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया सारे शरीर को बहुत ताज़ा कर देनेवाली पाई गई है। बच्चा जोगों और गवीयों के जब श्वाम के अवयव थक जायें तब इसे वे बहुत सुखदायिनी पावेंगे।

( १ ) पूरी साँस भीतर खींचो।

( २ ) कुछ संकट तक हवा को भीतर ही रोक रखो।

( ३ ) धरने ओठों को बैसा बना को जैसा सीटी बजाने में बनाने हो ( परंतु गालों को मत फुलाओ ) तब ओठों के बीचवाले द्विद्र से बड़े जोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। क्षण-भर ठहर जाओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा जोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक-रुककर यही क्रिया करते जाओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। याद रखो कि ओठों के बीच के द्विद्र से हवा निकालने में बहुत बड़ा जोर लगाना चाहिए।

जब मनुष्य थककर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देनेवाली पाई जायगी। एक बार परीक्षा करने से शिष्य उसके गुणों को भली भाँति समझ जायगा। इस कसरत का तब तक अभ्यास करते जाओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और सरलता-पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह इस विचार में दी हुई धनेशों कमरतों में प्रत्येक के अंत में की जाती है, और इसलिये इसे बहुत अच्छी तरह से निश्चय कर लेना चाहिए।



### योगियों की नाड़ी-बलविधायिनी श्वासक्रिया

यह योगियों की भली भाँति जानी हुई कसरत है; वे इसे मगुर के लिये सबसे बढ़ी नाड़ियों को उत्तेजित करनेवाली और शक्ति देनेवाली क्रिया ( महौषधि ) समझते हैं । इसका अभिप्राय नाड़ीजाल को उत्तेजित करना और नाड़ीबल शक्ति, तथा जीवट को विकसित और पुष्ट करना है । इस अभ्यास से नाड़ीकेंद्रों में उत्तेजक दबाव का प्रभाव पड़ता है, जिससे सारा नाड़ीजाल उत्तेजित और शक्तिमान हो जाता है, और जिससे सारे शरीर में नाड़ीबल का अधिक प्रभाव फैल जाता है ।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) पूरी साँस खींचो और उसे रोक रखो ।

( ३ ) अपनी मुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, वे कुछ ढीली रहें, बहुत तनी न रहें, उनमें केवल इतना ही बल दिया जाय कि वे फैली रहें ।

( ४ ) धीरे-धीरे हाथों को कंधों की ओर खींचो, शनैः-शनैः मांसपेशियों को संकुचित करते जाओ और उनमें बल देते जाओ, जिससे कि कंधों तक पहुँचते-पहुँचते मुठियाँ इतनी कड़ी बँध जायँ कि उनमें कँपकँपी की गति आ जाय ।

( ५ ) तब मांसपेशियों को कड़ी ही रखते हुए, मुठियों को धीरे-धीरे आगे फैलाओ, और बड़ी तेज़ी से पीछे लाओ ( कड़ी ही रखते हुए ) ऐसा कई बार करो ।

( ६ ) मुँह की राह जोर से हवा छोड़ दो ।

( ७ ) फेफड़ों को साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया कर लो ।

इस कसरत की पूरी मुठियों की पीछे खींचनेवाली तेज़ी पर, मांसपेशियों में खगाए हुए जोर पर और फेफड़ों की हवा से भरे रहने पर प्रत्यक्ष है । इस कसरत की परीचा ही करने से हसंकी

महिमा का अनुभव होगा। यह विद्या देने में अद्वितीय है, जैसा कि पश्चिमी मित्र कहा करते हैं।

### योगियों की वाणीविधायिनी श्वासक्रिया

योगी लोग वाणी शुद्ध करने के लिये भी एक रीति की श्वास-क्रिया करते हैं। वे अपनी आरघ्यजनक आवाज़ के लिये विख्यात होते हैं, जो रद, मुचिकन, साऊ और तुरही के शब्द की भाँति दूर तक पहुँचनेवाली होती है। वे इसी विशेष रूप की श्वासक्रिया का अभ्यास किए हुए हैं जिससे उनकी आवाज़ मधुर, मंद और खोचदार हो गई और उसमें वह ध्वन्यातीत विशेष प्रवाहिनी होने का गुण आ गया है और इतनी शक्ति भर गई है। नीचे दी हुई कसरत एक समय में उन सब गुणों को देखेगी यदि शिष्य जी लगाकर इस क्रिया का अभ्यास करेंगे। यह बात समझ रखना चाहिए कि इस रीति की श्वासक्रिया का कभी-ही-कभी अभ्यास करना चाहिए और इसे खास छेने का एक तरीका ही न बना छेना चाहिए।

( १ ) पूरा साँस बहुत धीरे-धीरे पर लगानारनाक द्वारा लींचो, और खास लींचने में जितना समय छेते बने, छो।

( २ ) कुछ सेकंड तक उसे रोक रखलो।

( ३ ) बड़े जोर से एक ही झोंके में कुछ हवा लूब मुँह फँजाकर छोड़ दो।

( ४ ) साऊ करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा फेफड़ों को आराम दे दो।

बोझने और गाने में कैसे शब्द उत्पन्न किया जाता है उसके विषय में योगियों के गहन विचारों में प्रवेश न करके हम यह कहना चाहते हैं कि तबबरे से उन्हें बिदित हुआ है कि आवाज़ का स्वर, राग और रसि केवल गले के सादृिक अवयवों ही पर अवलंबित नहीं है, किन्तु, चेहरे की मांसपेशियों आदि भी इस विषय में अधिक

प्रभाव रगर्ता है। बहुत-से चौड़ी छातीवाले केवल घीमी आवाज़ पैदा करते हैं और अन्य छोटी छातीवाले आश्चर्यजनक बल और गुण की आशा पैदा करते हैं। यह एक मनोरंजक उदाहरण परीक्षा करने के योग्य है। एक आदमी के सामने रखें दो, और मुँह बंदोकर सीटी बजाओ और मुँह की मूरत और चेहरे की आकृति को स्मरण रखो, तब थोड़ा प्रयत्न गाओ, जैसा तुम स्वभावतः सोना या गाया करते हो और तब उनके अंतर पर ध्यान दो। तब फिर कुछ क्षण तक सीटी बजाओ और तब बिना ओठों और चेहरे की स्थिति बदले हुए कुछ गाओ और देखो कि कैसा लचीला, मधुर, साफ और सुंदर स्वर उत्पन्न होता है।

नीचे लिखी हुई योगियों की सात कमरतें फेफड़ों, मांसपेशियों, ग्रंथियों और हवा की कोठरियों आदि को विकसित करनेवाली हैं। ये बहुत ही सरल पर आश्चर्यजनक रीति से लाभदायिनी हैं। इसकी सरलता के कारण तुम इनसे विमुख मत हो, क्योंकि ये योगियों की सावधानी की परीक्षाओं और अभ्यासों का प्रतिफल हैं और अनेक पेचीदा कसरतों का सारांश हैं; अनेक कसरतों के अनावश्यक भागों को छोड़कर केवल आवश्यक भागों से ही ये कसरतें बनी हैं।

### ( १ ) श्वास का रोकना

यह बहुत ही मुख्य कसरत है जो श्वास लेनेवाले अवयवों और फेफड़ों को विकसित और पुष्ट करती है और इसके अधिक अभ्यास से छाती भी फैलती है। योगियों को यह बात विदित हुई है कि कभी-कभी फेफड़ों को हवा से खूब भरकर श्वास को रोक रखने से बड़ा ही लाभ होता है, केवल श्वास ही लेने के अवयवों को नहीं, किंतु, पोषण के अवयवों, नाड़ीजाल और रूधिर को भी। उन्हें यह विदित हो गया है कि श्वास को समय-समय पर रोक रखने से उम

हवा की सहाई हो जाती है जो पड़ती सीमों की हवा फेकड़ों में रोप रह गई रहती है; और रुधिर में अस्थी तरह से आक्सीजन मिश्रित हो जाता है। वे यह भी जानते हैं कि हम प्रकार से रोकी हुई हवा कुल रही पदार्थों को घटोर लेती है और जब श्वास बाहर निकासी जाती है तो आने साथ गरीर-यंत्र के इन निम्नमे द्रव्यों को बाहर लिए जाता है और फेकड़ों को उसी प्रकार साफ़ करता है जैसे अंत-दियों को सुलाय साफ़ करता है। योगी लोग हम कपलत का उप-देश आमागय, बहुत और रुधिर के अनेक विकारों में करते हैं, और यह भी जाना गया है कि हममें सीम का बदलन, जो फेकड़ों में कम हवा जाने में उत्पन्न होता है, दूर हो जाता है। हम शिष्यों से आग्रह करते हैं कि वे हम अभ्यास पर अस्थी तरह से ध्यान दें क्योंकि हममें बड़े-बड़े गुण हैं। नीचे लिखी हुई शिष्याओं से हम क्रिया का साफ़ अनुभव होगा—

( १ ) सीधे बड़े हो।

( २ ) पूरी सीम भीतर खींचो।

( ३ ) तब तक श्वास को भीतर ही रोके रहो जब तक उसे आराम से रोक सको।

( ४ ) मुँह से श्वास को बाहर निकास दो।

( ५ ) साफ़ करनेवाली सीम की क्रिया कर डालो।

पहले तुम बहुत थोड़े असें तक श्वास को भीतर रोक सकोगे, परंतु थोड़े अभ्यास में तुम्हें बहुत उन्नति जान पड़ेगी। यदि अपनी उन्नति जानना चाहते हो तो धीरे से हो।

( २ ) फेकड़ों की कोठरियों को उत्तेजित करना

यह कसरत फेकड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करने के अभिप्राय से की जाती है; परंतु प्रारंभिक शिष्यों को हममें अधिकता न करने चाहिए और बड़े होर से तो हमें कभी भी न करना चाहिए।

किमी-किमी को पहले हृदय क्रिया से चकर भाने लगेगा, ऐसी दशा में उन्हें कसरत छोड़कर थोड़ा उसी जगह टहल लेना चाहिए।

( १ ) गीधे खड़े हो।

( २ ) धीरे-धीरे शनैः-शनैः श्वास भीतर खींचो।

( ३ ) श्वास भीतर खींचते समय हाथों की अँगुलियों के धों से छाती को जरा-जरा ठोक्ते जाओ और ठोकने के स्थान को बदलते रहो।

( ४ ) जब फेफड़े भर जायें हवा को भीतर रोक रखो और छाती पर हथेलियों से धीरे-धीरे थापी दो।

( ५ ) साक करनेवाली क्रिया कर ढालो।

यह कसरत सारे शरीर को सुख देनेवाली और उत्तेजित करनेवाली है और यह योगियों का विषयात अभ्यास है। अधूरी साँस लेने से फेफड़ों की बहुत-सी हवा की कोठरियाँ क्रियाहीन हो जाती हैं और हृत्पी से मृतप्राय हो जाती हैं। जिसने बरसों से अधूरी साँस लिया है उसे इन सब विगड़ी हुई हवा की कोठरियों से पूरी साँस द्वारा एकबारगी पूरा काम लेना और उन्हें कार्य में उत्तेजित करना बहुत सरल न होगा, परंतु इस कसरत से धीरे-धीरे यह अभ्यास सिद्ध हो जायगा। यह कसरत अभ्यसन और अभ्यास के योग्य है।

( ३ ) पसलियों की लव्हाला बनाना

हम समझा आए हैं कि पसलियों मुलायम हड्डी ( फुरी ) द्वारा जोड़ी गई हैं, जिनमें बहुत फैलाव हो सकता है। उचित साँस लेने में पसलियाँ प्रधान काम करती हैं, और उन्हें कभी-कभी विशेष अभ्यास दे देने से और उनके लव्हालेपन को ठोक रखने से अभ्यास ही होगा। अरवाभाविक रीति से और बैठने और खड़े होने के कारण, जैसा कि रियाज हो गया है, पसलियाँ सख्त और बेजजीबी हो जाती हैं। हम कसरत से यह दोष दूर हो जायगा।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) हाथों को दोनों घातों पर एक-एक करके इतने ऊँचे कौनों के पास रखो जितने ऊँचे आराम से रख सको, अँगूठे पीछे की ओर हों, हथेलियाँ छाती की घातों पर हों और अँगुलियाँ आगे की ओर छाती पर हों ।

( ३ ) पूरी साँस भीतर खींचो ।

( ४ ) हवा को भीतर ही थोड़ी देर रोक रखो ।

( ५ ) तब धीरे-धीरे छाती को दबाना शुरू करो और साथ ही रवास को भी छोड़ने जाओ ।

( ६ ) सज्जाई की क्रिया कर ढाखो ।

इस अभ्यास को थोड़ा ही करना, इसमें अधिकता न करना ।

( ४ ) छाती का फैलाना

अपने नाम पर मुँह रहने से छाती संकीर्ण हो जाया करती है, इस कमरत से स्वाभाविक दरा प्राप्त होती है और छाती फैलती है ।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) पूरी साँस भीतर खींचो ।

( ३ ) हवा को भीतर ही रोक रखो ।

( ४ ) दोनों हाथों को आगे फैलाओ और दोनों बंद मुट्ठियों को कंधों की उँचाई के समान उँचाई पर रखो ।

( ५ ) लूके झोंका देकर भुजाओं को सीधा पीछे बराबरी की ओर कंधों की सीध में छाओ ।

( ६ ) तब फिर स्थिति ४ में छाओ, फिर स्थिति ५ में खे जाओ । ऐसा कई बार करो ।

( ७ ) लूके मुँह से जोर से साँस छोड़ दो ।

( ८ ) सज्जाई की क्रिया कर ढाखो ।

इसका कम-ही-कम अभ्यास करना, अतिराह न करना ।

## ( ५ ) टहलनेवाली कमरत

( १ ) गिर ऊँचा, टुढ़ी तनिक भीतर निची हुई, कंधे पीछे रहे हों ऐसी स्थिति में बराबर कदमों से टहलो ।

( २ ) पूरी साँस भीतर खींचो, गिनते जाओ (मन-ही-मन) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, एक गिनती एक कदम पर तिसरे ८ की गिनती तक श्वास का रीचना पूरा हो जाय ।

( ३ ) नाक द्वारा धीरे हवा को छोड़ो, पहले की भाँति गिनते जाओ—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८—एक कदम पर एक गिनती ।

( ४ ) श्वासों के बीच में बिना श्वास के रहो, चलना जारी रखो और गिनते जाओ १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ एक कदम पर एक गिनती ।

( ५ ) तब तक करते जाओ जब तक थकावट न मालूम होने लगे । फिर थोड़े अर्धे तक आराम कर लो, और फिर खुरी हो लो शुरू करो । दिन में कई बार ऐसा करो ।

कोई-कोई योगी १, २, ३, ४, की गिनती तक श्वास को भीतर ही रोके रहते हैं और फिर ८ तक की गिनती में छोड़ते हैं । जो तरीका अधिक पसंद पड़े उसी का अभ्यास करो ।

## ( ६ ) प्रातःकाल की कसरत

( १ ) जंगी तरीके से सीधे खड़े हो, सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे दबे, घुटने ऋद्धे और हाथ बगलों में हों ।

( २ ) पैर की अँगुलियों पर धीरे-धीरे अपने शरीर को उठाओ, साथ-ही-साथ पूरी साँस भी भीतर खींचते जाओ ।

( ३ ) श्वास को भीतर ही कुछ सेकंड तक रोक रखो, उसी स्थिति में बने रहो ।

( ४ ) धीरे-धीरे पहली स्थिति में आओ, साथ ही धीरे-धीरे नाक द्वारा श्वास भी छोड़ते जाओ ।





# सत्रहवाँ अध्याय

## नाक और मुँह से श्वास लेना

योगियों के श्वासविज्ञान में पहली शिक्षाओं में सबसे प्रथम शिक्षा यह है कि नाक द्वारा सर्वदा साँस लेना चाहिए, और मुँह के द्वारा साँस लेने की आदत छोड़ देना चाहिए।

श्वास लेने के अवयव मनुष्य के शरीर में ऐसे बने हुए हैं कि नाक और मुँह दोनों द्वारों से साँस ले सकता है, परंतु किस द्वार से वह साँस ले यह विषय बहुत ही प्रधान है, क्योंकि एक द्वार से साँस लेने से तो स्वास्थ्य और बल का लाभ होता है और दूसरे द्वार से लेने से रोग और निर्बलता मिलती है।

मनुष्य के बिले साँस लेने का उचित तरीका नाकों ही द्वारा साँस लेने का है, हम बात की शिक्षा देने की आवश्यकता न पड़ती, परंतु खेद है कि इस सीधी सादी बात में भी सम्य मनुष्यों की मूर्खता धारचर्यजनक है। हम सब प्रकार की जीविका के मनुष्यों में ऐसे मनुष्यों को पाते हैं जिनकी आदत मुँह ही से साँस लेने की है, और ये मनुष्य अपने बच्चों को भी मुँह से साँस लेने को पूरा इजाजत-सा दे देते हैं जिससे उन्हें भी मुँह ही से साँस लेने की आदत पड़ जाती है।

सम्य मनुष्यों की बहुत-सी बीमारियाँ निश्चय इसी मुँह से साँस लेने की प्रचलित रीति के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जिन बच्चों को मुँह से साँस लेने की सुविधा मिल जाती है, वे जीव और निर्बल संगठन के साथ पूरि पाते हैं, और बीवनाशरूप में स्वास्थ्य में गिर जाते हैं और जीवन रोगी हो जाते हैं। वह रीति मनुष्य की सदा बेहतर बताई करती है, क्योंकि वह स्वाभाविक प्रकृति

का अनुसरण करती है, और वह अपने बच्चों को ऐसी रीति से रखती है कि वे अपने छोटे ओठों को बंद किए रहते हैं और नाक ही से साँस लेने हैं। जब बच्चा सो जाता है तो वह उसके सिर को आगे की ओर थोड़ा मुका देती है, जिस स्थिति से घन्चे का मुँह बंद हो जाता है। और उसे नयनों ही से साँस लेना आवश्यक हो जाता है। यदि हम लोगों की सभ्य माताएँ भी इसी तरीके की प्रवृत्ति कर लेतीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार हो जाता।

मुँह से साँस लेने की पृथिवी आदत से बहुत-सी सांघर्षिक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, इसी कारण से जुकाम और फेफड़े-संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न होती पाई गई हैं। बहुत-से मनुष्य जो दिवाबंद के लिये दिन को मुँह बंद किए रहते हैं, रात को मुँह ही से साँस लेते हैं और इस तरह बहुधा बीमारी बुझा लेते हैं। भावधानी से की गई वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा जाना गया है कि वे जंगी बिपाही और जहाज़ी जो अपना मुँह खोलकर सोते हैं, सांघर्षिक बीमारियों के आक्रमण में उन लोगों की अपेक्षा अधिक पड़ा करते हैं, जो नयनों द्वारा उचित साँस लेते हैं। एक उदाहरण में यह वर्णन किया गया है कि एक बार एक जंगी जहाज़ में जो विदेश में था, शीतला की बीमारी घवा रूप में फैली, और इस बीमारों से जितनी मौतें हुईं सब उन्हीं मनुष्यों की हुईं जो मुँह से साँस लेनेवाले थे, नाक से साँस लेनेवाला एक मनुष्य भी न मरा।

श्वास लेने के अवयवों की रक्षा करने के साधन छुछा और भूखनिवारक आदि नयनों ही में बने हैं। जब साँस मुँह से ली जाती है, तो मुँह से लेकर फेफड़ों तक हवा को छाननेवाली या हवा की भूख और अन्य पदार्थों को रोक रखनेवाली कोई चीज़ नहीं है। मुँह से फेफड़ों तक भूख घटती और गंदी चीज़ों के लिये साफ़ रास्ता है और श्वास लेने का सारा औज़ार अव्ययित है।

इसके अतिरिक्त ऐसी अनुचित सोम से बहुत सदाँ हवा भी फेंकी  
तक पहुँच जाती है। और उन्हें हानि पहुँचाती है। स्वाम के  
अवयवों का सूख जाना प्रायः मुँह से ठंडी हवा को साँस लेने  
से होता है। जो मनुष्य रात को मुँह से साँस लेता है वह सते  
उठते ही मुँह में जलन और गले में सूखेपन का अनुभव करता है।  
यह प्रकृति के नियमों में से एक प्रधान नियम का उल्लंघन कर  
रहा है और बीमारी का बीज बो रहा है।

एक बार फिर स्मरण कर लीजिए कि स्वाम के अवयवों को  
रक्षित रखने के लिये मुँह में कोई साधन नहीं है; सदाँ हवा, धूल  
धकड़, तरह-तरह की खराब चीजें और कीटाणु सरलता से उम  
द्वार में होकर फेफड़ों तक पहुँच सकते हैं। इसके विपरीत नथों  
और नाक के भीतर की नलियों में प्रकृति ने इस विषय के संबंध  
में बड़ी सावधानी से इतज़ाम कर दिया है। नथने बहुत संकीर्ण गुहा  
करते हैं और धूम-धुमास के साथ नलियों द्वारा बने हैं, और द्वार पर  
ऐसे खड़े-खड़े अनगिनत बाल रखते हैं जो हवा को कूड़े करकट से सा  
करने के लिये छद्म और चलनी का काम देते हैं, जब स्वास बा-  
आती है तब इस कूड़े करकट को लेती आती है। नथने केवल इसी  
मुख्य बात को नहीं करते, किंतु वे स्वास में ली हुई हवा को गरम  
कर देने का भी एक प्रधान काम करते हैं। लंबी, तंग और टेढ़ी-मेढ़ी  
नलियाँ गरम लसजसी मिट्टी से मदी होती हैं, और जब हवा इनमें  
आती है तो गरम हो जाती है, जिससे वह गले और फेफड़ों के ना-  
जुक अवयवों को हानि पहुँचावे।

मनुष्य को थोड़कर और कोई जानवर मुँह खोलकर नहीं सोता  
और न मुँह से साँस लेता, और असल में यह विरवास किया जाता  
है कि केवल सम्य ही मनुष्यों ने प्रकृति की क्रियाओं का अवलोकन  
किया है, और वहही अज्ञान तो सर्वदा सही साँस लेती है। यह

संभव है कि मनुष्यों ने यह अस्वाभाविक आदत अस्वाभाविक रहन, निर्बलकारी विज्ञान और अधिक उष्णता के कारण प्राप्त की हो।

मयनों के साक्र करने, छानने और चालनेवाले यंत्र के कारण हवा गले और फेफड़ों के नाजुक अवयवों में जाने के योग्य हो जाती है; क्योंकि जब तक यह प्रकृति के साक्र करनेवाले यंत्र में साक्र नहीं की जाती तब तक वह इन अवयवों में पहुँचने के योग्य नहीं होती। जो बूदा बरकट मयनों की चञ्चलियों और आर्द्र क्लिष्टियों द्वारा रोक लिए जाने हैं, वे बाहर आनेवाली गर्म के माथ बाहर निकाल दिए जाने हैं, और यदि ये बहुत शीघ्रता से एकत्र हो जायें या चञ्चलियों से बचकर भीतर चले जायें तो प्रकृति धीरे पैदा करके, जो घड़ा देकर उन्हें बाहर निकाल फेंकती है, हमारी रक्षा करती है।

हवा जब फेफड़ों में प्रवेश करती है तो बाहरी हवा से उतना भिन्न हो जाती है, जितना भभके से साक्र किया हुआ पानी बहसपे के पानी से भिन्न होता है। मयनों की पेशीय साक्र करनेवाली कारीगरी, जो हवा की गंदगियों और मैल को बाहर ही पकड़कर रोक रखती है, उतनी ही प्रधान है, जितनी मुँह की बिपा छोटे कणों के बाँज और मल्लियों के बोटों आदि को पकड़कर आमाशय में जाने से रोक रखने में प्रधान है।

मुँह से स्वास लेने में और एक यह दोष है कि मयनों की क्लिष्टों कम व्यवहार में आने के कारण साक्र और निष्कृत नहीं रह सकती और वे मैली होकर बंद पड़ जाती हैं और बीमारी में गुलिका हो जाती हैं। जैसे आवागमन न होने से सबको घर घाम और आरम्लाह बग आते हैं, वैसे ही व्यवहार में न आए जाने से मयने भी बूदे बरकट से भर जाते हैं।

जिन मनुष्यों को नाक ही से साँस लेने की आदत है वह बंध और कबली दूर भागों से दुःखी नहीं हो सकता, परंतु इनके काम के

लिये, जो थोड़ा बहुत मुँह से साँस लेने के आदी हैं, और जो स्वाभाविक और सही तरीके से साँस लिया चाहते हैं नयनों के साँस करने का रास्ता बतला देना अच्छा होगा कि नयने साँस और कूड़ा करकट से रहित हो जायें।

योगियों की प्रचलित रीति यह है कि नाक से थोड़ा पानी उपर को चढ़ा लें और उसे गले में उतार दें, जहाँ से वह मुँह की राह बाहर निकाल दिया जा सकता है। कोई हिंदू योगी पानीभरे बर्तन में अपना चेहरा डुबो देते हैं और नाक से पानी खींचते हैं, परंतु इस तरीके में अधिक अभ्यास की आवश्यकता है, और पड़खी रीति इससे अधिक आसान और इतनी ही लाभदायक है।

दूसरी अच्छी विधि यह है कि खिड़की खोल लें और उसके पास बैठकर घूँस स्वच्छंदता से साँस लें, एक नयने को उँगली या धँगुठे से बंद करके दूसरे से हवा भीतर खींचें, फिर उसे बंद करके पहले से हवा खींचें। इसी प्रकार नयनों को बदलते हुए बड़ी देर तक साँस लेते रहें। यह रीति भी नयनों को बाधाओं से रहित बना देगी।

हमने शिष्यों से नाक द्वारा साँस लेने का, यदि उनकी आदत ऐसी न हो तो, आग्रह करते हैं और उन्हें समझाए देते हैं कि इस बात को बहुत छोटी बात समझकर इसमें लापरवाही न करें।

# अठारहवाँ अध्याय

## शरीर के अणुजीव

इदयोग यह सिद्ध करता है कि जैसे भौतिक जड़ पदार्थ परमाणुओं से बने हैं वैसे ही यह शरीर देहाणुओं ( Cells ) से बना है, और प्रत्येक देहाणु अपने में एक अणुजीव धारण किए हैं, जो देहाणु की क्रियाओं पर शासन करता है। ये जीव, अल्पमात्रा में विकास पाए हुए चैतन्य मानस के अल्प अंश को धारण करते हैं जिसकी चेतना से प्रत्येक देहाणु अपना कार्य उचित रीति से करता है। ये चेतनाश मनुष्य के केंद्रवर्ती मन के आधीन होते हैं, इसमें संदेह नहीं। और जब कभी चेतनापूर्वक या अचेतनावस्था में सदा से आशा होती है तो उसका पालन करते हैं। ये अणुजीव चेतनाएँ अपने-अपने कार्यों में पूरी योग्यता दिखाती हैं। इन देहाणुओं की चुननेवाली क्रिया, जिसके द्वारा वे रुधिर से आवश्यक पोषण को तो बाँच लेते हैं, और अनावश्यक द्रव्यों को छोड़ देते हैं, इस चेतना का एक अच्छा उदाहरण है, पाचन और रसाकरण आदि की क्रिया देहाणुओं की चैतन्यता दिखाती है, ये देहाणु चाहे पृथक् पृथक् या अनेक समुदायों में गोल बंधे हों। जब अर्थात् जलम का पूरा करना, देहाणुओं का शरीर के उस ओर दौड़ना जहाँ उनकी आवश्यकता है, और ऐसे स्थलों उदाहरण जो परीक्षा करने-वालों को विरहित हैं, लोगियों को यह सूचित करने हैं कि प्रत्येक देहाणु में जीव है। योही की दृष्टि में प्रत्येक देहाणु एक जीवित कण है जो अपना स्वयं जीवन निर्वाह कर रही है। ये देहाणु - - - - - से समुदाय बाँध जिया करने हैं, और प्रत्येक

गमुदाय अपनी गामुदायिक शैतन्यता दिखताता है, जब तक कि वह गमुदाय बंधा रहता है। ये गमुदाय फिर एकत्रित होकर वे पेधीदा-पेधीदा संगठन बनाने हैं, जिन संगठनों में कुछ वच कोटि की चेतनाएँ झुझा करती हैं।

जब पार्थिव शरीर की शृंगु होती है तब ये देहाणु पृथक् और विघ्न-भिन्न हो जाने हैं और तब मरना शुरू हो जाता है। वर यज्ञ, जिनमे ये देहाणु एकत्र रहते गए थे, अब चला गया; और अब ये देहाणु स्वतंत्र हो गए कि अपनी-अपनी राह लें अथवा नए समूह स्थापित करें। कुछ तो आय-पाम के पौधों के शरीर में चले जाते हैं, और अंत में घूम-फिरकर किमी जानवर के शरीर में भा जाते हैं; दूसरे पौधों ही की देह में बने रहते हैं, कुछ जमीन में पड़े रहते हैं; परंतु इन देहाणुओं के जीवन में अनंत और अनवरत परिवर्तन हुआ करते हैं। एक नामी लेखक ने कहा है कि “मौत केवल जीवन का रूपांतर है, और एक पार्थिव रूप का नाश होना दूसरे के बनने की प्रस्तावना है।” हम इस देहाणु जीवन की प्रकृति और क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन अपने शिष्यों को सुना दोगे कि शरीर के इन जीवाणुओं का जीवन कैसा होता है।

शरीर के देहाणुओं में तीन तत्त्व होते हैं—( १ ) द्रव्य, जिसे वे मनुष्य के खाए हुए अन्न से प्राप्त करते हैं; ( २ ) प्राण अर्थात् जीवत शक्ति, जिससे वे कार्य करने में समर्थ होते हैं, और जिसे वे हमारे साए, हुए अन्न, पिए हुए पानी और साँस की हुई हवा से लाभ उठाते हैं; ( ३ ) चेतना या चित्त जो सर्वव्यापक मन से प्रदण दिया जाता है। हम पहले इन अणुओं के जीवन के भौतिक अंग का वर्णन करेंगे।

—जैसा हम ऊपर कह आए हैं, प्रत्येक जीवित शरीर नन्हे-नन्हे देहाणुओं का समूह है। यह शरीर के प्रत्येक भाग के संबंध में—

सप्रत हड्डियों से लेकर मुलायम-से-मुलायम रेशों तक—दाँत की कड़ी मदन से लेकर आर्द्र भिखी के नाजुक भागों तक—सही है। इन देहाणुओं की भिन्न-भिन्न शकलें होती हैं, जो उनके विशेष कार्यों तथा क्रियाओं के अनुकूल होती हैं। प्रत्येक देहाणु, सब प्रकार से पृथक्-पृथक् व्यक्ति होते हैं, यद्यपि ये देहाणु समूह की चेतना के आधीन होते हैं; बड़ा समूह छोटे समूह पर शासन करता है; और अंत में मनुष्य का केंद्रस्थ मन सबके ऊपर निरीक्षण रखता है। संगठन का कार्य, या कम-से-कम उसका अधिकांश भाग, प्रवृत्ति-मानस के अधिकार में होता है।

ये देहाणु सर्वदा कार्य में लगे रहते हैं, शरीर के सब कर्तव्यों का पालन किया करते हैं, प्रत्येक के जिम्मे अलग-अलग काम होता है जिसे वे अपनी योग्यतानुसार पूरा-पूरा करते रहते हैं। कुछ देहाणु क्राजत रहते हैं और वे आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं और अकस्मात् जो कार्य आ जाय उसे करने के लिये तैयार रहते हैं। अन्य देहाणु क्रियाशील कामकाजी होते हैं और नाना प्रकार के साधों और द्रव्यों को बनाया करने हैं, जिनकी आवश्यकता देह की भिन्न-भिन्न क्रियाओं में पड़ा करती है। कुछ देहाणु एकस्थानीय होते हैं—दूसरे आज्ञा की प्रतीक्षा में स्थायी रहते हैं पर आज्ञा पाते ही गमन कर देते हैं। कुछ देहाणु सर्वदा यात्रा किया करते हैं; इनमें कुछ यात्रा ही करते काम करते हैं और कुछ अणु अंतर दे देकर यात्रा करते हैं। इन यात्री अणुओं में कुछ सौ भारवाहक होते हैं, कुछ यात्रा किया करते हैं, और मार्ग में जहाँ आवश्यकता देखते हैं वहाँ कार्य करके फिर आगे बढ़ते हैं, कुछ सत्रार्थ के काम में लगे रहते हैं। कुछ के जिम्मे पुलिस का काम रहता है। देहाणुओं का जीवन, जब उनके कुछ समूहों पर दृष्टि डाली जाय तो एक उपनिवेश की गवर्नमेंट के समान दिखलाई पड़ता है, जो गवर्नमेंट की सहकारिता और सह-



योगिता के सिद्धांतों पर चलाई गई हो। प्रत्येक देहाणु अपने कार्य को समूह-भर के लाभ के लिये करता है, प्रत्येक अणु सबकी मजदूरी के लिये काम करता है, और सब मिलकर परस्पर मजदूरी का काम करते हैं। नाडीमाल के देहाणु शरीर के प्रत्येक भाग की उन्नति को पहुँचाते हैं, और मस्तिष्क की आज्ञा शरीर के प्रत्येक आवश्यक भागों में पहुँचाते हैं, ये मारवर्तों के जीवित तार हैं। नादियाँ मन्दे-मन्दे देहाणुओं से बनी हुई हैं, इन देहाणुओं में सूँघ के सार कुष्ठ भाग निकला रहता है, एक की सूँघ दूसरे को और दूसरे की तीसरे को स्पर्श किए रहती हैं, इस प्रकार शृंखला बन जाती है और इसी शृंखला द्वारा प्राण गति करता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में लाखों-लाखों, करोड़ों-करोड़ों, देहाणु भारवाहक, चलने कामकाजी, पुलिसमैन, सिपाही आदि का काम करते रहते हैं; यह अनुमान किया गया है कि एक घन इंच रुधिर में कम-से-कम ७५००००००००० केवल जाल-जाल देहाणु हैं। औरों के लेखे को छोड़िए ! यह बड़ी विस्तृत जाति है।

रुधिर के जाल देहाणु, जो भारवाहक होते हैं, रुधिरापवाहक धमनियों और रुधिरापवाहक शिराओं में बहा करते हैं, फेफड़ों से आरसीजन लेकर शरीर के अंतों और प्रयोगों में पहुँचाया करते हैं, जिससे उन अंगों-प्रयोगों को जीवन और शक्ति मिलता रहता है। जब रुधिरापवाहक शिराओं द्वारा ये वापस आते हैं तो देह-अंग के निचले द्रव्यों को लेते आते हैं, जिन्हें फेफड़ा बाहर फेंक देता है। तिजारती जहाज़ की भाँति ये आते और आते दोनों पक्ष में बोलत रहते हैं। अन्य देहाणु धमनियों और शिराओं की दीवारों और रेशों में होकर चलते हैं और मरम्मत आदि का कार्य, जिसके लिये वे भेजे गए हैं,

कई प्रकार के देहाणु रक्षिर में होते हैं। इनमें पुलिममैन और सिपाही बड़े ही मनोरंजक होते हैं। इन देहाणुओं का कार्य है कि ये देह-यंत्र को उन कीटाणुओं से सुरक्षित रखें जिनसे शरीर में बीमारी या पीड़ा पहुँचने की आशंका हो। ज्यों ही कोई पुलिस देहाणु ऐसे कीटाणु को पाता है त्यों ही वह इससे लिपट जाता है और इसे निगल जाने की चेष्टा करता है, यदि यह बहुत बड़ा न हो। यदि यह बहुत बड़ा हुआ तो वह अन्य देहाणुओं की मदद के लिये बुलाता है, और यह संयुक्त सेना उस कीटाणु को पकड़े-पकड़े देह-यंत्र के किसी छिद्र के पास ले जाती है और उसे बाहर निकाल देती है। फोड़े, फुंसियाँ आदि इसी प्रकार के कीटाणुओं के निकाले जाने के उदाहरण हैं, जहाँ ये शरीर-यंत्र के पुलिममैन विपैले कीटाणुओं को निकालते हैं।

रक्षिर के लाख कीटाणुओं को बहुत काम करना पड़ता है। वे शरीर के अंगों में आवश्यकता पहुँचाते हैं, वे अन्न से ग्रहण किए हुए पोषण को शरीर के उन अंगों में पहुँचाते हैं जहाँ नई रचना या मरम्मत के लिये इसकी आवश्यकता होती है। वे पोषण में से उन्हीं-उन्हीं तत्वों को खींच लेते हैं जिनसे आम्लाधिक द्रव, खार, पेनक्रियाटिक द्रव, पित्त, दूध इत्यादि-इत्यादि बनते हैं और फिर इन पदार्थों को कार्य के अनुकूल उचित परिमाण में मिलाते हैं। वे हजारों काम किया करते हैं और सर्वदा काम में लगे रहते हैं, जैसे चौंटियाँ सर्वदा काम में लगी रहती हैं; पूर्वीय आचार्य बहुत दिनों से इन अणु जीवों को जानते आए हैं और इनके अस्तित्व और इनकी क्रियाओं के विषय में अपने शिष्यों को शिक्षा देने आए हैं। परंतु वह बात पश्चिमी विज्ञान के लिये शेष रह गई है कि वह इसका गहन और सुविरण्वत अध्ययन करे।

हम लोगों के जीवन के प्रत्येक क्षण में ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरने हैं। ये देहाणु एक बंदर तब फिर आगों में विभक्त हो

जाने के कारण नूतने देहाणुओं को जन्माने हैं, पहला देहाणु  
 पूलने लगता है और पूलते-पूलते दो भागों में हो जाता है, और बीच  
 में जोड़नेवाली कमर रहती है, फिर यह कमर टूट जाती है और एक  
 देहाणु के स्थान में दो देहाणु हो जाते हैं। फिर नया देहाणु दो  
 भागों में विभक्त होता है, इस प्रकार क्रिया जारी रहती है।

ये देहाणु शरीर को अपने आप नया बनाए रखने की क्रिया  
 करने के लिये समर्थ बनाए रहते हैं। मानव शरीर का प्रत्येक भाग  
 लगातार परिवर्तित हो रहा है और इसके रेशे बदल जाया करते हैं।  
 हमारा घमका, हड्डियाँ, पाल, मांसपेशियाँ इत्यादि सबमें अनवरत  
 मरम्मत हुआ करती है और ये ठीक बनाई जाया करती हैं। हमारे  
 नखों को नष्ट हो जाने में करीब-करीब चार महीने लगते हैं; घमड़े के  
 नष्ट होने में ४ मसाह लगते हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग  
 लगातार रही हुआ करता और नया बना करता है, मरम्मत जारी  
 रहती है। और ये नन्हे-नन्हे कारीगर देहाणु उन मजदूरों के दल हैं,  
 जो इस आश्चर्यजनक कार्य को किया करते हैं। इन नन्हे-नन्हे कारी-  
 गरों के करोड़ों-करोड़ों के दल घूम-घूमकर और एक जगह पर स्थित  
 हो होकर हमारे शरीर में रही रेशों की जगह पर नई सामग्री जुटाया  
 करते और पुराने निकम्मे हानिकारक कणों को शरीर-यंत्र के बाहर  
 किया करते हैं।

नीच जंतुओं में प्रकृति प्रवृत्तिमानस को पूरा अवकाश और विस्तृत  
 क्षेत्र देती है; परंतु ज्यों-ज्यों जीवन उच्च पदवी धारण करता है (अर्थात्  
 ऊँची योनि में आता है) त्यों-त्यों बुद्धि विकसित होने लगती है और  
 प्रवृत्तिमानस का क्षेत्र संकुचित होता जाता है। उदाहरण के लिये  
 कीड़ों और मकोड़ों को देखो, तो वे नई टोंगों, पत्रों इत्यादि को  
 जमा लेने में समर्थ होते हैं। घोंघे तो अपने सिर के कुछ भागों को  
 भी नया बना लेते हैं, यहाँ तक कि यदि उनकी आँखें नष्ट

आर्य, तो नई आँखें भी पैदा कर लेते हैं। कोई-कोई मधुलियाँ अपनी नई पूँख पैदा कर लेती हैं। छिपकली आदि नई पूँछें, हड्डियाँ, सामंशियाँ और अपनी रीढ़ की हड्डी के भी कुछ भागों को नया पैदा कर लेती हैं। नीचातिनीच जंतु को अपने छोटे हुए अंग को फिर से पैदा करने की अधिक-से-अधिक सामर्थ्य है, और वे अपने को बिड़बुल नया बना सकते हैं यदि उनके शरीर का छोटा-से-छोटा भाग भी बचा हो, जिस पर वे नए भागों को पैदा कर सकें। उष्ण जंतु ज्यों-ज्यों उँचाई की सीढ़ी पर चढ़ते हैं, त्यों-त्यों उनकी यह शक्ति क्षीय होती जाती है। चूँकि मनुष्य सबसे ऊँचा है, इसलिये इसने तो अपनी रहन आदि की कुरीनियों से सबसे अधिक शक्ति खो दी। कुछ अधिक सिद्ध योगियों ने इस प्रकार के कुछ आरव्यंजनक कार्य कर दिए हैं, और कोई भी हो, यदि धैर्य के साथ अभ्यास करता रहे तो, प्रवृत्तिमानस और देहाणुओं पर अधिकार जमाकर शरीर के रोगी अंगों और निर्बल भागों को चंगा कर सकता है।

साधारण मनुष्य को भी चंगा करने की शक्ति है और यह शक्ति सर्वश काम करती है, पर अधिवांश मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते। किसी ज्ञात्र के अस्ते होने के उदाहरण पर विचार कीजिए। आइए देखें कि ज्ञात्र किस तरह पूरा होता है। यह बात धारके ध्यान देने और अध्ययन करने के योग्य है। यह इतनी प्रकट बात है कि हम इस पर ध्यान ही नहीं देने, परंतु यह इतनी आरव्यंजनक बात है कि हम पर गौर करने से शिष्य को विदित हो जायगा कि ज्ञात्र को चंगा करने में येननता की कितनी बड़ी महिमा प्रकट होती है।

कल्पना कीजिए कि किसी मनुष्य का शरीर ज्ञात्रमी हुआ है—अर्थात् उसी पर गवा है या किसी बाहरी चीज के लग जाने से पर गवा है। रेत, पंखा और रुधिर बहाने की नज्दियाँ, दूधसाँ

मोक्षार्थ, मोक्षार्थियों, नादियों और कर्म-कर्मियों इत्यादि संरित हो जाती है और उनकी मृगता दृष्ट जाती है। जन्म में रहित रहने लगता, उगता मृदु गिरता हो जाता और पीड़ा होने लगती है। नादियों हम समाचार को मग्नित्व में पहुँचाती हैं और मृत्यु महापता पाने के लिये शोर मचाती हैं, और मृत्युमानस शरीर में हृष-उपर प्रथो भोजने लगता है और मरम्मत करनेवाले देहाणुओं की उपपुत्र सेना को तलब करता है, जो मरम्मत करने के मुकाम पर पहुँचती है। हम यहाँ में जन्मी रुधिर की नलियों से यह-यहकर रुधिर, भीतर पुनः हुए बाहरी पदार्थों को घेर बहाता है या घेर बहाने की चेष्टा करता है, ये बाहरी पदार्थ धूल, मैदा और कीटाणु इत्यादि दुष्टा करते हैं और यदि भीतर रह जायें, तो विष उत्पन्न कर दें। रुधिर जब बाहर की हवा के संपर्क में आता है, तो जम जाता है, और स्रोत की भाँति जसजसा पदार्थ बन जाता है, और जन्म पर पपदी ढाल देने की नींव डालता है। करोड़ों देहाणु, जिनका कर्तव्य मरम्मत करना है, मौके पर दौड़कर पहुँचते हैं और रेशों को जोड़ने लग जाते हैं, और अपने काम में के रेशों, नादियों, रुधिर की नलियों के देहाणु बहने लगते हैं और करोड़ों नए देहाणुओं को पैदा कर देते हैं, जो दोनों ओर से आगे बढ़कर अंत में जन्म के बीच में मिल जाते हैं। पहले तो इन देहाणुओं का बढ़ना बेकायदे और निष्प्रयोजन की वृद्धि-सा प्रतीत होता है; परंतु थोड़े ही असें में शायक मानस और उसके अधीनस्थ प्रभाव केंद्रों का हाथ प्रकट होने लगता है। रुधिर की नलियों के नए देहाणु उस पार के उसी प्रकार के देहाणुओं से मिलने लगते हैं और नई नाली बन जाती है, जिसमें रुधिर फिर बहने लगे। जोड़ने-वाले रेशों के देहाणु अपनी ही भाँति के अन्य देहाणुओं से मिल जाते हैं।

और चारों ओर से जलम को भरने लगते हैं। नादियों के नए देहाणु प्रत्येक पृथक् मिश्रों पर बनने लगते हैं और बाल-सदृश रेशों को आगे बढ़ाकर शनैः-शनैः तार जोड़ देने हैं और फिर बिना बाधा के समाचार आने-जाने लगते हैं। जब यह भीतरी कुल काम समाप्त हो जाता है, और अधिर की नाजिर्यो, नादियों और जोड़नेवाले रेशे जब अच्छी तरह से मरम्मत हो जाते हैं तब चमड़े के देहाणु काम उत्तम करने में लिपट जाते हैं, और चमड़े के नए देहाणु बनने लगते हैं और जलम के ऊपर नया चमड़ा बन जाता है, जो जलम कि अब तक पूरा हो गया रहता है। ये सब बातें बड़ी सरलीय से होती हैं, जिससे चेतना और सुरीति मजकती है। जलम के चंगा होने में जो जाहिरा बड़ा सादा काम मालूम होता है—सावधान निरीक्षक सर्वव्यापक प्रकृति की चेतन्यता को प्रत्यक्ष देखता है—प्रकृतिया का प्रत्यक्ष उदाहरण पाला है। प्रकृति सर्वदा दृष्ट्युक्त रहती है कि अपने पदों को हटा खे और हम लोगों को भीतरी कोठरी की कारवाहियों को देखने दे; परंतु हम बेचारे मूर्ख लोग उसके निर्माण की परवाह नहीं करते, बल्कि बिना ध्यान दिए ही चले जाते हैं और मूर्खता को बातों तथा हानि-कारक कामों में अपने मानसिक बल को नष्ट करते हैं।

यहाँ तक तो देहाणु के विषय में हुआ। देहाणु का मानस सर्व-व्यापक मानस का—जो बिल का महत् भंडार है—यंरा है, और देहाणुओं के बेंद्रमण्ड के मानस से संबंध रखता है और उन्हीं के द्वारा प्रेरित हुआ जाता है। ये बेंद्रमण्ड के मानस और उच्चमानस के आधीन होने हैं, यह निश्चयिका तब तक चला जाता है, जब तक अंत में मनुष्य के प्रकृतिमानस तक नहीं पहुँच जाता। परंतु देहाणु मानस बिना अन्य दोषों लक्षों—भौतिक द्रव्य और प्राण के—अपने को प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकता। हमें अच्छी तरह से पचाए हुए कच से लट्ठी कामची प्रारण करने की आवश्यकता होती है कि वह अपने प्रकट होने का

साधन बना थे। हमको प्राण धर्मात् जीवत-शक्ति की भी आवश्यकता होती है कि यह गति और कार्य कर सके। जीवन की आवश्यकता—मानस, प्रण और शक्ति—देहाणु तथा मनुष्य दोनों में आवश्यक है।

इस पहले के अध्यायों में पाचन के विषय में और शक्ति में पुष्ट पोषणकारी मुख्य सामग्री उपस्थित करने की प्रधानता में, जिसमें यह शरीर की मरम्मत और उसके भागों की रचना अच्छी तरह कर सके, बहुत कुछ कहा था। इस अध्याय में हम यह बतला गए हैं कि कैसे देहाणु उस सामग्री को शरीर के बनाने में व्यवहार करते हैं—कैसे वे उसका व्यवहार अपने ही बनाने में करते हैं और फिर कैसे वे अपने ही को बना लेते हैं। स्मरण रखो कि ये देहाणु, जो हड्डों की मूर्ति प्रयुक्त होते हैं, अपने चारों ओर सब से प्राप्त सामग्री को लपेट लेते हैं और अपने लिये मानो शरीर बना लेते हैं; तब वे छोटा प्राण ले लेते हैं और उस जगह पहुँचते हैं, जहाँ इनकी आवश्यकता होती है, जहाँ वे अपने को बनाते हैं और स्वयं अपने नए रेशे, डंडी या मांसपेशी आदि का माग बन जाते हैं। अपनी देह बनाने के लिये बिना समुचित सामग्री पाए ये देहाणु अपना काम नहीं कर सकते, सब तो यह है कि जी ही नहीं सकते। वे मनुष्य जो अपने ही आवश्यकताओं से खींचे हो गए हैं और जो अपने पोषण का दुःख भोग रहे हैं, उनके शरीर में कार्नी देहाणु नहीं होते और इसलिये उनके शरीर की क्रिया उचित रीति से नहीं होती। देहाणुओं को सामग्री मिलनी चाहिए कि जिससे वे देह बना सकें, और एक ही तरीका है जिससे उनको सामग्री मिल सकती है—कि भोजन से पोषण प्राप्त किया जाय। जब तक देह-भंग में कार्नी प्राण न होगा, तब तक ये देहाणु अपने कार्यों के करने में पूरी शक्ति नहीं लगा सकते, जिससे सारे शरीर में जीवत की कमी प्रकट होने लगती है।

कभी-कभी मनुष्य की बुद्धि इस प्रवृत्तिमानस को इतना तंग कर देती है और इतना घुबकी है कि बेचारा बेहूदा मार्ग ग्रहण कर लेता है और बुद्धि में भय घाने लगता है और अपने नित्य के कार्यों को ठीक-ठीक रीति से नहीं कर सकता तथा देहाणु ठीक नहीं पैदा किए जाते। ऐसी दशाओं में जब बुद्धि अमल बात को समझ जाती है, तब अपनी पिछली भूलों को सुधारना चाहती है और प्रवृत्तिमानस को डाँस देने लगती है कि "तुम तो अपने काम को बहुत अच्छी तरह समझने लगे, और अब तुम्हें अपना राज करने का पूरा अधिकार मिलेगा, निश्चय रखो।" और फिर इसके बाद हिम्मत दिखाने, तारीफ़ करने और उसमें विरवास रखने के शब्द कहे जाते हैं, तब प्रवृत्तिमानस अपने चितस्थैर्य को धारण कर लेता है और अपने घर का प्रबंध करने लगता है। कभी-कभी यह प्रवृत्तिमानस अपने माजिक तथा अन्य बाहरियों के विपरीत पूर्व विचारों से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह धररा उठता है और फिर इसके असली अवस्था में घाने में बहुत समय लगता है कि यह ठीक शासन कर सके। ऐसी दशा में अक्सर यह होता है कि मातृहती के देहाणु, केंद्रों के मानस, वस्तुतः बगावत कर जाते हैं और सदर की आज्ञाओं को नहीं मानते। इन दोनों दशाओं में मनुष्य के हृदय संकल्प की—निश्चित आज्ञा की—अरुणत पड़ती है कि सारे शरीर में फिर से अमन-चैन फैल जाय और मुनासिब काम होने लगे। स्मरण रखिए कि प्रत्येक इंद्रिय अवयव और भाग में किसी-न-किसी प्रकार की चेतना होती है और हृदय इच्छा की अच्छी प्रबल आज्ञा से विकृत अवस्थाओं में भी प्रायः सुधार हो जाता है।



# उन्नीसवाँ अध्याय

## शासनातीत श्रंगों पर अधिकार

इस किताब के पिछले अध्याय में हम आपको समझा था कि मानव शरीर करोड़ों नन्हे-नन्हे देहाणुओं से बनता है; प्रत्येक के आधीन काफ़ी सामग्री रहती है कि वह अपना काम कर सके; काफ़ी प्राण रहता है कि उसे आवश्यकतानुसार बल मिलता रहे और पर्याप्त चेतना रहती है कि जिससे वह अपने कार्य को ठीक पथ पर कर ले जाय, प्रत्येक देहाणु एक संप्रदाय या वंश से संबंध रखता है, और उस देहाणु की चेतना उस संप्रदाय या वंश के प्रत्येक देहाणु की चेतना से लगाव रखती है; संप्रदाय या वंश की सम्मिलित चेतना संमस्त संप्रदायमानस बनती है। ये संप्रदाय भी एक बड़े समुदाय के श्रंग हुआ करते हैं, और इसी तरह दर्जे-बदर्जे ज्ञाता जाता है, जब तक सारे शरीर-भर का एक राज्य प्रवृत्तिमानस के अधिकार में होने के दर्जे तक नहीं पहुँच जाता, इन संप्रदायों और समूहों पर शासन रखना प्रवृत्तिमानस के कर्तव्यों में से है और वह प्रायः अपना काम अच्छी ही तरह से करता है, यदि बुद्धि उसमें हस्ताक्षेप न करे, जो कभी-कभी अपने भय के झ्रयाज्वालात प्रवृत्तिमानस के पास भेज देती है या किसी दूसरे ही प्रकार से उसे मूढ़ बना देती है। कभी-कभी इसके कार्य में बुद्धि इस प्रकार बाधा पहुँचाती है कि वह पार्थिव शरीर को नियमित रखने के लिये देहाणु चेतना को विपरीत और प्रतिकूल आदतें पकड़ा देती है। उदाहरण के लिये कोष्ठबद्ध के रोग पर ध्यान दो, बुद्धि दूसरे काम में फँसे रहने के कारण, शरीर को प्रवृत्तिमानस की आज्ञा — (कभी) का पालन न करने देगी, जो कि मलाशय के

देहाणुओं की पुकार पर जारी की गई है, और न पानी की मँगों पर ध्यान देगी तो परिणाम यह होगा कि प्रवृत्तिमानस उचित आशाओं का पाबन नहीं कर सकता और यह तथा देहाणु संप्रदायों में से कुछ ये दोनों घबराकर किकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। स्वाभाविक आदत के ध्यान पर बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं और कभी-कभी किसी-किसी देहाणु संप्रदाय में एक प्रकार की बगावत उठ खड़ी हो जाती है। इसमें संदेह नहीं कि इसका कारण उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में बाधा पहुँचाना रहता है अथवा उनके लिये और विपरीत रिवाजों का पैदा करना होता है, जिससे गड़बड़ उपस्थित हो जाती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे समूहों में से कुछ (और कभी-कभी तो बड़े समूहों में से कुछ) हड़ताल कर देते हैं, और अनन्यस्त तथा अनुचित कार्य जब उनके जिम्मे किए जाते हैं, या उचित से अधिक काम दिया जाता है, या ऐसा ही कोई अन्याय होता है कि उन्हें उचित पोषण नहीं मिलता, तो वे बगावत कर देते हैं। वे नन्हे-नन्हे देहाणु उन्मी तरह से कार्य करते हैं जैसे उन्मी दशा में मनुष्य कार्य करते हैं; देखनेवाले और जाँच करनेवाले को दोनों की समानता आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। यदि शुभबंध न कर दिया जाय, तो यह हड़ताल और बगावत फैल जाय; और जब कभी अपूरा ही प्रबंध कर दिया जाता है, तो ये देहाणु काम को तो करने लगते हैं, परंतु अपनी योग्यतानुसार उत्तम कार्य करने के ध्यान पर ब्रह्मयोगिता से बहुत थोड़ा काम करते हैं; सो भी जब कभी मन में आता है तब स्वाभाविक दशाओं को पुनः स्थापित करने से, अपूरा और बाकी पोषण देने से, उन पर उचित ध्यान रखने से शनैः-शनैः सुखवाया प्राप्त होगी, परंतु हड़ संकल्प से सीधा कुछ देहाणु-समूहों को देने से

प्राप्त होती है। हम लोगों से किनी पित हो जाती है उसे देखने से आश्चर्य

होगा है। जैसे योगी शासन में बाहर के देह-मंत्र पर आदर्शजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी हुक्मग रगने हैं। भारतवर्ष के नगरों के योगी भी, जो मूढ़े योगी में योगी ही बेहतर होते हैं, और जो पैमे के लिये अपनी क्रियाएँ दिव्यज्ञापा करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रगने के बहुत ही मनोमग्न उदाहरण दिखला सकते हैं; इनकी कोई-कोई प्रदर्शनी तो मातृक दिमागावाओं को पृथ्वास्व और सच्चे योगियों के लिये दुस्त-वायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भट्ट की जा रही है।

अभ्यास से यक्षयती बनी हुई हठ हृष्टा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरांजे भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी हठ हृष्टा को क्षतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से एकत्र करके उसका असर पहुँचा सकता है। परिधमी लोगों की स्वतः मंत्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से ध्यान और आकांक्षा पीढ़ा के स्थान पर जम जाती है, और शनैः-शनैः हठताजवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीढ़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीढ़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रयत्न आशा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि बायीं अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे हम तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्कूल के लड़कों के एक मुँद या पलटन के रंगरुटों के एक स्काट को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो; अवयव से वही बात कहो, जो तुम उसमें कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना और से बड़े बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर मुद्रायम थापी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोक देने से वह रुककर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत ध्याएँ कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के कान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना और से बहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की वरपना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी भाषी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुसमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर बिदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, दधिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के धारणावस्त्र ध्यान का उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-निवारक को आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की वृत्तचक्र के स्थान पर पहुँचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुरों को लड़कों के श्रेष्ठ-की प्रतीति होती; परंतु इसके समर्थन के लिये अल्प-अल्प वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग इसे देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीका समझते हैं। जब तक इसकी परीक्षा न कर लें तो तब तक इसे अज्ञान समझकर चेंक न हो। यह दृष्टान्तों

होता है। जैसे योगी शासन से बाहर के देह-यंत्र पर आरचर्पजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी दृष्टिमान रखते हैं। आरचर्प के नगरों के योगी भी, जो मूठे योगी से थोड़ा ही बेहतर होते हैं, और जो पीने के लिये अपनी क्रियाएँ दिव्यज्ञाया करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोमग्न उदाहरण दिग्गजा मफने हैं; इनकी कोई-कोई प्रदर्शनी तो ग्राहक दिग्गायाओं को ध्यानापद् और सच्चे योगियों के लिये दुःख-दायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास से यक्षयती बनी हुई हृद हृष्टा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा अस्तर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरीके भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी हृद हृष्टा को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक जाप से एकाम्र करके उसका अस्तर पहुँचा सकता है। परिचामी लोगों की स्वतः मंत्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक जाप से ध्यान और आकांक्षा पीड़ा के स्थान पर जन्म जाती है, और शनैः-शनैः हृत्तालवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीड़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रयत्न आशा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि चाही अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे इस तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्कूल के लड़कों के एक झुंड या पलटन के रंगस्टों के एक स्काउट को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो; अवयव से वही बात कहो, जो तुम उससे कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना तौर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर गुलाबम धारी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोक देने से वह झुककर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत ध्याल कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के कान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना तौर से बहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की बरूपना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सदानुभावी नाही में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुमूहों तथा देहाणु-म्यनियों पर बिदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, रुधिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के धारणावस्त्र ध्यान का उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-निवारक की आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की वातायत के स्थान पर पहुँचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुतों को लड़कों के खेल-सी प्रतीत होगी; परंतु इसके समर्थन के लिये कल्पे-कल्पे वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग हमें देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीका समझने दें। जब तक इसकी परीक्षा न कर लो तब तक हमें प्रकृत समझकर कह न दो। यह दृष्टान्तों

होता है। जैसे योगी शासन में बाहर के देह-बंधन पर आरक्षणजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी हस्तगत करने देते हैं। भारतवर्ष के नगरों के योगी भी, जो मूठे योगी में घोड़ा ही बेहतर होते हैं, और जो पीने के लिये अपनी क्रियाएँ दिग्गजापा करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोहरक उदाहरण दिग्गजा सकते हैं, इनकी कोई-कोई प्रदर्शनी तो नाटुक दिग्गजापाओं को गृह्याम्पद और सच्चे योगियों के लिये दुःस्वप्नी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास में विलयती बनी हुई हठ हृष्टा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल आभारण धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरीके भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी हठ हृष्टा को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से एकाग्र करके उसका असर पहुँचा सकता है। पश्चिमी लोगों की स्वतः मंत्रयापे और प्रतिज्ञापे इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से ध्यान और आकांक्षा पीढ़ा के स्थान पर जम जाती है, और शनैः-शनैः हठताजवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीड़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रबल आज्ञा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि बागी चंग या ध्वज से "बात की जाय" उसे इस तरह की भाषा दी जाय, जैसी रक्त के लड़कों के एक झुंड या पलटन के रंगरूटों के एक स्क्वाड को दी जाती है। भाषा को स्पष्टता और रदता के साथ दो; ध्वज से वही बात कहो, जो तुम उससे कराया चाहते हो, भाषा को हाकिमाना तौर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के चंग पर मुझायम धापी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर टोंक देने से वह रुककर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत छ्याल कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के जान होने हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना तौर से कहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की कल्पना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी नादी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुसमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर विदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, रुधिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि भाषा देनेवाले मनुष्य के आरब्धामकल ध्यान उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-नि

। सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस  
 लुओं की बलावत के स्थान पर पहुँचा  
 में      ों को लड़कों के खेल-मी

प्रत्येक वैज्ञानिक प्रमाण  
 भाषा पहुँचाने का  
 की परीक्षा न कर

हो। यह शताब्दियों



के जोर में अटक बना हुआ है, और इसमें बढ़कर और कोई तरीका अब तक काम करने का नहीं पाया गया है।

यदि तुम अपने शरीर के किसी भाग पर इस तरीके का प्रयोग किया चाहते हो, या किसी अन्य के शरीर पर इसको आजमाया चाहते हो, जो कि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस भाग पर अपनी हथेली से धीरे-धीरे धापी दो और ( उदाहरण के लिये ) यों कहो कि “तुमो यकृत, तुम्हें अपना काम अच्छी तरह करना पड़ेगा—तुम इतने सुस्त हो कि मेरे सुभाक्रिऊ नहीं हो, मैं बड़ आशा करता हूँ कि अब से तुम अच्छा काम करोगे, खलो काम करो, हम कहते हैं इस मूर्खता को छोड़ो।” ठीक ये ही शब्द आवश्यक नहीं हैं, आपसो जो शब्द आवें उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परंतु उनमें हाकिमाना स्पष्ट भाव और आज्ञा होनी चाहिए कि अवश्यव अपना काम करने लगे। इसी तरीके से हृदय के काम भी उत्तम हो सकते हैं; परंतु हृदय को आज्ञा देने में बहुत मुलायमियत रखनी चाहिए। क्योंकि हृदय के देहाणुसमूह यकृत के देहाणुसमूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्तिवाले हैं और इनके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए। हृदय को स्मरण दिला दीजिए कि “मैं बेहतर काम की आज्ञा करता हूँ”; परंतु आदर से कहिए; यकृत की भौति इस पर घुड़की मत चलाइए। सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणुसमूह बहुत चेतना-विशिष्ट है। यकृत का देहाणुसमूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव खरचर का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घांड़े की भौति चैतन्य और चौकता रहता है। अगर आपका यकृत बड़ाबत करे, तो उसको डाँटकर आज्ञा दो, उसके खरचर स्वभाव को याद रखो। आमाशय भी खासा चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है; मलाशय बड़ा क्रमाबद्ध है; यद्यपि इसके साथ बड़ा जुलम होता है, पर यह

धीर बना रहता है। यदि आप मजाराय को आज्ञा दें कि हम इतने बजे सघेरे रोज़ मल त्यागना चाहते हैं। बजे बतला दीजिए और ठीक ठमी वक्त पर मल त्यागने जाया कीजिए, अपने वचन को पूरा करते रहिए, तो थोड़े ही दिनों में आपको मालूम हो जायगा कि मजाराय आपकी आज्ञा की ठीक पाबंदी कर रहा है। परंतु स्मरण रखिए कि बेधारे मजाराय के साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ है और उसको आपके वचनों का विरवास करने में कुछ समय लगेगा। श्रियों का अनियमित मासिकधर्म नियमित बनाया जा सकता है और स्वाभाविक आदत प्राप्त की जा सकती है। इसमें थोड़े ही महीने लगेगे। जिस तारीख को मासिकधर्म होना चाहिए उस तारीख को स्मरण कर लें, और प्रतिदिन उसी रीति से बर्ताव करके, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, मासिकधर्मवाले देशानुसमूहों से कहें कि “अब मासिकधर्म के लिये इतने दिन धीर बाज़ी है, तुम तैयार रहना, अपने काम करते जाओ कि जब समय आवे सब ठीक रहे”, जब समय बहुत निकट आ जाय, तो कहो कि “समय अब थोड़ा रह गया है, काम ठीक किए जाओ।” मजारा की भीति आज्ञा मत दो, किन्तु ऐसा कहो कि मानो तुम दिज्ञान से कहते हो, और तब उस आज्ञा का पावन होगा। बहुत से अनियमित अधर्मों को एक से लेकर तीन महीनों में इस रीति से अन्त होने पाया है। यह आपको इम्बजनक जान पड़ेगा, पर हम यही कहेंगे कि आप परीक्षा करके उसको जीव हीजिए। हमको यहाँ इतना कहना आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक रोग के लिये अलग-अलग प्रयोग बनवायें, पर आप ऊपर लिखी बातों से समझ जाए कि बीबा-बचन पर किस अवस्था का देशानुसमूह का अधिकार है और तब इसको आज्ञा दीजिए। अगर आप इस बात को ब ठीक कर लें कि बीब अवस्था गहरा मचा है, तो आप कम-से-कम

के जोंव में धरज बना हुआ है, और हृदये बढ़कर और कोई तरीका अब नव काम करने का नहीं पाया गया है ।

यदि गुम करने शरीर के किसी भाग पर हृदय तरीके का प्रयोग किया जायने हो, या किसी अंग के शरीर पर हृदयको आश्रमाया जायने हो, जो कि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस अंग पर धरनी हथेली से धीरे-धीरे धारी दो और ( उदाहरण के लिये ) यों कहो कि "गुनो यकृत्, तुम्हें अपना काम अपनी तरफ करना पड़ेगा—गुम हृदये गुप्त हो कि मेरे मुद्राक्रिज नहीं हो, मैं हृदय आशा करता हूँ कि अब से गुम अपनी काम करोगे, अब काम करो, हम बढ़ते हैं इस गुणता को छोड़ो ।" ठीक ये ही शब्द आश्रयक नहीं हैं, आपको जो शब्द आप उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परंतु उनमें हाकिमाना स्पष्ट भाव और आशा दोनों चाहिए कि अवश्य अपना काम करने लगे । इसी तरीके से हृदय के काम भी उन्नत हो सकते हैं; परंतु हृदय को आशा देने में बहुत मुलायमियत रखनी चाहिए । क्योंकि हृदय के देहाणुसमूह यकृत् के देहाणुसमूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्तियाँ हैं और इनके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए । हृदय को स्मरण दिला दीजिए कि "मैं बेहतर काम की आशा करता हूँ" ; परंतु आदर से कहिए; यकृत् की भौति इस पर धुक्की मत चलाइए । सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणुसमूह बहुत चेतना-विशिष्ट है । यकृत् का देहाणुसमूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव खरचर का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घांटे की भौति चैतन्य और चौकता रहता है । अगर आपका यकृत् बड़ाबल करे, तो उसको रोककर आशा दो, उसके खरचर स्वभाव को याद रखो । आमाशय भी आशा चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है; मलाशय बड़ा क्रमांशदार है; यद्यपि इसके साथ बड़ा जुहम होता है, पर यह



पीड़ा के स्थल को तो जान सकते हैं, फिर शरीर के उसी भाग को आज्ञा दीजिए। आपके लिये यह आवश्यक नहीं है कि आप प्रत्येक रोगी अवयव के नाम जानें, आपको केवल उस स्थल पर आज्ञा देना चाहिए, यों कहिए “सुनो जी.....” यह किताब रोगों को दूर करने के लिये नहीं उद्दिष्ट, इसका अभिप्राय रोगों को न जाने देकर स्वास्थ्य ठीक रखने का है; परंतु तो भी कुछ थोड़ी बातें बारीक अवयवों को मार्ग पर लाकर आपको सहायता पहुँचाने के लिये लिख दी गई हैं।

ऊपर लिखी हुई रीतियों और उनके रूपांतरों के प्रयोग से जो आपको अपने शरीर पर अधिकार प्राप्त होगा, उसको देखकर आरम्भ आश्चर्य होने लगेगा। तुम सिर से रुधिर नीचे बहाकर सिर की पीड़ा दूर कर सकते हो; आप ठंडे हाथ-पाँव में अधिक रुधिर संचार की आज्ञा दे सकते हैं, और रुधिर-संचार करके उसे गमना सकते हैं। हाँ, रुधिर के साथ प्राण भी चरचर आयेगा। अगर रुधिर-संचार में समता ला सकते हैं, जिससे सारा शरीर उत्तेजित हो जाय। आप शरीर के धके भाग को विधाम पहुँचा सकते हैं। साथ तो यह है कि यदि आप इस तरीके को धैर्य के साथ और ही और ठीक वर्तना सीख लें, तो इतना कार्य इस तरीके के प्रयोग से कर सकते हैं, जिसकी इद नहीं। अगर आप यह नहीं ठीक कर सकते कि बीन-बी आज्ञा दें, तो आप उस भाग से बड़ी कहें—“सुनो जी, अपने हो जाओ, हम चाहते हैं कि यह पीड़ा हट जाय, हम चाहते हैं कि तुम अपना काम करो।” या ऐसे ही और बातें कहो। हमें संदेह नहीं कि इनमें व्यव्याय और धैर्य की आवश्यकता है, पर इनके बिना तो यह क्या, कोई भी बात प्राप्त नहीं होगी।

# वीसवाँ अध्याय

## प्राणशक्ति

जब शिष्य इस किताब को पढ़ेगा, तो उसे मालूम हो जायगा कि हठयोग के आभ्यन्तरिक और बाह्य दो पटल हैं। आभ्यन्तरिक से हमारा यह अभिप्राय है कि केवल उन्हीं लोगों के किये, जो विशेष शिष्य की कुंजी पाए हुए हैं, और बाह्य से हमारा अभिप्राय ऊपरी, सर्वगत का है। हम विषय का बाह्यपटल भोजन से उचित पोषण प्रदान करना, पानी से शरीर-यंत्र की सिंचाई और मैलों की धुलाई करना, सूर्य की किरणों से धृति और स्वास्थ्य का लाभ उठाना, व्यायाम बल प्राप्त करना, उचित श्वास से लाभ उठाना, स्वच्छ और ताज़ा हवा से प्राणदा उठाना है। ये बातें पश्चिमी और पूर्वी दोनों दुनियाओं को मालूम हैं, योगी और अयोगी दोनों पर विदित हैं। इन अभ्यास से लाभ होते हैं, उनसे दोनों अभिशु हैं। परंतु इसका और भी पटल है, जो योगियों और थोड़े-पूर्वीय लोगों को तो मालूम है, पर पश्चिमी लोगों को और उनको, जो योग के विषय से अनभिज्ञ हैं, बिलकुल अज्ञात है। इसके आभ्यन्तर पटल का आधार प्राण शक्ति है। योगी लोग जानते हैं कि मनुष्य अपने भोजन से प्राण और पोषण प्राप्त करता है, पाने के पानी से प्राण प्राप्त करता है और सफ़ाई का काम लेता है; व्यायाम से प्राण और शारीरिक विकास प्राप्त करता है, सूर्य की किरणों से प्राण और ताप दोनों ग्रहण करता है—इस प्रकार प्राण और आभ्यन्तरिक दोनों लेता है। यह प्राण का विभिन्न सारे हठयोग शास्त्र में बिना दुष्का है और शिष्यों को इन गंभीर विचार करना चाहिए। जब प्राण शक्ति का प्रयोग

है, तो इस प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए कि "प्राण क्या वस्तु है?"

हमने प्राण की प्रकृति और उसके लाभों का वर्णन "श्वास-विज्ञान"-नामक छोटी किताब में कर दिया है। और हम इस किताब के सफ़ाहों में भी वे ही बातें भरकर इसे पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परंतु इस विषय और कतिपय अन्य विषयों को जो एक बार लिखे जा चुके, दुहराकर लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि संभव है कि बहुत-से मनुष्य, जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़ें हों। और प्राण का वर्णन न लिखना अनुचित है। और फिर भी दृढयोग की पुस्तक और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम इस वर्णन में बहुत अवकाश न लेंगे और इस विषय के कुल भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गूढ़ाचारियों ने अपने कुञ्ज पुने हुए शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश दिया है कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम क्रिया, शक्ति, बल और जीवत प्रकट होते हैं। इस तत्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धांतों की व्याख्या में भी अंतर पड़ा है, परंतु असल तत्व सब गूढ़ उपदेशों और शास्त्रों में पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वोक्त योगियों की शिष्याओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रक्खा है, जिस नाम से यह दिव्य गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

शुद्ध माधनों के आचार्य लोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् बल का सर्वव्यापक तत्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्व में अर्पित इसी तत्व से कई रूपों में प्रकट होते हैं। इन

विचारों से हमारे पुस्तक के इस विषय से संबंध नहीं है, और हम इतना ही समझकर भागे बढ़ने हैं कि प्राण शक्ति का तत्व है और सब जीवित चीजों में पाया जाता है और यही उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न करता है। हमें जीवन का क्रियावान् तत्व—या भाव पसंद करें, तो जीवत-वस्तु ज्ञास कर सकते हैं। यह सब प्रकार का जीवन कोई से लेकर मनुष्य पर्यंत में पाया जाता है—पौधों के सादे जीवन से लेकर जानवरों के दृढतम जीवन तक में पाया जाता है। प्राण सर्वव्यापक है। यह सब जीवित वस्तुओं में पाया जाता है, और चूंकि रहस्यशास्त्र बतलाते हैं कि जीवन प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक परमाणु में पाया जाता है—बुद्ध वस्तुओं की ज्ञाहिरी निर्जीवता केवल अल्प विकास के कारण है, इसलिये हम उनके उपदेशों का यह अर्थ समझते हैं कि प्राण सर्वत्र है, सब पदार्थों में है। प्राण को जीवन से न गढ़बढ़ाना चाहिए—जीव परमात्मा का अंश है और उसी पर द्रव्य और शक्ति आवरण रूप में छिपटती है। प्राण शक्ति का एक रूप है, जिसे जीव अपने पार्थिव विकास में काम में लाता है। जब जीव शरीर को छोड़ देता है, तब प्राण उसके अधिकार में न रहने से, व्यक्तिगत परमाणुओं की, या परमाणु-समूहों की जिनसे शरीर बना है, आशा-का पावन करता है; प्रत्येक परमाणु इतना प्राण ले लेता है कि नए समूह बना सके; अप्रयुक्त प्राण उस महा-भंडार में मिल जाता है, जहाँ से आया था। जब तक जीव अधिकार रखे रहता है, तब तक संसक्ति बनी रहती है और जीव की आकांक्षा से परमाणु सब एकत्र बँधे रहते हैं।

प्राण एक ऐसा नाम है, जिससे हम उस सर्वव्यापक तत्व का बोध करते हैं, जो सब गति, बल, शक्ति, चाहे वे आकर्षण-शक्ति के रूप में, चाहे विमर्शनी, प्रहों की शक्ति और जीवों के हृद्य से लेकर भीष जीवन तक में प्रकट है, सबका स्रोतक है। यह बल और शक्ति.



है, तो हम मरन पर विचार कर लेना चाहिये कि "प्राण स्वास्थ्यं है ?"

हमने प्राण की प्रकृति और उगड़े क्षामों का वर्णन "रसाभिज्ञान"-नामक घोंटी किताब में कर दिया है। और हम हम क्षिति के मन्त्रों में भी ये ही बातें भरकर हमें पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परंतु हम विषय और कनिष्ठ अभ्य विषयों को जो एक बार लिखे जा चुके, दुर्लभ का क्षितिना आधार एक समझने हैं, क्योंकि संभव है कि बहुत-से मनुष्य, जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़ें हों। और प्राण का वर्णन न बिलगना अनुचित है। और फिर भी हठयोग की पुरतः और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम हम वर्णन में बहुत अवकाश न लेंगे और इस विषय के कुछ भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गूढ़ाचारियों ने अपने कुछ पुने हुए शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश दिया कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्त्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम क्रिया, शक्ति, बल और जीवत प्रकट होते हैं। इस तत्त्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धांतों की व्याख्या में भी अंतर पड़ा है, परंतु असल तत्त्व सब गूढ़ उपदेशों और शास्त्रों में पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वीय योगियों की शिष्याओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रखा है, जिस नाम से यह हिंदू गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

गुप्त साधनों के आचार्य जोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् का, सर्वव्यापक तत्त्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्त्व में अर्थात् इसी तत्त्व से कई रूपों में प्रकट होते हैं। इन

करता है, और कार्बन पैसा ही कार्य पीपों के जीवन में करता है; परंतु प्राण जीवन के विकास में एक प्रयत्न ही कार्य करता है, जो वेद, धर्म, विद्या से अलग है।

हम लोग स्वाम द्वारा लगातार हवा को खींच रहे हैं, जो प्राण से भरी हुई है, और हवा में प्राण को खींचकर घैसे ही अपने कार्य में ला रहे हैं। प्राण वायुमंडल को हमारे पास लाया जाता है; हवा जब स्वच्छ और ताजी रहती है, तो उसमें प्राण की पुच्छल मात्रा रहती है। हम लोग हवा से प्राण को और चोड़ों की अपेक्षा अधिक आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। सामान्य रीति से श्वास लेने में हम प्राण की सामान्य मात्रा ग्रहण कर सकते हैं; परंतु श्वास को अपने आधीन करके नियमित स्वाम से ( जिसे योगी की साँस या प्राणायाम कहते हैं ) हम अधिक प्राण खींचने में समर्थ हो सकते हैं, जो प्राण मस्तिष्क और नाड़ीकेंद्रों में जमा हो जाता है कि आवश्यकतानुसार काम में लाया जाय। हम प्राण को उसी प्रकार संचय कर सकते हैं, जैसे बिजली संचय करनेवाली बैटरी उसको संचय करती है। योगियों में जो अनेक शक्तियाँ बढी जाती हैं, वे इसी प्राण-विषयक ज्ञान और प्राण के संचित भंडार की विचारपूर्वक काम में लाने से होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि किस रीति से साँस लेने से प्राण के भंडार के साथ संबंध टुट जाता है, और उसी प्रकार श्वास लेकर अपनी आवश्यकतानुसार प्राण ग्रहण करके संचय किया करते हैं। इस प्रकार वे अपने शरीर की को बलिष्ठ नहीं बनाते, बल्कि मस्तिष्क भी इसी द्वार से अधिक शक्ति ग्रहण करता है, और इससे गुप्त शक्तियाँ जागृत हो सकती हैं और मानसिक शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जिसको प्राण संचय करने का तरीका जानकर या अनुमान में सिद्ध हो गया है, वह अपने शरीर से जीवत और शक्ति प्रवाहित किया करता है, जिसको

के सब रूपांतरों का सारांश कहा जा सकता है, यह वह तत्व है, जो एक विरोध रीति से कार्य करके उस प्रकार की क्रिया उत्पन्न करता है, जो जीवन के साथ रहती है।

यह प्रधान तत्व प्रत्येक द्रव्य में है, पर तो भी यह द्रव्य नहीं है। यह हवा में है, पर न तो यह हवा है और न हवा का अवयव ही है। यह उस भोजन में है, जिसे हम खाते हैं, परंतु यह वही पदार्थ नहीं है, जो भोजन में पोषणकारी पदार्थ होते हैं। यह पानी में है, परंतु वह पानी के उन रासायनिक तत्वों में से एक भी नहीं है, जिनसे पानी बना हुआ है। यह सूर्य के प्रकाश में है, पर न तो यह ताप है न किरण। यह इन सब चीजों की शक्ति है—चीजें तो केवल इसको वहन करने वाली हैं।

मनुष्य इसको हवा, भोजन, पानी, सूर्य के प्रकाश आदि से ग्रहण करने और उसे अपने देह-मंत्र के काम में ले आने में समर्थ है। हमारे अभिप्राय को अच्युती तरह से समझ लीजिए। हमारा भ्रम यह नहीं है कि माण्ड इन पदार्थों में हसीजिये हैं कि मनुष्य उनका व्यवहार करे, यह अभिप्राय नहीं है। माण्ड तो इन पदार्थों में प्रकृति के नियम के अनुसार है, और मनुष्य की योग्यता इसके ग्रहण करने और काम में लाने की एक गौण-भाग्र है। यह शक्ति तो बनी ही रहेगी, चाहे मनुष्य रहे या न रहे।

जानवर और पौधे हवा के साथ इसे भी अपनी श्वास द्वारा लींचते हैं और यदि हवा में प्राण न रहता, तो वे हवा से भरे रहने पर भी मर जाते। इसे आवश्यकता के साथ देह-मंत्र ग्रहण करता है, पर यह आवश्यकता नहीं है।

प्राण वायुमंडल की हवा में और अल्पत्र भी है, यह ऐसी जगहों में प्रवेश कर जाता है, जहाँ हवा की पहुँच नहीं हो सकती। हवा का आवश्यकता अंतुर्धर्मों के जीवन के कायम रखने में प्रधान काम

उमड़ो लगाना मुहर्षा की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रत्येक इच्छा, प्रत्येक क्रिया, इच्छा के प्रत्येक प्रयत्न, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नाड़ी-यंत्र कार्य होता है; और यह नाड़ी-यंत्र वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संचालित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; वय इतना प्राण वहाँ पहुँच हो गया। अब यह स्मरण रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है, उमड़ा अधिकांश श्वास में ली हुई हवा से आता है, तो उचित मौम लेने की प्रधानता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

यह बात देखने में आती है कि श्वास के विषय में परिचयी वैज्ञानिक विचार आक्सीजन ही के ग्रहण और रुधिर-संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नाड़ी-यंत्र के मार्ग द्वारा उसके विकास तक पहुँचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नाड़ी-यंत्र को समझ लेना लाभदायक होगा।

मनुष्य का नाड़ी-यंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग और दूसरा सहायुभवी विभाग। मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग में वह नाड़ी-संस्थान है, जो सिर की खोपड़ी और रीढ़ की नाली में सञ्चलित है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुद्दी और रीढ़ की गुद्दी इन्हीं के साथ इनसे निकली हुई शाखाएँ भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, चेतना आदि करके जाने जाते हैं। सहायुभवी विभाग में वह नाड़ी-जाल है, जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोखले में स्थित है और भीतरी अवयवों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अनिच्छापूर्व क्रियाओं पर है जैसे वृद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूँघने, वेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता

वे लोग अनुभव करते हैं, जो उस मनुष्य के संपर्क में आते हैं।  
ऐसे जीवट और शक्तिवाले मनुष्य दूसरों को भी जीवट दे सकते  
हैं और उन्हें अधिक शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।  
औजसरोगनिवारण इसी प्रकार किया जाता है, यद्यपि बहुतसे  
प्रयोक्तार्यों को यह भी नहीं मालूम रहता कि उनको यह शक्ति  
कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई।

पश्चिमी वैज्ञानिक इस प्रधान तत्त्व से, जिससे हवा भरी रहती  
है, बहुत धुंधले रूप से अभिज्ञ हुए हैं; परंतु इसके कोई रासायनिक  
लक्षण न पाकर, और अपने किसी औज़ार से इसे प्रत्यक्ष न कर  
सकने पर, वे जोग पूर्वीय लोगों के इस विचार को निरादर की दृष्टि  
से देखने लगे। वे इस तत्त्व को समझ न सके, इसलिये इसे अस्वी-  
कार करने लगे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें अब कुछ-कुछ ऐसा  
प्रतीत होने लगा है कि अमुक स्थान की हवा में "कोई चीज़" है  
और बीमार मनुष्यों को उनके डॉक्टर जोग उपदेश देते हैं कि उसी  
स्थान पर अपने खोप हुए स्वास्थ्य को पाने के लिये जाओ।

हवा के आक्सीजन को रुधिर अपनाता है और रुधिर-संचार का  
यंत्र उसे अपने काम में लाता है। हवा में अंतर्गत प्राण को नाड़ी-  
जाल अपनाता है और उसे अपने काम में लाता है, जैसे आक्सीजन-  
मिश्रित रुधिर शरीर के सब अंगों में पहुँचाया जाता है कि जिनसे  
शरीर बने और सुधरे, वैसे ही प्राण भी नाड़ी-यंत्र के सब भागों में  
शक्ति और जीवट लेकर पहुँचाया जाता है। यदि हम प्राण को जीवन  
का क्रियावान् तत्त्व समझ लें, तो हम इस बात की और भी सारा  
भावना कर सकेंगे कि हम लोगों के जीवन में यह कैसा प्रधान का  
करती है। जैसे रुधिर का आक्सीजन देह की आवश्यकताओं से प्र-  
प्त हो जाता है, वैसे ही नाड़ी-यंत्र द्वारा लिपा हुआ प्राण भी शरीर  
का काम करने और क्रिया आदि करने से उत्पन्न हुआ करता है।

उसको लगाना मुद्दिया की आवश्यकता बनी रहती है। प्रत्येक श्वासा, प्रत्येक क्रिया, इच्छा के प्रत्येक प्रयत्न, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नादी-यंत्र खर्च होता है; और यह नादी-यंत्र वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संचालित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; इस इतना प्राण वहाँ खर्च हो गया। जब यह स्मरण रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है, उसका अधिकांश श्वास में ली हुई हवा से आता है, तो वचन सोंभ लेने की प्रधानता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

यह बात देखने में आती है कि श्वास के विषय में परिचयी वैज्ञानिक विचार आवसीजन ही के ग्रहण और रधिर-संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नादी-यंत्र के मार्ग द्वारा उसके विकाश तक पहुँचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नादी-यंत्र को समझ लेना लाभदायक होगा।

मनुष्य का नादी-यंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग और दूसरा महाभुज विभाग। मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग में यह नादी-संस्थान है, जो सिर की छोपड़ी और रीढ़ की माला में स्थित है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुरी और रीढ़ की गुरी इन्हीं के माध्यम से निकली हुई शाखाएँ भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, चेतना आदि बरके जाने जाते हैं। महाभुज विभाग में यह नादी-शाखा है, जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोखले में स्थित है और भीतरी अङ्गणों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अनिश्चाय विषयों पर है जैसे वृद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूँघने, बेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता

है; इसे जीव सोचने, चेतना प्रकाशित करने के काम में सहाय है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा जीव बाहरी जगत् से स्वयंसेवक बनता है। इस विभाग की उपमा टेन्नीकोन के तारों से दी जा सकती है; मस्तिष्क तो सदर द्वात्र है और मेरुदंड तथा अन्य नाड़ियाँ क्रमशः सदर तार और शाखा तार हैं।

मस्तिष्क भेजा अर्थात् गुद्दी का पुंज है; इसके तीन भाग हैं, अर्थात् ( १ ) मस्तिष्क ख्रास जो खोपड़ी के ऊपरी अगले, मध्य और पिछले भागों में रहता है, ( २ ) छोटा मस्तिष्क जो खोपड़ी के निचले और पिछले भाग में रहता है, और ( ३ ) मेडुला ओबलंगेटा, जो मेरुदंड का चौड़ा आरंभ है और जो छोटे मस्तिष्क के भाग रहता है।

मस्तिष्क ग्राम या अस्ती मस्तिष्क मन के उस विभाग का अन्तर्गत है, जो बुद्धि-विषयक क्रियाओं में प्रकट होता है। छोटा मस्तिष्क ऐच्छिक मांसपेशियों की गतियों पर अधिकार रखता है। मेडुला ओबलंगेटा मेरुदंड का ऊपरी चौड़ा भाग है और उससे तथा छोटे मस्तिष्क से खोपड़ी की नाड़ियाँ निकलकर सिर के अनेक भागों में, इन्द्रियों में, गले और पेट के अवयवों तथा श्वास लेने के अवयवों में पहुँचती हैं।

मेरुदंड या रीढ़ की हड्डी की गुद्दी रीढ़ की भाड़ी में घरी रहती है। यह गुद्दी की एक लंबी डेरी है जिसमें से रीढ़ की हड्डी की गाँठों-गाँठों से शाखाएँ फूट-फूटकर उन नाड़ियों से जा मिलती हैं, जो शरीर के सब भागों में फैली हुई हैं। मेरुदंड टेन्नीकोन के एक मरार तार की भाँति है, और उसकी शाखाएँ उससे लगी हुई शाखा तारों की भाँति हैं।

सदानुमयी विभाग में दो प्रधान मूलभूत नाड़ी-गुच्छों की हैं, जो मेरुदंड के दोनों बाजों में अवस्थित हैं, और इनके अतिरिक्त

मिर, गर्दन, छाती और पेट के नाड़ी-गुच्छक भी इन्हीं में गयी हैं। नाड़ी-गुच्छक गुरी की एक छोटी डेरी होती है, जिसमें नाड़ी के देहाय रहते हैं। ये नाड़ी-गुच्छक एक दूसरे से संतुधों द्वारा जगाव रखते हैं, और इनका लगाव मस्तिष्क-मेरूद विभाग से भी चेगनावाहिनी और क्रियावाहिनी नादियों द्वारा है। इन्हीं नाड़ी-गुच्छकों से अनेक संतु निष्कल-निष्कलर शरीर और रुधिरवाहिनी नादियों आदि के अवयवों से जा मिलते हैं। बहुत-से स्थानों में ये नादियाँ एकत्रित हो जाया करती हैं और यहाँ नाड़ीग्रंथि (चक्र) बन जाती है। सहानुभवी विभाग अनिष्टापूर्वक प्रक्रियाओं पर शासन करता है, जैसे रुधिर-अंशालन, श्वास लेना और पाचन आदि।

जिम शक्ति या बल को मस्तिष्क इन नादियों द्वारा शरीर के सब अंगों में भेजता है, उसे परिचामी विज्ञानी "नाड़ी-बल" कहते हैं, यद्यपि योगी लोग उसे प्राण का विकास समझते हैं। प्रासियत और वेग में यह विजली की धारा के समान होता है। यह बात देखने में आवेगी कि बिना हम नाड़ी-बल के हृदय धड़क नहीं सकता, भिन्न-भिन्न अवयव अपनी क्रिया नहीं कर सकते; सब तो यह है कि बिना इसके शरीर-यंत्र बिलकुल निष्क्रिय हो जाता है, जब ये धातें क़्याल की आवेगी, तब प्राण के आकर्षण करने का महत्त्व सब पर विद्रित होगा; तथा हम स्वामविज्ञान की महिमा उससे भी अधिक होगी, जितना परिचामी विज्ञान अब कर रहा है।

इस नाड़ी-यंत्र के एक पटल में योगियों की शिखाएँ परिचामी विज्ञान से बहुत आगे बढ़ जाती हैं। हमारा अभिप्राय उस नाड़ी-ग्रंथि से है, जिसे परिचामी विज्ञान सौपेकेंद्र कहता है, और जिसे वह अन्य नाड़ी-ग्रंथियों में से केवल एक नाड़ी-ग्रंथि समझता है, जिसके गुच्छक शरीर के अनेक भागों में पाए जाते हैं। योगविज्ञान कहता है कि नाड़ी-ग्रंथि चतुर्ल नाड़ी-जाल में सर्व-प्रधान अंग है; यह एक प्रकार



का मस्तिष्क है, जो मानव शरीर में मुख्य कार्य करता है। पश्चिमी विज्ञान इसकी महिमा समझने की ओर थोड़ा-थोड़ा मुका जाता है, परंतु योगी लोग इसकी महिमा सैकड़ों वर्ष से समझे हुए हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इसे पेट का मस्तिष्क भी कहते हैं। यह सौर्यकेंद्र आमाशय के पीछे, उसके गढ़े के ठीक पीछे, मेरुदंड के दोनों ओर होता है। यह सक्तेद और भूरी गुदियों का बना हुआ उसी प्रकार का होता है, जैसी मनुष्य की और गुदियाँ हुआ करती हैं। इसका अधिकार मनुष्य के भीतरी सभी प्रधान अवयवों पर है; और जितना ख्याल किया जाता है, उससे कहीं अधिक बड़ा-बड़ा काम करता है। हम इस सौर्यकेंद्र के विषय में योगियों के विचार का सविस्तर वर्णन नहीं करेंगे; केवल हम इतना ही बतला देंगे कि यही प्राण का सदर भंडार है। इस स्थान पर चोट लगने से मनुष्य तुरंत मरते हुए जाने गए हैं। और पहलवान लोग इसकी मामूलीता को जानते हैं, इसलिये इस स्थान पर चोट पहुँचाकर अपने विपक्षी को थोड़े काज के लिये शक्तिहीन बना देते हैं।

इस ग्रंथि को जो "सौर्य" विशेषण दिया गया है, वह बहुत ही उपयुक्त है, क्योंकि प्राण का भंडार होने के कारण यह उसी प्रकार बल और शक्ति को फैलाता है, जैसे सूर्य प्रकाश और ताप आदि को फैलाता है। श्वास मस्तिष्क भी प्राण के लिये इसी का आश्रय करता है। देर या सबेर पश्चिमी विज्ञान भी इस सौर्यकेंद्र की क्रियाओं को समझने लगेगा और यह केंद्र पश्चिमी विज्ञान में महाशक्ति की उस पदवी को पावेगा, जो इस वर्तमान समय की पदवी से कहीं ऊँची होगी।

# इक्कीसवाँ अध्याय

## प्राण के अभ्यास

हम इस किताब के अन्य अध्यायों में आपको बतला आए हैं कि प्राण हवा, भोजन और पानी से प्राप्त किया जा सकता है। हमने स्वाम लेने, भोजन करने और जल के व्यवहार करने की सविस्तर शिक्षा दे दी है। अब हम विषय में कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। परंतु इस विषय को छोड़ देने के पहले हम हठयोग के कुछ ऊँचे मिष्टान्तों और अभ्यासों को आपको बतला देना अच्छा समझते हैं कि यह प्राण कैसे प्राप्त किया जाता है और कैसे वितरित किया जाता है। हमारा उद्देश तालयुक्त स्वाम में है, जो हठयोग के अभ्यासों की कुंजी है।

सभी वस्तुएँ पुराण अर्थात् कंप में हैं। छोटे-से-छोटे परमाणु से लेकर बड़े-से-बड़े सूर्य तक सभी पुराण की दशा में हैं। प्रकृति में कोई भी वस्तु नितांत स्थिर नहीं है। यदि अवेक्षा एक परमाणु भी कंप से होन हो जाय, तो सारी सृष्टि को विनष्ट कर दे। अनवरत पुराण में विरव का कार्य हो रहा है। द्रव्य के ऊपर शक्ति का प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणाम से अतृप्त रूप और असंख्य भेद उत्पन्न होते रहते हैं; परंतु ये रूप और भेद भी निश्च नहीं हैं। ज्यों ही वे बन जाते हैं, त्यों ही परिवर्तन होने लगता है और इनसे अतृप्त रूप उत्पन्न होते हैं, जो परिवर्तित होकर नए रूपों को प्रकाश करते हैं। इसी तरह से अमर अनेकता तक मिल-मिजा लग जाते हैं। इस रूप के भंगार में कोई वस्तु स्थिर नहीं है, परंतु तो भी मात्र सत्य परिवर्तन-हीन और निश्च है। रूप बंधन का प्रभाव

मात्र है—वे आते हैं और जाते हैं—परंतु असंख्यित नित्य और अविकारी है।

मानव शरीर के परमाणु अनवरत स्फुरण में हैं। अनंत परिवर्तन हुआ करते हैं। जिन द्रव्यों से आपका शरीर बना है, थोड़े ही दिनों में उनमें पूरा परिवर्तन हो जाता है; आपके शरीर में इस समय जितने परमाणु हैं, कुछ महीनों के पश्चात् शायद ही कोई उनमें से शेष रह जाय। स्फुरण, लगातार स्फुरण! परिवर्तन, लगातार परिवर्तन।

सब स्फुरण में एक ताल पाया जाता है। ताल विश्व में व्यापक है। ग्रहों के सूर्य के गिर्द घूमने, समुद्र के उभड़ने और दूबने, हृदय के धड़कने, ज्वार के उठने और भाटा के बैठने, सबमें ताल का नियम चरितार्थ होता है। सूर्य की किरणें हमारे पास आती हैं, वृष्टि होती है, सब उसी नियम के अनुसार। सब वृद्धि इसी नियम की प्रदर्शनी है। सब गति इसी ताल के नियम का प्रकाशन है।

हमारा शरीर ताल के नियम का वैसा ही वशवर्ती है, जैसा ग्रह का सूर्य के चारों ओर घूमना है। योग के श्वासविज्ञान का भीतरी और गूढ़ तत्व अधिकांश प्रकृति के इसी विदित नियम पर आधारित है। शरीर के ताल में मिलकर योगी बहुत अधिक प्राण आकर्षण कर सकता है, जिसको वह अपने अभीष्ट-साधन में लगाता है। आते चलकर इस विषय को हम अधिक विस्तार से कहेंगे।

यह हमारा शरीर एक छोटी खाकी की भाँति है, जो समुद्र से पृथ्वी में घुस गई हो। यद्यपि प्रकट में तो यह अपने ही नियमों के वशवर्ती है, परंतु वास्तव में यह समुद्र की ज्वार और भाटा के नियमों के आधीन है। जीवन का महासमुद्र उमड़ और पचक रहा है, उठता है और बैठता है, और हम लोग उसी के कंप और ताल के अनुगामी हो रहे हैं। स्वाभाविक दशा में हम जीवन के महा

मनुष्य के कंठ और मांस को ग्रहण कर लेने हैं और उसका अनुसरण करने हैं, परन्तु कर्मा-कर्मा आदी के मुद्दाने पर यही हुई मिट्टी आकर मुँह बंद कर देती है और हम मद्भाग्यवश की प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सक्ते तथा हमारे भीतर गदगद पैदा हो जाती है ।

आप लोगों ने सुना होगा कि येना बाजे पर एक घर यदि ठीक तालयुक्त बार-बार बजाया जाय, तो ऐसे कंठों को संचालित करेगा, जो किसी समय में एक पुल को दाह करके हैं । यही बात उस समय होती है, जब कोई पलटन पुल पार करने लगती है, तब संप्रदाय यह हुक्म दिया जाता है कि ज़रूर तोड़ दिया जाय ( अर्थात् उसके एक पैर साथ न टूटाए और रखने जायें ) नहीं तो ज़रूर का कंठ पुल और पलटन दोनों को नीचे गिरा दे । इस तालयुक्त गति के प्रभाव के उदाहरणों से आप भावना कर सकते हैं कि तालयुक्त श्वास का किन्ना प्रभाव शरीर पर पड़ सकता है । मारा शरीर कंठ को ग्रहण कर लेता है और आकांक्षा के सुर में मिल जाता है, जिससे फेफड़ों में तालयुक्त गति होने लगती है, और जब वह इस प्रकार सुर में मिल जाता है, तब आकांक्षा की आशाओं का तुरंत पालन करने लगता है । जब शरीर का सुर इस तरह ठीक हो जाय, तो अपनी आकांक्षा की आशा से शरीर के किसी भाग के रुधिर-संचालन को बढ़ाने में योगी को कठिनता नहीं होती । इसी प्रकार वह शरीर के किसी भाग में अधिक नाड़ीयल प्रवाहित कर सकता है, जिसमें शरीर को शक्ति और उत्तेजना मिले ।

इसी प्रकार तालयुक्त श्वास द्वारा योगी कंठ को मानो ग्रहण कर लेता है और अधिक परिमाण के प्राण पर अधिकार कर लेता है और उसे ग्रहण कर लेता है और तब वह उसकी इच्छा के अधीन हो जाता है । तब वह उसे साधन बना लेता है कि उसके द्वारा दूसरों के पास विचार भेज सकता है और उनको अपनी ओर आक-

पित्त कर सकता है, जिनके विचार उसी क्षण में बह रहे हैं। दूर से रोग दूर करने, विचार भेजने और प्रदण करने, मानसिक क्रियाओं से रोग दूर करने, मिसमेरिज़िम आदि के दूर, जो आजकल परिचित दुनिया में इसना कुतूहल उत्पन्न कर रहे हैं और जो बीमियों को सैकड़ों पाँ से विदित हैं, बहुत ही अधिक बढ़ाए जा सकते हैं, यदि विचार भेजनेवाला मनुष्य तालयुक्त श्वासक्रिया करने के परंपरा इन प्रयोगों को करे। तालयुक्त श्वास मानसिक और शैवस क्रियाओं द्वारा रोग आदि दूर करने में दूने से भी अधिक प्रभाव बढ़ा देगा।

तालयुक्त श्वासक्रिया में बसल यात ताल की भावना प्राप्त करना है। उन लोगों के लिये, जो संगीत से कुछ जानकारी रखते हैं, नपे-मुन्नी गिनती की भावना परिचित है। दूरतों के लिये पलटन के सिपायियों के तालयुक्त कदम “चारों, दहना; चारों, दहना; चारों, दहना; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार,” कुछ-कुछ भावना दे सकेंगे।

योगी अपनी ताल के समय को उस मात्रा के आधित रखता है, जो उसके दिज की धड़कन के अनुसार होता है। दिज की धड़कन भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न काल का अंतर देकर हुआ करती है; परंतु प्रायः मनुष्य के हृदय की धड़कन की मात्रा उत व्यक्ति के लिये तालयुक्त सॉय लेने में उपयुक्त हुआ करती है। अपनी नाड़ी पर हाथ रखकर अपने हृदय की स्वाभाविक धड़कन की मात्रा को निरिचय करो और तब गिनो—१, २, ३, ४, २, ६। १, २, ३, ४, २, ६। इत्यादि, जब तक ताल की भावना रह होकर तुम्हारे मन में अक्षिप्त न हो जाय। थोड़े आश्रय से ताल निरिचय हो जायगा कि त्रिगणे तुम आगामी से उगे दुरा मन्त्र। पारमिक दूरा में मनुष्य मः मात्रा में स्वाय भीतर स्थित है, परंतु आश्रय से वह उगे बहुत बड़ा सकता है।



काल को बढ़ा सकोगे और थोड़े ही दिनों में इनका काल १५ मात्रा तक हो सकेगा। इसके बढ़ाने में स्मरण रखना कि श्वास रोकने और दो श्वासों के बीच बिना श्वास के रहने की मात्रा श्वास और प्रश्वास की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

श्वास के समय बढ़ाने के लिये अपने को बहुत थका मत डालो, परंतु ताल प्राप्त करने के लिये जहाँ तक हो सके यत्न करो, क्योंकि यह श्वास की लंबाई की अपेक्षा अधिक प्रधान है। अभ्यास करते जाओ और यत्न में लगे रहो कि गति का नया-तुला कंप मालूम हो जाय और कंप की गति के ताल की सारे शरीर में वेदना अनुभव करने लगो। इसमें थोड़े अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता होगी, परंतु अपनी उन्नति पर जो सुख मालूम होगा, वह इस परिश्रम को आसान बना देगा। योगी बहुत ही संतोषी और धैर्यवान् मनुष्य होता है, और इन्हीं गुणों से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

### प्राण का उत्पन्न करना

भूमि या चारपाई पर चित पड़ जाओ, कुल शरीर को शिथिल कर दो, हाथ हल्के-हल्के सौर्यकेंद्र पर पड़े रहें, (जहाँ आमाशय का गड्ढा रहता है अर्थात् जहाँ से पसलियाँ पृथक् होने लगती हैं) तालयुक्त श्वास लो। जब ताल पूरी तरह से निश्चित हो जाय, यह आकांक्षा करो कि प्रत्येक श्वास प्राण-भंडार से अधिक प्राण या जीवत-शक्ति खींचे, जिसे नाड़ी-जाल ग्रहण करके सौर्यकेंद्र में संचित करे। प्रत्येक प्रश्वास के छोड़ते समय यह आकांक्षा करो कि प्राण या जीवत-शक्ति सारे शरीर में वितरित होवे, प्रत्येक अवयव और भाग प्रत्येक मांसपेशी, देहाणु और परमाणु, प्रत्येक नाड़ी, धमनी और शिरा, गिर की चोटी से लेकर पैर के अँगूठे तक में प्रत्येक नाड़ी को यत्नशक्ति उत्तेजना देगे, प्रत्येक नाड़ी-केंद्र को भरने, सारे शरीर में शक्तिवत्त और दृढ़ता पहुँचाता हुआ जा रहा है। जब

आकांक्षा का प्रयोग करो, तब भीतर आते हुए प्राण की मानसिक मूर्ति बना लो कि फेफड़े द्वारा आ रहा है और मीर्यकेंद्र द्वारा ग्रहण किया जा रहा है; और प्रश्वास के यान में सारे शरीर के कुल भागों में अँगुलियों के मिरों और पैर की अँगुलियों तक में जा रहा है। बड़े परिश्रम से आकांक्षा करना आवश्यक नहीं है; केवल जैसा तुम चाहते हो उसी की आज्ञा दो और उसकी मानसिक मूर्ति बना लो। मानसिक मूर्ति के संग-संग शांत आज्ञा बलपूर्वक इच्छा करने की अपेक्षा बेहतर है, क्योंकि बलपूर्वक इच्छा करने में शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है। ऊपर लिखी हुई कमरत बहुत ही लाभ देनेवाली है; और नाड़ीजाळ को साज्ञा और शक्तिमान् बना देती है, और सारे शरीर में विश्राम का भाव फैला देती है। यह उस जगह बहुत ही गुणकारी प्रतीत होता है, जहाँ मनुष्य थका है या शक्ति की कमी समझता है।

### रुधिर-संचालन का परिवर्तन करना

लेटकर या सीधे बैठे हुए तालयुक्त श्वास लो, और प्रश्वास छोड़ते समय जिस भाग में चाहो, उसी भाग में रुधिर-संचार को प्रेरित होने की आकांक्षा करो, यधूरे रुधिर-संचार के कारण कोई दुःख भोग रहा हो। यह क्रिया ठंडे पैर और मिर की पीड़ा की दशा में बहुत लाभ-दायक होती है; दोनों दशाओं में रुधिर नीचे की ओर संचालित किया जाता है, पहली दशा में तो पैर को गरम करने के लिये और दूसरी दशा में मिर के दबाव को हलका करने के लिये। ज्यों-ज्यों रुधिर का संचार नीचे आवेगा, त्यों-त्यों टोंगों में तुम गर्मी मालूम करने लगोगे। रुधिर-संचार अधिकांश आकांक्षा के अधिकार में होता है और ताल-युक्त श्वास कार्य को और भी आसान कर देती है।

### फिर प्राण भरना

यदि तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी जीवत-शक्ति पीण होती जाती



है और तुम्हें शीघ्र जीवट-शक्ति का संचय कर लेना आवश्यक है, तो सर्वोत्तम उपाय यह है कि दोनों पैरों को हकड़ा कर लो (एक दूसरे के बगल में) और दोनों हाथों की अँगुलियों को जैसे चाहो वैसे एक हाथ की अँगुलियों को दूसरे हाथ की अँगुलियों से ग्रंथि-रूप में बाँध लो। इससे मंडल बंद हो जाता है, और छोरों से प्राण का निकलना रुकता है। तब कई बार तालयुक्त श्वास लो और फिर प्राण से भर जाने का प्रभाव तुम्हें मालूम होने लगेगा।

### मस्तिष्क को उत्तेजित करना

नीचे लिखी हुई कसरत को, योगियों ने मस्तिष्क की क्रिया को उत्तेजित करने में, कि सोचना और विचारना स्पष्टता के साथ हुआ करे, बहुत लाभदायक पाया है। यह मस्तिष्क और नाड़ी-जाल के साक़ करने में आश्चर्यजनक प्रभाव रखती है; और जिन्हें मानसिक काम करना पड़ता है, वे इसे बहुत गुणकारी पावेंगे, जिसके द्वारा बेहतर मानसिक क्रिया भी होगी और कठिन मानसिक परिश्रम के बाद इसके द्वारा मन ताज़ा और स्वच्छ हो जायगा।

सीधे बैठो, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखो, आँखों को ठीक सामने रखो, हाथ टाँगों के ऊपरी भाग पर पड़े रहें। तालयुक्त श्वास लो, परंतु दोनों नथनों द्वारा श्वास लेने के स्थान पर, जैसा सामान्य श्वास में किया करते हो, बाएँ नथने को अँगूठे से बंद कर लो और केवल दहने नथने से श्वास भीतर खींचो। तब अँगूठा हटा लो और दहने नथने को अँगुली से बंद करो और तब बाएँ नथने से प्रश्वास बाहर निकाल दो। तब बिना अँगुलियों के बंद हो गए बाएँ नथने से श्वास खींचो, और अँगुली बढ़ाकर दहने से प्रश्वास छोड़ो। तब दहने से श्वास लो और बाएँ से श्वास छोड़ो, और इसी तरह से ऊपर लिखी हुई रीति से नथनों को बदलते जाओ, अग्रयुक्त नथने को अँगूठे या अँगुली से बंद किए

हो। यह योगियों का सबसे पुराना तरीका श्वास का है, और यह मुख्य और लाभदायक तरीका ग्रहण ही करने के योग्य है। परंतु परिचामी लोग हमों को योगियों की मारी योग-शिक्षा समझते हैं। हमने जानकर योगियों को हमी आ जाती है। परिचामी लोगों को योगियों की श्वासक्रिया को यही भावना होती है कि एक हिंदू सीधे बैठा है और श्वास लेने में कभी हम नघने से और कभी उस नघने से श्वास ले रहा है। "केवल इतना ही और कम।" हम आशा करते हैं कि हम किताब से परिचामी दुनिया की आँखें खुल जावेंगी और योगी के श्वास-क्रिया के महत्व और हमके प्रयोग के अनेक तरीकों को लोग समझ जायेंगे।

### योगियों की महती मानसिक श्वास-क्रिया

योगियों को एक प्रिय श्वासक्रिया मालूम है, जिसका वे कभी-कभी अभ्यास करते हैं, जिसका नाम एक सरल शब्द है, जिसका ऊपर दिया हुआ अर्थ है। हमने इसको ध्यान में रखा है, क्योंकि हममें शिष्यों की ओर से ऐसे अभ्यास की आवश्यकता है कि जिसमें लाख-पुनः श्वास और मानसिक कसरत दोनों हों और जिसे वह पढ़ने बर्तन की दुर्लभ कमरतों के द्वारा अब प्राप्त कर लिया होगा। हम महारबाय के मुख-तत्व को हम हम पुरानी हिंदू बहिरात द्वारा थोड़े से कह देने है कि "अथ यह योगी है, जो अपनी हड्डियों द्वारा श्वास लेता है।" हम बगल से आता शरीर-अंग प्राण से भर जायगा और शिष्य हम बगल से जब समाप्त करेगा, तो उसकी शरीर-हड्डि, जोमपेरी, काली, देहानु, देहानु, अवयव और भाग शक्तिमंजु और प्राण तथा श्वास के ताक के अंग में मान होकर निकलेंगे। यह शरीर-अंग को मात्र कर देनेवाली कमरत है और जो शिष्य इसका आवश्यकता से अभ्यास करता है, उसको मालूम होगा कि श्वास बगल से आता शरीर-मिष्ट गता है, जो तिर से खंडर रीर के हट्टे

तक ताज़ा ताज़ा बना हुआ है । हम आगे उस कमल को बिगड़ते हैं ।

( १ ) शरीर को शिथिल करके विश्रुद्ध आराम से पड़ जाओ ।

( २ ) ताजयुक्त स्थान को, जब तक ताज़ा ठीक न हो जाय ।

( ३ ) स्थान खींचते और प्रस्थान छोड़ते समय यह ध्यान करो कि स्थान टोंगों की हड्डियों में था रही है और उन्हीं में होकर निकल रही है ; तब भुजाओं की हड्डियों में, फिर आमाशय से, फिर जननेन्द्रिय के स्थान में ; तब मानो मेरुदण्ड से था और जा रही है ; तब मानो सॉस चमड़े के प्रत्येक छिद्र से खींची और प्रवाहित की जा रही है और सारा शरीर मानो प्राण और जीवन से भर रहा है ।

( ४ ) तब ताजयुक्त सॉस लेते हुए प्राण की धार साठों मर्म-स्थानों में पारी-पारी से भेजो, जैसा नीचे दिया जाता है, परंतु ऊपर लिखी हुई मानसिक कल्पना बनी रहे ।

( अ ) कलाट-प्रदेश में ।

( ब ) सिर के पिछले भाग में ।

( स ) मस्तिष्क के आधार में ।

( द ) सौर्यकेंद्र में ।

( ई ) पेट के नीचे के खोखले ( गुदाचक्र ) में ।

( फ ) नाभिप्रदेश में ।

( ज ) जननेन्द्रिय प्रदेश में ।

प्राण का प्रवाह सिर से पैर तक कई बार आगे-पीछे बढ़ाकर समाप्त कर दो ।

( ५ ) सक्ताईवाली क्रिया करके प्रथम कर दो ।

# वाईसवाँ अध्याय

## शिथिलीकरण विज्ञान

शरीर के शिथिल करने का विज्ञान दृढयोग शास्त्र का एक मुख्य अंग है और बहुत-से योगी इस विषय की हम शास्त्रा में बहुत अधिक जी लगाने और सावधानी रखते हैं। पहली दृष्टि में तो सामान्य पाठक को हम शिक्षा की भावना कि शरीर कैसे शिथिल किया जाय, कैसे विधाम किया जाय बड़ी हास्य-जनक होगी, क्योंकि उनके ज्ञानाल से प्रत्येक मनुष्य हम सीधी बात को जानता है।

सामान्य मनुष्य कुछ-कुछ सही भी है। प्रकृति हमें शरीर को शिथिल करना और पूरा विधाम करना सिखा देती है। इस विज्ञान में बड़ा आचार्य होता है। परंतु ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं, स्यों-स्यों कृत्रिम आदतें बहुत-सी धारण करते जाते हैं, और पहले की स्वाभाविक आदतों को लोप हो जाने देते हैं। इसलिये मनुष्यों को योगियों से हम विषय में शिक्षा प्राप्त करने की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

साधारण डॉक्टर भी मनुष्यों की इस विषय के मूल तत्त्वों को अनभिज्ञता की साड़ी से सज्ते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि नादों की बीमारियों में अधिकांश बीमारियाँ इस विधाम करने के विषय की अनभिज्ञता के कारण हुआ करती हैं।

विधाम और शरीर को शिथिल करना, ये बातें बहिर्ली और सुस्ती से बहुत ही भिन्न हैं। सच बात तो यह है कि जिन लोगों ने शरीर को शिथिल कर देने के विज्ञान को साध लिया है, वे प्रायः अत्यंत क्रियाशील और शक्तिमान् मनुष्य हो ग

हैं; वे शक्ति को व्यर्थ नहीं व्यय करते; वे प्रत्येक गति का हिसाब रखते हैं ।

अब शरीर के शिथिल करने के प्रयत्न पर विचार कीजिए और परममूर्ति का यत्न कीजिए कि इसका अर्थ क्या है । इसको अच्छी तरह से समझने के लिये पहले इसके विलोम “आकुंचन” पर विचार कर लीजिए । जब हम किसी मांसपेशी को आकुंचित किया चाहते हैं कि उससे कुछ काम लें, तो हम मस्तिष्क से वहाँ को प्रेरणा भेजते हैं, जिससे वहाँ कुछ अधिक प्राण भेजा जाता है और मांसपेशी आकुंचित हो जाती है । प्राण गतिसंचालिनी नाड़ी में होकर जाता है, मांसपेशी तक पहुँचता है और उसे अपने छोरों को बढोरने की प्रेरणा करता है, और इस तरह से उस अवयव या भाग पर, जिसे हम हिलाया चाहते हैं, जोर लगता है कि वह अवयव काम करे । यदि हम अपने कलम को स्याही में डुबोना चाहते हैं, तब हमारी आशंका किरारूप में इस प्रकार प्रकट होती है कि हमारा मस्तिष्क दाहिनी भुजा की कुछ निश्चित मांसपेशियों में, हाथ और अँगुलियों में प्राण की धार भेजता है, जिससे वे आकुंचित हो-होकर हमारे कलम को दावात तक ले जाते हैं, उसे उसमें डुबोते हैं, और फिर उसे कागज तक लाते हैं । यही बात हमारी प्रत्येक क्रियाओं में हुआ करती है, चाहे हम उसे जानें या न जानें । चेतना-सहित क्रियाओं में चेतना-शक्ति प्रवृत्ति-मानस को सृचना देती है, जो तत्काल आज्ञा का पालन करता है और अभीष्ट-स्थान पर प्राण की धार भेज देता है । चेतना-रहित क्रियाओं में प्रवृत्ति-मानस आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं करता, परंतु स्वयं आप कुछ काम पर लग जाता है; आज्ञा देना और उसे कर देना, दोनों काम अपने आप करता है । परंतु प्रत्येक क्रिया, चाहे चेतना-सहित हो या चेतना-रहित, प्राण की कुछ मात्रा प्राप्य करती है, और यदि प्राप्य

का परिमाण ठम परिमाण से अधिक हुआ जिस परिमाण में प्राण को मंचय करने का शरीर-मंत्र जारी हो रहा है, तो परिणाम यह होता है कि मनुष्य नियंत्र हो जाता है और नितांत थक जाता है। किसी विशेष मांसपेशी की थकावट भिन्न बात है और यह अनन्यस्य काम के करने से पैदा होती है, क्योंकि उसके आकुंचन करने में प्राण की शरमामूर्त्ती मात्रा खर्च हुई है।

यहाँ तक हमने शरीर के वास्तविक संचालन के विषय में, जो मांसपेशियों के आकुंचन द्वारा, प्राण की धार उधर प्रवाहित होने से होता है, कहा। एक और मार्ग भी प्राण के व्यय और मांसपेशी के ढीलने का है, जो हम लोगों में बहुतों को मालूम नहीं है। हमारे पाठकों में जो लोग शहरों में रहते हैं, वे हमारे अभिप्राय को समझ जायेंगे। जब हम प्राण के व्यय की उपमा पानी के उस व्यय से देंगे, जो नल्ल की टोंटी को गच्छी तरह न बंद करने से टपका करता है और व्यय हुआ करता है। यही बात हम लोगों में अधिकांग मनुष्य सर्वदा किया करते हैं। हम अपने प्राण को सर्वदा बहाया करते हैं, और मांसपेशी को छिड़ाया करते हैं और इस तरह से सारे शरीर-मंत्र को सिर से लेकर पाँव तक क्षीण कर देते हैं।

हमारे शिष्य लोग मनोविज्ञान की इस कड़ावत से निस्मदेह अभिज्ञ होंगे कि “विचार क्रिया का रूप धारण करता है”। जब कोई काम किया चाहते हैं, तो हमारी पहली प्रेरणा मांसपेशी की उस गति की धोर होती है, जो विचार से उत्पन्न कार्य के करने में आवश्यक होती है। परंतु दूसरे विचार के कारण हम पहली गति को करने में रुक सकते हैं, यदि हम दूसरे विचार से रोकना ही अभीष्ट जेचे। हम क्रोध के आवेश में चाकर किसी मनुष्य को मारने पर उतारु हो सकते हैं, जिसके ऊपर क्रोध उत्पन्न हुआ हो। ज्यों



उन्हें रोकने के प्रयत्न का रियाज अक्सर आदत बन जाता है—  
पुरानी आदत हो जाता है—और ऐसे मनुष्यों की नारियो और  
मांसपेशियाँ सर्वदा तनाव में रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता  
है कि जोड़, प्राण और सारे शरीर की लगातार छीजन हुआ करती  
है। ऐसे मनुष्यों की बहुत-सी मांसपेशियाँ सर्वदा तनी हुई दशा में  
रहती हैं, जिसका यह मतलब है कि लगातार प्राण की धार उस  
घोर बढ़ा करती है और नादियाँ सदा प्राण पहुँचाने के काम में लगी  
रहती हैं। हमको एक जेक बुद्धिया का कथा याद है, जो रेल पर  
सवार किसी पाम के नगर को जा रही थी। उसको वहाँ पहुँचने की  
इतनी लुगी थी और इतनी आतुर हो गई थी कि वह अपनी बेंचक  
पर गिर बैठ न सकनी थी। इसके विपरीत वह बेंचक के किनारे पर  
बैठी थी, और उसका शरीर आगे की ओर मुका हुआ था, यही दशा  
कुछ १६ मील की यात्रा में रही। उसका मन मानो ट्रेन को आगे  
बढ़ने के लिये उत्तेजित कर रहा था। इस बुद्धी औरत के प्रयासात  
यात्रा के अंत के लिये इतने जोर के थे कि प्रयासात ने क्रिया का  
प्रत्यक्ष रूप धारण कर लिया था; और उसको जो शरीर को डीखा  
करके रक्ता था, उसके स्थान पर उसकी मांसपेशियाँ आकुंचित हो  
रही थीं। हम लोगों में से बहुत-से मनुष्य उर्दी बुद्धिया की भाँति के  
हैं; जब हम किसी चीज़ को देखने लगते हैं, तो आतुर होकर सारे  
शरीर पर तनाव डाल देते हैं। और एक-एक तरह से सर्वदा  
अपनी बहुत-सी मांसपेशियों पर तनाव डाले रहते हैं। हम जोर से  
मुद्दियाँ चींचते हैं, नाक-भी खोलते हैं, कमर खरने कोटों को बंद  
करते हैं, कोटों को हॉल से बाटने हैं, या अपने हॉलों को सीमने हैं  
या ऐसी ही अन्य काम करते हैं, जिससे मानसिक दशा क्रियाओं में  
प्रसर होती है। यह सब प्राण का व्यर्थ व्यव करना है। इसी तरह  
की बुरी वे आदतें भी हैं, जिससे मनुष्य बड़े ही होशकी बजाये का हाथ



फेरा करता है, घँगूला घुमाया करता है, घँगुलियों नचाया करता है, पैर की घँगुलियों से जमीन ठोका करता है, मुँह धवाया करता है, तिनके तोड़ा करता है, दाँत में पेंसिल काटा करता है, धरने शरीर के किसी अवयव को हिलाया करता है और झूमा करता है। ये बातें और ऐसी ही अनेक बातें प्राण का ध्यर्थ व्यय करने-वाली हैं।

अप मांसपेशियों के आकुंचन के विषय में हम कुछ-कुछ समझने लगे हैं, इसलिये अब फिर शरीर के शिथिल करने के विषय पर चलिए।

शिथिल किए हुए थंग में प्राण की धार का प्रवाह नहीं होता। बहुत थोड़ा-थोड़ा प्राण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में स्वास्थ्य की दशा में संचार करता है कि जिससे स्वाभाविक स्थिति बनी रहे, परंतु यह धार उम्र धार की अपेक्षा जो आकुंचन में प्रवाहित की जाती है, बहुत हीन हुआ करती है। शिथिल होने में मांसपेशियाँ और नाडियाँ विश्राम की दशा में रहती हैं; और प्राण, व्यर्थ बर्बाद होने के स्थान पर संचित हुआ करता है। यह शिथिलीकरण बच्चों और जानवरों में शीघ्र से देखा जा सकता है। कुछ युवा लोगों में भी पाया जाता है; आप ख्याल करेंगे कि ऐसे युवा धैर्य, शक्ति, बल और जीवट में अन्यो की अपेक्षा अधिक हुआ करते हैं। काहिल आदमी शिथिलीकरण का उदाहरण नहीं है। शिथिलीकरण और काहिली में बड़ा फर्क है। शिथिलीकरण उद्यम के बीच में विश्राम है, जिसका परिणाम यह होता है कि बेहतर काम और थोड़े प्रयत्न से होता है। काहिली उद्यम से जी पुराना है और इस ख्याल का परिणाम अकर्मण्यता होती है।

जो मनुष्य शिथिलीकरण धर्मात् शक्तिसंचय को समझता और व्यवहार में लाता है, वह सबसे धन्य काम करता है। वह एक सेर

मयल से एक सेर का काम लेता है, और वह अपनी शक्ति बर्बाद नहीं करता, न बिगादना और न उसे बहाया करता है। सामान्य मनुष्य, जो इस नियम को नहीं समझता, तिगुनी से लेकर पचीसगुनी तक आवश्यकता से अधिक शक्ति उसी काम में खर्च कर देता है, चाहे वह काम शारीरिक हो या मानसिक। यदि आपको इस बात में संदेह हो, तो तिनमें आपकी संगति हो जाय, उन्हें शीघ्र से देखिए कि वे कितनी व्यर्थ गतिर्यो करते हैं। मानसिक भावों में वे अपने ताबे नहीं रहतीं, जिसका परिणाम शारीरिक अतिव्यय होता है।

योग के गुरु लोग अपने शिष्यों को भारतवर्ष में किताब द्वारा शिक्षा नहीं देते, किंतु, बाणी द्वारा शिक्षा देते हैं। वे प्रकृति और उदाहरण से बहुत-सा वस्तुपाठ पढ़ाने हैं, जिसमें शिष्य के हृदय में टोक भाव बैठ जाय। इटयोग के गुरु जब शिक्षिलीकरण का पाठ पढ़ाने लगते हैं, तो वे अपने शिष्यों के ध्यान को बिह्वी या उसी की जाति के तेंदुआ, चीता आदि की ओर आकर्षित करते हैं, क्योंकि ये जानवर वहाँ के जंगलों में अधिकता से पाए जाते हैं।

आपने कभी बिह्वी को विध्राम करते देखा है? कभी उसे चूहे के बिल के पास छपके हुए देखा है? पिछली सूरत में आपने शीघ्र किया है कि कैसे आराम से सुंदर स्थिति में वह छपकी रहती है—न तो मांसपेशियों का आकुंचन है न तनाव है—अत्यंत शक्ति विध्राम कर रही है, परंतु तुरंत हमला करने के लिये तैयार है। स्थिर और गतिहीन वह पकी रहती है; प्रगट वह मोड़ें हुई या मरी जड़र आती है। परंतु देखने रहिए, जब समय आता है, वह बिजली के समान झपटती है। बिह्वी का विध्राम यद्यपि गति और मांसपेशियों के तनाव से विहीन था, पर तो भी वह अविन विध्राम था—बाहिली से बिजबुज ही भिन्न बात थी। परंतु बाँपती हुई मांसपेशियों, तनी हुई नाड़ियों और पसीने के बूँदों के अभाव को

स्मरण कर लो। क्रिया के चंद्र प्रतीका ही में नहीं ताने गए हैं। व्यर्थ की हरकत और सनाव नहीं है; सब चीजें तैयार हैं, और ज्यों ही क्रिया का अवसर उपस्थित होता है, त्यों ही मास ताज़ी मांसपेशियों और विभ्रान्त नाड़ियों में भेज दिए जाते हैं, और हादे के साथ-ही-साथ चिड़ली की फल की चिनगारियों की भाँति क्रिया प्रकट हो जाती है।

हठयोगी, जो सौंदर्य, जीवट और विभ्राम में विस्त्रियों का उदाहरण देते हैं, वह बहुत ही अच्छा उदाहरण है।

वास्तव में, जब तक शिथिल करने की योग्यता न होगी, सब तक सेज़ी की और झूय प्रभाव की क्रिया न होगी। वे मनुष्य जो चंचल रहा करते हैं, कनमनाया करते हैं और जोरा में रहते हैं, और नीचे-ऊँचे पैर पटक करते हैं, सर्वोत्तम काम करनेवाले नहीं होते; वे क्रिया का समय आने के पहले ही अपने को थका देते हैं। जिस मनुष्य का भरोसा किया जा सकता है, वह वह मनुष्य है, जो शांति, शिथिलीकरण की योग्यता और विभ्राम रखता है। परंतु चंचल मनुष्य को निराश न होना चाहिए। शिथिलीकरण और विभ्राम उसी प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे अन्य गुण प्राप्त हुआ करते हैं।

अगले अध्याय में हम कुछ सरल शिक्षाएँ उन लोगों के लिये देंगे, जो शिथिलीकरण विज्ञान का क्रियात्मक ज्ञान चाहते हैं।

### शिथिलीकरण के नियम

विचार क्रिया में प्रगट होते हैं, और क्रियाओं का प्रभाव मानस पर पड़ता है। ये दोनों सब बातें साथ-साथ रहती हैं। इसमें शान्त उतनी ही सच्ची है, जितनी दुःख योगों शरीर पर पड़ने के विषय में बहुत। मूत्रवा बालीर,

प्रभाव मन और मानसिक दशाओं पर भी पड़ता है। शिथिलीकरण के प्रश्न पर विचार करने में इन दोनों तथ्यों को स्मरण रखना चाहिए।

मांसपेशियों के आकुंचन का अनेकों हानिकारी और मूर्खता की क्रियाएँ और आमतौर पर हम कारण से होता है कि मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रिया का रूप धारण किया करती हैं। और इसके विपरीत, हमारी बहुत-सी मानसिक दशाएँ हमारी शारीरिक अवस्थानियों आदि के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो यह जोश बँधी हुई मुट्टियों के शारीरिक रूप में प्रकट होता है। और इसके विपरीत यदि हम मुट्टियाँ बाँधने, नाक-भँई निकोदने, आँठ काटने आदि की आदतें पैदा करें, तो हम अपने मानस का भी ऐसी दशा में ला देंगे कि तनिक-सा कारण पाने पर भी वह मोथ के आवेग में पड़ जायगा। अगर लोग जानते हैं कि आँखों और आँठों पर मुस्किराहट की क्रिया आकर उम्रें थोड़ी देर तक शायद रहने से आपकी वरचमुच मुस्किराहट आ जाती है।

मांसपेशियों के आकुंचन ऐसी हानिकारी क्रिया और हमने प्यारे प्राण के व्यय और नादियों की लाज्ज होकर के लिये पड़ना यह यह है कि शांति और विश्राम का मानसिक स्थिति पैदा की जाय। यह पैदा की जा सकती है, पर पहले यह बड़ा कठिन काम होगा। परन्तु यदि आप इसमें लग जायेंगे, तो अपने परिश्रम का पूरा मूल्य पा जायेंगे। मोथ और बिदबिदापन को दूर करने से मानसिक स्वास्थ्य और विश्राम पैदा हो सकते हैं। बिदबिदापन और मोथ का मूल कारण भय हुआ करता है, परन्तु चूँकि हम भय और बिदबिदापन ही को शारीरिक आत्मिक दशा मानने से काटी है, इसलिए हम इन्हें ऐसा ही समझकर बर्ताव करते। योगा बचपन ही से मोथ और बिदबिदापन दूर करने का

आपनाम करता है, और परिणाम यह होता है कि जब उसकी कुछ शक्तियाँ जग जाती हैं, तब भी वह निगाह ओमहीन और शांत बना रहता है और शक्ति तथा बल का रूप दिखाई देता है। वह वैसा ही भाग उठाए करता है, जैसा परांग, समुद्र आदि में गुप्त शक्ति के भाग उत्पन्न हुआ करते हैं। उसके निश्चिंत जाने पर मान्य होता है कि वहाँ बहुत शक्ति और बल पूर्ण विश्राम में हैं। योगी क्रोध को बहुत नीच मनोविकार समझता है, जो नीच जंतुओं और बहरी मनुष्यों में पाया जाता है, परंतु विरहित मनुष्य के तो अत्यंत प्रतिकूल है। वह इसे तात्कालीन उन्माद समझता है, और उस मनुष्य पर रहम गाता है, जो अपने मनःशासन को खोकर क्रोध के आवेग में आ जाता है। वह जानता है कि इसमें कुछ भी काम नहीं निश्चयता और यह शक्ति की व्यर्थ बर्बादी और मस्तिष्क तथा नाड़ी-यंत्र के लिये प्राणच हानिकारक है। इस बात के कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि यह धार्मिक प्रकृति और आध्यात्मिक उन्नति को निर्वह करनेवाला तो है ही। इससे यह न समझना चाहिए कि योगी भी मनुष्य और बिना बीरता के होता है। इसके विपरीत वह तो भय को कुछ समझता ही नहीं है, उसकी शांति शक्ति की द्योतक है न कि निर्बलता की। आपने कभी गौर किया है कि बड़े बलवाले मनुष्य धमंड और धमकियों से परे रहते हैं, इन्हें वे उन लोगों के लिये छोड़ देते हैं, जो निर्बल तो हैं, पर बातों से अपने को बलवान् दिखाना चाहते हैं। योगी अपनी मानसिक स्थिति से चिड़चिड़ापन को भी निर्मूल करता है। वह समझ गया है कि यह शक्ति के नाश करने की मूल्यता है, जो कभी लाभ नहीं करती और सर्वदा हानि पहुँचाती है। जब किसी विचार योग्य बात पर विचार करना या कठिनाई का दमन करना होता है, तब तो वह गंभीर विचार में लग जाता है, परंतु चिड़चिड़ापन में कभी नहीं गिरता। वह समझता है कि शक्ति

और तनि की बर्बादी समझना है, और इसे विक्षिप्त मनुष्य के उपयोग समझना है। यह अपनी प्रकृति और शक्तियों को इतना समझना है कि वह भुँकलाइट में नहीं पड़ता। उसने शनैः-शनैः अपने को इस बला में बचा लिया है, और अपने शिष्यों को यह उपदेश देना है कि क्रोध और भुँकलाइट से छुटकारा पाना असली योग का प्रथम चरण है।

नीच वृत्तियों और मनोविकारों का दमन करना यद्यपि योगशास्त्र की दूसरी शाखाओं का काम है, पर इसका सीधा संबंध शिथिलीकरण के प्रश्न से है, क्योंकि यह स्पष्ट यात है कि जो मनुष्य क्रोध और भुँकलाइट से पृथक् रहने का अभ्यस्त है, वह अनिच्छापूर्व मांसपेशियों के आकुंचन और नाड़ी की बर्बादी से परे है। क्रोध के आवेग में आए हुए मनुष्य की मांसपेशियाँ मस्तिष्क से निकली हुई अनिच्छापूर्व और प्रेरणाओं के कारण तनाव पर होती हैं। जो मनुष्य सर्वदा भुँकलाइट का लयादा ओढ़े रहता है, वह लगातार नाड़ियों के तनाव और मांसपेशियों के आकुंचन में रहता है। इसलिये यह पुरत ध्यान में आवेगा कि जब कोई इन निर्बलकारी मनोविकारों से छुटकारा पाना है, तब वह मांसपेशियों के आकुंचन से भी अपेक्षाकृत छुटकारा पा जाता है, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है। यदि आप इस बर्बादी की स्वानि से छुटकारा चाहते हैं, तो उन नीच मनोविकारों से दूर हजिए, जिनमें यह उत्पन्न हुई है।

इसके विपरीत शिथिलीकरण के अभ्यास से, मांसपेशियों की तनाव की दशा के निवारण करने से इसका प्रभाव मन पर भी पड़ेगा और यह मन को स्वाभाविक साम्य और विधाम में रखेगा। यह ऐसा निधम, जो दोनों ओर काम करता है।

शरीर के शिथिल करने की पहली शिष्टा जो योगी लोग अपने शिष्यों को देने हैं, आगे लिखी जाती है। उसके प्रारंभ करने के पहले

हम अपने शिष्यों के मन पर यह बात अंकित कर दिया चाहते हैं कि "ढील दो" यही शिथिलीकरण का मूल मंत्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायेंगे और इनका अभ्यास करेंगे, तो आपको इस शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रचार और अभ्यास का गूढ़ तत्त्व अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा। शरीर के शिथिल करने में नीचे लिखा हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित्त पड़ जाओ, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अवयवों को ढील दो। इसी प्रकार ढीले रहने पर अपने मन को सारे शरीर में गिरने से रोक की श्रृंगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं-कहीं कुछ मांसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी ढील दो।

यदि आप इसको अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास में दिन-पर-दिन वृद्धि होती जायगी) तो अंत में आपके शरीर की सब मांसपेशियाँ पूरी तरह से शिथिल हो जावेंगी और नाडियाँ पूरे विश्राम में हो जावेंगी। कुछ गहरी साँसें लो, और तब तक शांत और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक बगल में घूम जाओ और फिर अच्छी तरह ढीले हो जाओ। फिर दूसरे बगल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परंतु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करने जाओ और अंत में सफल हो जाओगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो, तब यह कल्पना करो कि तुम नरम, मुलायम गाँदे पर पड़े हो और तुम्हारे शरीर और अवयव सीसा की भाँति भारी हैं। मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक जपते जाओ कि "सीसे की भाँति भारी, सीसे की भाँति भारी", साथ-ही-साथ भुजाओं को उठाकर उनमें से तनाव निकालकर प्राण खींच लो कि जिससे वे अपने ही भार से बगल में गिर पड़ें। पहले यह बात बहुत मनुष्यों के लिये बर्

कटित होती है। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार से नहीं गिरने दे सकने, क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें जड़-सी गई रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय, तब टोंगों पर पड़ले एक-एक करके फिर माथ-ही-माथ दोनों टोंगों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार से गिर जाने दो और पूरा शिथिल रहने दो। प्रयोगों के बीच में विश्राम कर लो, और इस कम-रक के करने समय उद्योगी मत बनो, क्योंकि भावना तो विश्राम देने और माथ-ही-माथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब फिर को उठाओ और उसे भी अपने ही भार से गिर जाने दो। तब फिर पड़े पड़े यह बतलाना करो कि शरीर का सारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रही है। इस बात पर तुम हँसोगे कि जब तुम सेंटे हो, तो शरीर के सारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है, पर तुम शकतो में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को बिम्बी-बिम्बी मांसपेशी को सानकर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। हमको बंद करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उलने ही मूर्ख हो, जितना बड़ बूढ़ी औरत थी, जो गार्डी में अपने घटके के छोर पर घड़ी थी और गार्डी को जागे बढ़ने में उल्लेखना देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये सोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने सारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें संदेह हो, तो जहाँ बच्चा सोता रहा हो, वही बिस्तर को देखो, वहाँ बच्चे के शरीर के हवाय के बिन्दु मालूम हों—उसके लम्बे शरीर के हवाय। यदि इस पूरे शिथिलीकरण के भाव को न प्रत्यक्ष कर सको तो, इस बात से तुम्हें महाप्रताप मिलेगी कि बतलाना करो कि तुम भीगे बचड़े की भीत टोखे हो गए हो—फिर से दूर लक टोखे हो गए हो—और बिना लज्जित लबाब का बच्चा के बड़े हो। सोते हो



हम अपने शिष्यों के मन पर यह बात अंकित कर दिया चाहते हैं कि “ढील दो” यही शिथिलीकरण का मूल मंत्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायेंगे और इनका अभ्यास करेंगे, तो आपको हम शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रकार और अभ्यास का गूढ़ तत्त्व अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा।

शरीर के शिथिल करने में नीचे लिखा हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित पड़ जाओ, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अवयवों को ढील दो। इसी प्रकार ढोलें रहने पर अपने मन को सारे शरीर से सिर से पैर की अँगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं-कहीं कुछ मांसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी ढील दो।

यदि आप इसको अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास से दिन-पर-दिन उत्पत्ति होती जायगी) तो अंत में आपके शरीर की सब मांसपेशियाँ पूरी तरह से शिथिल हो जावेंगी और नाडियाँ पूरे विश्राम में हो जावेंगी। कुछ गहरी साँसें लो, और तब तक शांत और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक बगल में घूम जाओ और फिर अच्छी तरह ढीले हो जाओ। फिर दूसरे बगल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परंतु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करते जाओ और अंत में सफल हो जाओगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो, तब यह कल्पना करो कि

‘‘यम गते पर

पड़े हो और तुम्हारे शरीर और मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक भारी, सीसे की मूर्ति भारी”, से तनाव निकालकर प्राण से बगल में गिर पड़ें।

घटित होना है। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार में नहीं गिरने दे सकते, क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें बद्ध-भी गई रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय, तब दोनों पर पहले एक-एक करके फिर साथ-ही-साथ दोनों दोनों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार में गिर जाने दो और पूरा स्थिर रहने दो। प्रयोगों के बीच में विश्राम कर लो, और इस कसरत के करने समय उद्योगी मत बनो, क्योंकि भावना तो विश्राम देने और साथ-ही-साथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब फिर दो उदाहरो और उन्हे भी अपने ही भार में गिर जाने दो। तब फिर पड़े पड़े यह कल्पना करो कि शरीर का सारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रहा है। इस ध्यान पर तुम हँसोगे कि जब तुम लेटे हो, तो शरीर के सारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है; पर तुम शक्ति में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को किसी-किसी मांसपेशी को तानकर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। इसको बद करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उठने ही मूर्ख हो, जितना वह बूढ़ी औरत थी, जो गाड़ी में अपने बैठके के छोर पर बैठी थी और गाड़ी को आगे बढ़ने में उत्तेजना देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये सोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने सारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें संदेह हो, तो जहाँ बच्चा सोता रहा हो, वहाँ विस्तर को देखो, वहाँ बच्चे के शरीर के दबाव के मालूम देंगे—उसके नन्हे शरीर के दबाव के भाव को न ग्रहण कर लियेगी कि कल्पना करो कि मे पैर तक हीचे हो । हो । थोड़े ही

अभ्यास से तुम्हें बहुत जल्द आरचयं मालूम होगा और तुम इस विधाम की कमरत से बहुत ताज़ा होकर उठोगे और अपने कामों को अच्छी तरह से करने की सामर्थ्य तुममें प्रतीत होगी ।

शिथिलीकरण के विषय में और भी अनेक कथनें हैं, शिष्ट हठयोगी अभ्यास करते और शिष्यों को सिखाते हैं, नीचे विषो हुई कथनें उनमें मयमे अच्छी हैं—

( १ ) हाथ में से सब प्राण लींच लो, मोचनेवालों को डोका छोड़ दो, जिससे हाथ ढाले पड़कर निर्वीच की भाँति कड़ाई से झुजने लगें । कड़ाई से इसे भागे पीछे दिशाओं । तब दूसरे हाथ पर उसी तरह प्रयोग करो । फिर दोनों हाथों पर साथ ही प्रयोग करो । थोड़े अभ्यास से ठीक सावना मिल जायगी ।

( २ ) यह पहली की अपेक्षा अधिक कठिन है । इसमें अँगुलियों की शिथिल और ढीला करना होता है और हाँडों की दिशा होता है, पहले एक हाथ की अँगुलियों पर परीक्षा करो, तब दूसरे हाथ की और फिर दोनों हाथों की ।

( ३ ) भुजाओं में से सब प्राण लींच लो और उन्हें जल में डीला खटकने दो । तब शरीर को एक वाज से दूसरी वाज की मुखाओं जिनमें भुजाएँ भी अँगारने की इच्छा करी को ताव केवल शरीर की शक्ति के कारण झुके, भुजाओं में शक्ति भी बलवत् प्रकाश हो । पहले एक भुजा, तब दूसरी और फिर दोनों । इस अभ्यास को शरीर को खड़े होने से गुमा गुमाकर कर सकते हैं कि जिसमें भुजाएँ हीची काटनी हैं । यदि आप अँगारने की इच्छा करी पर अभ्यास करेंगे, तो आपकी इसकी सावना हो जायगी ।

के आकुंचन को रोको । कलाई को ढीला करके मुलाधो । पहले एक को, तब दूसरी को और फिर दोनों को ।

( १ ) पैर को पूरी तरह से ढीला करके घुटी से मुलाधो । इसमें थोड़े अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि पैर को हिलानेवाली मांसपेशियाँ थोड़ी बहुत आकुंचित रहती हैं । परंतु इसके बाद पैर, जब उसका वह व्यवहार नहीं करता रहता है, तब अपनी तरह ढीला रहता है । पहले एक पैर, तब दूसरा और फिर दोनों ।

( २ ) टोंग को, उसमें का सब प्राण खींचकर, ढीला करो और उंगलें घुटनों से छटकने दो । तब उंगलें मुलाधो और हिलाधो । पहले एक टोंग तब दूसरी ।

( ३ ) किसी गद्दे, तिसाई या चर्बी बिताव पर खड़े हो, और एक टोंग को ढीला कर औंध से छटकने और मूछने दो । पहले एक टोंग और तब दूसरी ।

( ४ ) भुजाओं को सीधा गिर के ऊपर उठाओ और तब उनमें से सब प्राण खींचकर उन्हें अपने ही भार से बालों में गिर जाने दो ।

( ५ ) घुटने को अपने बागें जहाँ तक ऊँचा उठा रखने दो, उठाओ और तब उसमें के सब प्राण बंद खींचकर इसे अपने ही भार से गिर जाने दो ।

( ६ ) गिर के ढीला करो और उसे बागें गिर जाने दो और तब हाँस में शक्ति देकर उंगलें मुलाधो, तब एक कुर्सी पर सीधे खटक-कर बैठो, गिर के ढीला करो और उंगलें सीधे खटक जाने दो । अबो ही वसमें का प्राण खींच लो, लो हाँस कर किसी और खटक आकर । इसकी सही आधुनिक प्राण बंधने के विधि किसी डॉक्टर ने पूरा अनुभव का बकाया है, जो कि उंगलें ही बिना के बंदीभूत हो जाना है और ढीला

पड़ जाता है तथा गर्दन के आकुंचन को बंद कर देता है, त्यों ही अपने गिर को आगे गिर जाने देता है ।

( ११ ) कंधों और छाती की मांसपेशियों को ढीली कर दो, जिससे कि छाती का ऊपरी भाग ढीला होकर आगे की ओर गिर जाय ।

( १२ ) कुर्सी पर बैठकर कमर की मांसपेशियों को ढीला करो, जिससे शरीर का ऊपरी भाग आगे को उस प्रकार गिर जायगा, जैसे उस लड़के का शरीर गिर जाता है, जो कुर्सी ही पर बैठे-बैठे सो गया हो ।

( १३ ) जो मनुष्य इन कसरतों को यहाँ तक सिद्ध कर ले, वह यदि चाहे, तो अपने सारे शरीर को गर्दन से लेकर घुटनों तक ढीला कर सकता है; तब वह भूमि पर डेर-सा गिर जायगा । यह एक बड़ा भारी गुण, अकस्मात् गिर जाने की दशा में है । इस सारे शरीर को ढीला कर देने का अभ्यास मनुष्य को चोट से बचाने में बड़ा काम देगा । तुम ध्यानाल करोगे कि जब छोटा बच्चा गिरता है, तो वह इसी प्रकार ढील देता है, जिसमें उसे बड़े मनुष्यों की अपेक्षा, जिनकी मोंच आ जाता है या जिनके अवयव टूट जाते हैं, बहुत ही कम चोट भाती है । यही दृश्य नशे में मतवाले हुए मनुष्यों में देखने में आता है, जिनका वश मांसपेशियों पर नहीं रहता, इसलिये मांसपेशियाँ ढीली हो जाया करती हैं । जब ये गिरते हैं, तब मांस की डेरी-सा गिर पड़ते हैं और बहुत कम चोट पाते हैं ।

इन कसरतों के अभ्यास में प्रत्येक को कई बार कर लो, तब दूसरी को शुरू करो । ये कसरतें बहुत बढ़ाई जा सकती हैं और कई प्रकार की तथा शिष्य की बुद्धि के अनुसार भी बनाई जा सकती हैं । अगर चाहो तो तुम्हीं अपनी नई कसरत रच लो, पर ऊपर दी हुई बातों का ध्यान रचना ।

त्रिपिंडीकरण के अभ्यास करने से शरीर को अधिकार में लाने

और विधाम करने का अनुभव होता है, जो एक बड़ी लाभदायक बात है। जब योगियों के शिथिलीकरण विचार का इयाल करने लगे, तब "विधाम में शक्ति" की भावना किए रहो। यह अत्यंत धकी हुई नाड़ियों को बहुत लाभ पहुँचाता है, यह शरीर की उस जकड़न को छुड़ाने का उपाय है, जो एक ही समुदाय की मांसपेशियों को भरनी जाँविका के लिये काम में जाने रहने से पैदा हो जाती है और इच्छानुसार विधाम करने के द्वारा थोड़े ही अमें में जीवत-लाभ करने का सरल उपाय है। पूर्वीय लोग इस शिथिलीकरण के विज्ञान को प्रायः जानते हैं और इसका व्यवहार प्रतिदिन के जीवन में करते हैं। वे ऐसी-ऐसी यात्रा पर चल खड़े होते हैं, जिनसे पश्चिमी लोग भयभीत हो जावेंगे। ये लोग बहुत मील चलकर एक जगह ठहर जाते हैं; वहाँ ये लेट जाने हैं; प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर देने हैं और सब इच्छानुवर्ती मांसपेशियों से प्राण खींच लेते हैं, जिससे मिर से पैर तक शरीर ढीला और प्रकट निर्जीव-सा हो जाता है। यदि संभव होता है, तो थोड़ी नींद भी ले लेते हैं, यदि नहीं तो जागते ही रहते हैं, पर मांसपेशियों को ऊपर लिखे अनुसार बना लेते हैं। इस प्रकार का एक घंटे का विधाम सामान्य मनुष्यों के एक रात्रि के विधाम के बराबर या उससे अधिक होता है। वे फिर साजे होकर नए जीवन और नई शक्ति के साथ अपनी यात्रा शुरू करते हैं। तमाम घूमनेवाले क्रिज और जानिरी इस ज्ञान को प्राप्त किए होती हैं। यह स्वाभाविक रीति से अमेरिकन, इंडियन, अरब, आफ्रिका के बहरी और सारे संसार के बहशियों में पाया जाता है। सम्य मनुष्य ने इस गुण को लुप्त हो जाने दिया है, क्योंकि जब यह वैदिक तंत्री यात्रा नहीं करता; परंतु यदि सम्य मनुष्य इस गुण को फिर भी प्राप्त कर लेता, तो इसके काम के जीवन की बहावत गूर होने में बहुत कुछ सहायता मिल जाता।

## अँगराई लेना

अँगराई लेना विधाम करने का दूसरा तरीका है, जिसे योगी लोग काम में लाते हैं। पहली रहि में तो यह शिथिलीकरण का उलटा मान्य देता है; परंतु वास्तव में यह भी उसी का भाई है, क्योंकि यह उन मांसपेशियों से तनाव र्थांच लेता है, जो आदत ही से चाफुंचित रहा करते हैं, और उनके द्वारा शरीर-यंत्र के सब भागों में प्राण भेजकर प्राणसाम्य कर देता है, जिससे सारे शरीर को लाभ पहुँचता है। प्रकृति हमें जमुहाई और अँगराई लेने को उस समय विवश कर देती है, जब हम थक जाते हैं। हमकी प्रकृति की किताय से पाठ सीखना चाहिए। हमको इच्छापूर्वक और अनिच्छापूर्व अँगराई लेना सीखना चाहिए। आप जितना सामान इसे त्याग करते हैं, उतना आसान यह नहीं है; इससे पूरा लाभ उठाने के पहले आपको इसका अभ्यास करना होगा।

शिथिलीकरण की कसरतों को उसी क्रम से कीजिए, जिस क्रम से इस किताय में भी गई है; परंतु प्रत्येक भाग को खींचा करने के स्थान पर उसे तान दो। पाँच से शुरू करो और ढाँगों तक कर जाओ, और फिर भुजाओं और सिर तक करो। अनेक रीतियों से तानो या फैलाओ, अपनी ढाँगों, पैरों, भुजाओं, हाथों, सिर और शरीर को इस प्रकार तानो और मढ़ो जैसे तानने और फैलाने से पूरा फैलाव प्राप्त होने की तुम्हें आशा हो। जमुहाई लेने से भी मत हरो; यह भी एक प्रकार का तनाव ही है। तानने से तुम्हें मांसपेशियों को फैलाना और चाफुंचन करना होगा; परंतु विधाम और मुग वाद के सिद्धांत में आवेगा। अपने मन से “ढोल देने” की भावना को रक्खे रहो, न कि मांसपेशियों के प्रवृत्त, या क्लृप्त करो। हम तनाव या प्रसारण की कसरतें नहीं दे सकते, क्योंकि प्रसारण की इतनी रीतियाँ उसके सामने हैं कि उसके उदाहरण दिए जाने

की आवश्यकता ही नहीं है। उसे ठीक विधामदायक प्रसारण की भावना को राह देने दो और प्रकृति उसे बतला देगी कि क्या करना होगा। तो भी यहाँ एक माध्यम शिष्टा बतला दी जाती है। भूमि पर खड़े हो, अपनी टाँगों को दूर-दूर फैलाए रहो और अपनी भुजाओं को, अपने सिर के ऊपर, फैलाकर सीधी रखो। तब पैर की उँगलियों पर उठो और अपने शरीर को शनैः-शनैः इस प्रकार तानो कि मानो छत को छूना चाहते हो। यह बहुत ही सरल कसरत है, पर आश्चर्यजनक रीति से ताज़गी देने-वाली है।

प्रसारण या तनाव का एक भेद इस प्रकार से भी प्राप्त हो सकता है कि अपने शरीर को ढीला करके चारों ओर से खूब हिला दो, शरीर के इतने अधिक भाग हिलें, जितने तुम हिला सकते हो। न्यूज़ाउंडलैंड कुत्ता जब पानी में से बाहर निकलता है, तो जिस तरह पानी झाड़ने के लिये अपने बदन को हिलाता है, उसे देखकर समझ जाइए कि हमारा क्या अभिप्राय है।

शिथिल करने की ये सब तरकीबें, यदि उचित रीति से शुरू और समाप्त की जायें, तो अभ्यास करनेवाले को नई शक्ति दे देंगी और अपने काम को करने के लिये-बढ़ फिर उतारू हो जायगा। उसको यैसा ही मालूम होगा, जैसा थकावट के बाद भरनींद सोने और उठकर मल-मलकर स्नान करने से मालूम होता है।

मन के शिथिल करने का अभ्यास

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले मन के शिथिल करने की कसरत दे देना भी अच्छा होगा। शरीर के शिथिल करने का प्रभाव मन पर पड़ता है और उसे विधाम देता है; परंतु मन के शिथिल करने का भी प्रभाव शरीर पर पड़ता है और उसे विधाम देता है। इसलिये यह अभ्यास उस मनुष्य की आवश्यकता को पूरी कर सकता



है, जिसको इस अभ्यास में पहले लिखी हुई बातों से विधाम में संतोष न मिला हो ।

सुषचाप शरीर को ढीला करके सुखासन में बैठ जाओ और अपने मन को बाहरी चीजों और झ्यालात से हटा लो; क्योंकि इसमें भी मानसिक बल व्यय होता रहता है । अपने ध्यान को भीतर अमली आत्मा पर लगा दो । ऐसा झ्याल करो कि तुम शरीर से बिलकुल परे हो और इसे, बिना अपना व्यक्तित्व क्षीण किए हुए छोड़ सकते हो । तुम्हें एक आनंदमय विधाम और शांति तथा संतोष का अनुभव होगा । ध्यान को पार्थिव शरीर से हटाकर ऊँचे "ग्रहम्" में, जो असली तुम हो, जमाना आवश्यक है । अपने चारों ओर जो विस्तृत सृष्टि है, करोड़ों सूर्य अपने पृथ्वी के मार्गिद ग्रहों से घिरे हुए हैं और कहीं-कहीं जो इससे भी बहुत बड़े हैं, उनका ध्यान करो । देश और काल के विस्तार की ओर मन की भावना फैलाओ, जीवन को इन सारी दुनियाओं में फैला हुआ देखो, और तब इस पृथ्वी और अपनी स्थिति पर विचार करो कि यह कैसा भूजि-कण के ऊपर एक कीट की भाँति है । तब अपने विचार ही में और ऊपर उठो और समझो कि यद्यपि तुम उस महत् का एक कण हो, तो भी तुम उस जीवन का एक अंग हो और उस आत्मा की एक किरण हो जो सबमें व्याप रहा है; सोचो कि तुम अमर, नित्य और अविनाशी हो, उस संपूर्ण का एक आवश्यक अंग हो, और एक ऐसा अंग हो कि जिसके बिना संपूर्ण रह ही नहीं सकता, संपूर्ण की बनावट का पूरा करनेवाला अंग तुम्हीं हो । ऐसा अनुभव करो कि तुम उस महत् जीवन के सबसे खगाव रखते हो, संपूर्ण का जीवन तुममें स्फुरण कर रहा है; महत् जीवन का सारा महामागर तुमको अपने हृदय पर इजाराय रहा है । और तब जागकर अपने पार्थिव जीवन में जाओ, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर ताज़ा हो गया है, तुम्हारा मन शांत

और बलवान हो गया है ; और तब तुम हम काम में खिच जाओगे, जिसको बहुत दिन में टांगने वाले जाने हो । तुम मानस के ऊपरी कोशों में प्रमत्त करने में काम डटाए और बलवान हो गए हो ।

### साग-भर का विश्राम

काम करने करने साग-भर का विश्राम या जाने की तरकीब, उड़ने-उड़ने विश्राम या जाने की तरकीब, जैसा कि हमारे नवयुवक मित्र गिण्टों में से एक ने हमें कहा है—नीचे लिखी जाती है—

नीचे खड़े हो, गिर ऊँचा और कंधे पीछे को दबे हों, गुहारी भुजाएँ बाल में दीर्घा खटकनी हों । तब अपनी एड़ियों को धीरे-धीरे भूमि से उठाओ, शनैः-शनैः अपने भार को पैर के पंजों पर रखने जाओ, और साध-ही-साध अपनी भुजाओं को बाल से ऊपर उठाने जाओ तब तक कि वे गिद्ध के पैले हुए पखने की भाँति न हो जायँ । श्यों-श्यों भार पंजों पर पड़ता जाय और भुजाएँ फैलती जायँ, श्यों-श्यों श्वास भीतर खींचते जाओ और तुम्हें उड़ने की भाँति मालूम होने लगेगा । तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ते जाओ और शरीर का भार फिर एड़ियों पर लाते जाओ और भुजाओं को नीचे बालों में लाते जाओ । यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे, तो इसे कई बार करो । पंजों पर उठने और भुजाओं को फैलाने से एक प्रकार के हलके-पन और स्वतंत्रता का अनुभव होगा, जिसको समझने के लिये इसका अभ्यास ही करना पड़ेगा ।

# तेईसवाँ अध्याय

## शारीरिक व्यायाम का लाभ

मनुष्य को प्रारंभिक दश में शारीरिक व्यायाम की शिक्षा की आवश्यकता न थी—जड़की और नवपुत्रकों को, जो स्वाभाविक रुचि के हैं, अथ भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के जीवन की प्रारंभिक दश उसको अनेक प्रकार की पुष्कल क्रियाओं में व्यस्त रखनी थी, उसे बाहर काम करना पड़ता था, और व्यायाम की उत्तम-से-उत्तम दशाएँ प्राप्त हो जाती थीं। उसे अपने लिये भोजन ढूँढ़ना, उसे तैयार करना, अपनी क्रसिल उत्पन्न करना, अपना घर बनाना, ईंधन जुटाना और सदस्यों ऐसे काम करने पड़ते थे, जो उसके सादे जीवन के सुख के लिये आवश्यक थे। परन्तु मनुष्य ज्यों-ज्यों सम्य होने लगा, स्यों-स्यों अपने कामों के भाग दूसरों के हवाले करने लगा, और स्वयं किसी दूसरे प्रकार के काम में लग गया; अंत में अब ऐसा हो गया है कि हममें से बहुत लोग वास्तव में कुछ भी शारीरिक काम नहीं करते, और कुछ लोगों को एक ही प्रकार का कठिन परिश्रम करना पड़ता है। दोनों को अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना होता है।

शारीरिक परिश्रम, विना मानसिक क्रियाओं के मनुष्य के जीवन को दुठना कर देता है। वैसे ही विना शारीरिक परिश्रम के केवल मानसिक क्रियाएँ भी उसे दुठना बना देती हैं। प्रकृति समता चाहती है—मुखकर मध्यवर्ती पथ चाहती है। स्वाभाविक साधारण जीवन के लिये मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सब शक्तियों का व्यवहार में आ जाना बहुत आवश्यक है; और वह जो अपने जीवन को इस प्रकार से नियमित करता है कि

शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम हुआ करते हैं, वही सबसे अधिक स्वस्थ और सुखी होता है ।

छात्रों को आवश्यक व्यायाम उनके खेलों में मिल जाता है, और उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उन्हें खेल-कूद में लग जाने की प्रेरणा करती है । चतुर मनुष्य अपने मानसिक परिश्रम के बाद खेल-कूद भी अच्छी तरह कर लिया करते हैं । नए-नए खेल जो अब धीरे-धीरे प्रचार पा रहे हैं, उनसे विदित होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अभी मरी नहीं है ।

योगियों का यह विश्वास है कि खेल की प्रवृत्ति—यह वेदना कि बरत चाहिए—वही प्रवृत्ति है, जो मनुष्य से रुचिकर जीविका के लिये—परिश्रम कराती है—यह क्रिया के लिये—भिन्न-भिन्न शिष्टाचारों के लिये—प्रवृत्ति की प्रेरणा है । स्वाभाविक स्वस्थ शरीर यही है, जो अपने सब अंगों में समान पुष्टि पाए हुए है, और कोई अंग उचित पोषण नहीं पाता, जब तक उस अंग द्वारा मनुष्यित परिश्रम न किया जाय । जिस अवस्था में कम काम किया जाता है, वह माधारण पोषण को अपने-आप कम पोषण पाता है, और समय पाकर निर्वह हो जाता है । प्रकृति ने मनुष्य के शरीर के प्रत्येक अंग और भाग के लिये स्वाभाविक उद्यमों और खेलों के द्वारा व्यायाम नियत किया है । स्वाभाविक उद्यम से हमारा अभिप्राय उमर उद्यम से नहीं है, जो शरीर के बेशुद्ध किसी विशेष अंग से लिया जाता है, क्योंकि जो मनुष्य बेशुद्ध एक ही प्रकार का कार्य करता है, वह बेशुद्ध थोड़ी-सी शक्तिशाली से अधिक काम खेता है और दूसरी शक्तिशाली शक्तिशाली अकल जाता है; उसे भी व्यायाम की जरूरत ही आवश्यकता है जिसकी मजदूरी के साथ ही दिन-भर काम करनेवाले को होती है, अंतर इतना है कि पहले को दूसरे की अपेक्षा थोड़ा काम करने से लाभ होता है ।

हम वर्तमान शारीरिक शिक्षा को खुले मैदान के उद्यम और खेल के स्थान पर बहुत ही हीन स्थानापन्न समझते हैं । इनमें कोई मनोरंजकता नहीं होती और जिस प्रकार उद्यम और खेल में मन प्रसन्नता-पूर्वक लगकर काम करता है, वैसा इसमें नहीं करता । परंतु किसी प्रकार का व्यायाम उसके अभाव की अपेक्षा अच्छा है । परंतु हम उस व्यायाम के बिल्कुल ही विरोधी हैं, जिससे कुछ ही मांसपेशियों की वृद्धि होती है और पद्मलवानी के खेल किए जाते हैं । यह सब अस्वाभाविक बात है । शारीरिक शिक्षा की पूर्ण-पूर्ण पद्धति यह है, जो सारे शरीर का यथोचित विकास करती है, सब मांसपेशियों से काम लेती है—सब भागों को पुष्ट करती है, जो व्यायाम में यथासाध्य अधिक-से-अधिक मन-लगाव उत्पन्न करे और जो अपने शिष्यों को खुले मैदान में रखे ।

योगी लोग अपने प्रतिदिन के जीवन में अपने कामों को चाप करते हैं और इस तरह बहुत-सा व्यायाम पा जाते हैं । वे जंगलों में बहुत दूर तक घूम-फिर भी आते हैं ( ये लोग जंगल व पहाड़ों को मैदान और बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं ) । अपने ध्यान और अध्ययन के बीच-बीच में ये अनेक प्रकार के हल्के व्यायाम भी कर लिया करते हैं । इनके व्यायाम में कोई नूतन बात नहीं है । इनके व्यायाम में मूल और प्रधान अंतर अन्य व्यायामों से यह है कि ये शरीर की गतियों के साथ मन का भी प्रयोग करते हैं । जिस प्रकार उद्यम और खेल में जी लगने से मन का प्रयोग होता है, उसी तरह योगी अपने व्यायाम में भी मन लगाता है । यह अपने व्यायाम में जी लगाता है और अपनी आकांक्षा के प्रयत्न से संभावित भाग में प्राय की अधिक मात्रा भेजता है । इस तरह उसे कई गुना अधिक लाभ होता है; और कतिपय मिनटों ही के व्यायाम से उसे उस व्यायाम का दशगुना लाभ होता है, जो यों ही खारवाही से बिना जी लगाए किया जाता है ।

इच्छित भाग में जी लगाने की क्रिया आसानी से साथी जा सकती है। केवल इतना ही आवश्यक है कि इस बात पर पक्का विश्वास कर लिया जाय कि यह हो जायगा; हम तरह संदेह के कारण जो भीतरी बाधाएँ पड़ती हैं, वे न पड़ेंगी। तब केवल मन को आज्ञा दो कि उस भाग में प्राण भेजे और रुधिर-संचार को बढ़ावे। मन हमको अनिच्छापूर्वक तो कुछ-न-कुछ करता ही है, जब शरीर के किसी भाग पर ध्यान आकर्षित होता है; परन्तु आकांक्षा का प्रयोग करने से प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है। अब आकांक्षा के प्रयोग करने में भी यह आवश्यक नहीं है कि भौहें सिकोड़ी जायँ, मुट्ठी बाँधी जायँ, और प्रबल शारीरिक प्रयत्न किया जाय। बहुत सरल उपाय अभीष्ट फल को प्राप्त करने का यह है कि जिस वाम को हम चाहते हैं, उसके लिये पूरी आज्ञा और भरोसा करें कि यह अवश्य हो जाय। यही पूरी आज्ञा और भरोसा आकांक्षा की प्रभावशाली आज्ञा है—हमका प्रयोग कीजिए और बात सिद्ध है।

उदाहरण के लिये यदि आप अपनी कलाई में अधिक प्राण भेजा चाहते हैं और वहाँ का रुधिर-संचार बढ़ाया चाहते हैं और हमको द्वारा उसकी पुष्टि की उत्पत्ति किया चाहते हैं, तो केवल भुजा को बटोर कीजिए और तब शनैः-शनैः उसे फैलाने लगिए, अपनी दृष्टि या अपने ध्यान को कलाई पर जमाएँ रहिए और अपने अभीष्ट का ध्यान किए रहिए। हमको कई बार कीजिए, तो आपको मान्य होगा कि आपने कलाई की कोई अण्डा कमल भली भीति कर ली है, यद्यपि आपने उसमें कोई भी प्रबल गति नहीं कराई और न किसी कमल के भोजन आदि का व्यवहार किया। हम तरह-तक का प्रयोग शरीर के कई अंगों पर कीजिए; जब अंगों में कोई भी गति कराने रहिए, जिससे आपका ध्यान वहाँ लगा रहे, तो आपको बहुत जल्द भुजा मालूम हो जायगी और जब कभी आप किसी

साधारण सरल व्यायाम को करने लगेंगे, तो यह बात स्वयं आप ही-आप होने लगेगी। संक्षेप यह है कि जब आप कोई व्यायाम करने लगें, तो इन बातों पर ध्यान जमाए रहें कि आप क्या और किसलिये कर रहे हैं; तब आपको पूरा फल बहुत जल्द मिल जायगा। अपने व्यायाम को जीवित और मनोरंजक बनाए रहिए; और लापरवाही से बिना मन लगाए अंगों को कसरत करने से बाज़ आइए। व्यायाम में कोई मन-लगाव की बात मिला दीजिए और तब उसका उपयोग कीजिए। इस प्रकार मन और शरीर दोनों लाभ उठाते हैं। व्यायाम समाप्त होने पर आपको ऐसी तमतमाहट और प्रसन्नता मालूम होगी, जैसी बहुत दिनों से न मालूम हुई होगी।

अगले अध्याय में हम थोड़ी साधारण कसरतें देते हैं, जो, यदि उनका अभ्यास किया जाय तो, शरीर के अंगों के लिये सब आवश्यक गतियों को देंगी; प्रत्येक भाग काम करेगा, प्रत्येक अवयव शक्ति ग्रहण करेगा; और आप केवल अच्छी तरह से विकारा ही न पावेंगे, किंतु सिपाही की भाँति सीधे खड़े हो जावेंगे और पहलवान की भाँति सुस्त और कुर्तले बन जावेंगे। इन कसरतों के कुछ भाग तो योगियों के आसन और मुद्राओं से लिए गए हैं और कुछ भाग योरप और अमेरिका की शारीरिक शिक्षा से लिए गए हैं, जो घड़ों की पलटनों में व्यवहृत होते हैं। ये पलटनों की शारीरिक शिक्षावाले पूर्वीय कसरतों का भी अध्ययन किए हुए हैं और उनमें से ऐसे भाग ले लिए हैं जो उनके उद्देश्य के अनुकूल हैं; और इन लोगों ने कसरतों की एक ऐसी माला बना ली है, जो करने में तो बहुत सारी और सरल है, परंतु परिणाम में बहुत आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है। इस पद्धति की सहायता और सरलता के कारण आप इसका निरादर न करें। इसी की आपको आद-

स्पष्टता थी, इसके अनावश्यक अंग निकाल दाले गए हैं। इनके विषय में करने मन को स्थिर करने के पहले इनकी परीक्षा तो कर लीजिए। वे धारको शरीर से नया बना देंगी, यदि आप उचित समय और उचित अंश इनके अभ्यास में लगावेंगे।

---



# चौबीसवाँ अध्याय

## योगियों के कुछ व्यायाम

इन कमरतों को आपको बतलाने के पहले हम फिर आपके मन पर इस बात को अंकित करना चाहते हैं कि बिना जी लगाए कसरत अपना फल नहीं देती। आपको अपनी कसरत में जी लगाने का प्रबंध करना होगा कि उसमें कुछ मन भी लगा रहे। आपको उस कमरत को पसंद करना पड़ेगा और इस बात पर ध्यान करना पड़ेगा कि इसका मतलब क्या है। इस सलाह का अनुसरण करने से आपको इस काम में कई गुना अधिक लाभ होगा।

सदे होने की स्थिति

प्रत्येक कसरत को स्वाभाविक रीति से खड़े होकर तुम्हें शुरू करना चाहिए अर्थात् तुम्हारी पंखियाँ एकत्र रहें; सिर ऊँचा, अर्धसामने, कंधे पीछे, छाती फैली, पेट थोड़ा भीतर खिंचा और भुजाएँ बगल पर लटकती हों।

( १ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को अपने समान सीधा फैलाओ, उँचाई कंधों के समान रहे, हाथों की हथेलियाँ एक दूसरी को छूती रहें ;  
( २ ) हाथों को झोका देकर पीछे फेंको जब तक हाथ कंधों से सीधे चगलों के सामने, या उससे भी कुछ पीछे, यदि आसानी से जा सकें, न चले जायें ; तेज़ी से पड़वी स्थिति में लाओ, और इसे कई बार करो। भुजाओं को चढ़ी तेज़ी से झोका देना चाहिए और धैर्यता और जीवट के साथ मनमने होकर काम मत करो, किंतु जी लगाकर खेलो। यह कसरत छाती, कंधों की मांसपेशियों

आदि के विभाग करने में यही लाभदायक है । हाथों को झोका देकर पीछे से जाने में यदि गुप्त पैर के पंजों पर हो जाओ और आगे जाने में फिर पदियों पर आ जाओ तो और भी अच्छा होगा । बार-बार की आगे पीछे चाली गति नेत्र पेटुक्रम की भाँति साजगुन होनी चाहिये ।

### ( २ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को कंधों से सीधा बगल की ओर फैलाओ, हाथ खुले रहें ; भुजाओं को इसी तरह फैलाए ही हुए एक घूर्णन में ( जो बहुत बड़ा न हो ) घुमाओ, भुजाओं को जहाँ तक 'भव' हो पीछे ही की ओर दबाए रहो, और हाथ घूर्णाकार घूमने समय छाती की छाड़न के सामने न आने पावें । घूर्णन बजाना जारी रखो जब तक मान लो कि १२ न हो जायें । यदि योगियों के तरीके से पूरी साँस ले लोगे और बहुत-से घूर्णनों तक इसे रोके रहोगे तो और भी अच्छा होगा । इस कसरत से छाती, कंधे और पीठ विकसित होते हैं ।

### ( ३ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, प्रत्येक हाथ की कनिष्ठिका अँगुलियों एक दूसरी को छूती रहें, इधेलियों ऊपर की ओर हों । ( २ ) तब छोटी अँगुलियों को छूते ही रहे हुए हाथों को टेढ़ा घूर्णाकार गति से सीधा ऊपर लाओ, जब तक दोनों हाथों की अँगुलियों के छोर सिर के ऊपरी भाग को खजाट के पिछवाड़े न छुएँ, अँगुलियों की पीठ छूती रहें, उ्यों-उ्यों गति हो र्यों-र्यों कुहनियों बाहर की ओर होती जायें ( जब अँगुलियों सिर को छुएँ, अँगूठे पीछे की ओर दृगित करते रहें ), और अंत में बगलों की ओर हो जावें । ( ३ ) अँगुलियों को सग-भर सिर का पीछा हुए रहने दो और तब कुहनियों को पीछे खींचकर ( जिससे कंधे भी पीछे को दब जाते हैं )

मुजाघों का टेढ़ी गति से पीछे की ओर दबाओ जब तक वे पूरी लंबी होकर गढ़े होने की स्थिति में यात्राओं में न आ जायें ।

( ४ ) अभ्यास

( १ ) मुजाघों को कंधे से यात्राओं की ओर सीधा फैलाओ । ( २ ) तब मुपलियों को उसी स्थिति में फैलाए हुए मुजाघों को कुहनियों पर टेढ़ा करो और कलाहों को वृत्ताकार गति से ऊपर लाओ जब तक फैली हुई अँगुलियों के छोर कंधों के ऊपरी भाग को छू न लें । ( ३ ) अँगुलियों को इसी अंतिम स्थिति में रखते हुए कुहनियों को मोड़ा देकर सामने की ओर लाओ कि वे एक दूसरी को छू लें या छूने के निकट हो जायें ( थोड़े अभ्यास से वे छूने लगेंगी ) । ( ४ ) तब अँगुलियों को उसी स्थिति में रखते हुए कुहनियों को इतना पीछे ले जाओ जितना ले जा सको । ( थोड़े अभ्यास से वे बहुत पीछे जाने लगेंगी ) ( ५ ) कुहनियों को कई बार आगे पीछे ले जाओ ।

( ५ ) अभ्यास

( १ ) हाथों को नित्य पर रखो, अँगूठे पीछे की ओर, कुहनियाँ पीछे की दबो हों । ( २ ) शरीर को नितंब से आगे की ओर टेढ़ा करो जहाँ तक तुम टेढ़ा कर सको, पर छाती को चौड़ा किए और कंधों को पीछे ही दबाए रहो । ( ३ ) शरीर को पहले खड़े होने की स्थिति में लाओ । हाथ नितंब ही पर रहे, और तब पीछे झुको । इन गतियों में घुटनों को टेढ़ा न करना चाहिए, और गति धीरे-धीरे करनी चाहिए । ( ४ ) तब हाथ नितंबों ही पर रखते दाहनी ओर धीरे-धीरे झुको, पदियों भूमि पर दृढ़ रखी रहें, घुटने टेढ़े न होने पावें, और शरीर छँटने न पावे । ( ५ ) पडली स्थिति पर आओ और तब शरीर को धीरे-धीरे बाईं ओर झुकाओ, पिछली गति में दो हुई सूचनाओं का अनुसरण किए रहो । यह क्रमरत कुछ थकावट लाने वाली है, और पहले इसमें अतिशय मत्त करना धीरे-धीरे आगे

बढ़ना । ( ६ ) हाथ उभरी तरफ नितंबों की पर रखते हुए, शरीर के ऊपरी भाग को, कमर से ऊपर चारों ओर घुमाकर घुमाओ, जिसमें फिर सबसे बड़ा घुत्त बनावे । पर जिसकने धीरे घुटने टेढ़े न होने पावें ।

### ( ६ ) अभ्यास

( १ ) सीधे खड़े होकर, भुजाओं को सीधा फिर के ऊपर उठाओ, हाथ मुझे रहें और जब भुजाएँ फिर के ठीक ऊपर चली जायँ तब झँगूटे एक दूसरे को छूते रहें, हथेलियों आगे की ओर रहें । ( २ ) तब बिना घुटनों को टेढ़ा किए, शरीर को कमर से नीचे झुकाओ और पैरों की हड्डी अँगुलियों के छोरों से भूमि को छूने का यत्न करो यदि तुम पहले इसे न कर सको तो जहाँ तक यत्न सके यत्न करो और शीघ्र तुम इसे ठीक करने लगोगे—परंतु स्मरण रहे कि न घुटने टेढ़े होने पावें और न भुजाएँ । ( ३ ) उठो और इसे कई बार करो ।

### ( ७ ) अभ्यास

( १ ) सीधे खड़े होकर और हाथों को नितंबों पर रखते हुए, घबरने को पैर के पंजों पर कई बार उठाओ । जब पंजों पर उठ जाओ, तो घण-भर टहर जाओ ; तब एड़ियों को फिर भूमि पर आ जाने दो, फिर ऊपर झिपे अनुसार ऊपर उठो । घुटनों को टेढ़ा न होने दो और एड़ियों को एकत्र रखो । यह कसरत टोंगों को पिछ्छी मांस-पेशियों ( पीछी ) को उन्नत करती है, और शुरू में वहाँ कुछ पीछा-सी होने लगती । यदि प्यारबी वहाँ की मांसपेशियाँ विकसित न हों तो इस कसरत को बंद किए । ( २ ) हाथों को नितंबों की पर रखते हुए अपने पैरों को दो फीट के दायरे पर रखिए और तब शरीर को बैठने की स्थिति में लाइए, थोड़ा टहरकर फिर पहली स्थिति में ले आइए । इसे कई बार कीजिए, पर परचे अतिरिक्त न

कीतिरु बपोकि हगमे जॉपों में पहले पीड़ा हो जायगी । हम कम-  
 रत में जॉपों की उपनि होगी । हग विपुली गति में यदि भार पंजों  
 पर होकर नीचे बैठे तो और भी बन्धु होगा ।

### ( ८ ) अभ्यास

( १ ) सीधे खड़े हो, हाथ नितंबों पर रहें । ( २ ) घुटने को  
 सीधा ही रखने हुए दाहनी टोंग को त्रयीष १५ इंच आगे फेंको ।  
 अँगूठा बाहर की ओर मुका रहे और तलवा चिपटा रहे—तब  
 टोंग की पीछे फेंको कि अँगूठा नीचे को मुँह कर ले, पर घुटना  
 बराबर बड़ा रहे । ( ३ ) कई बार इसी तरह आगे पीछे झोंका  
 देकर ले जाओ । ( ४ ) तब बाईं टोंग से ऐसा ही करो । ( ५ )  
 हाथों को पीछे ही नितंबों पर किए हुए, घुटने को टेढ़ा करके, दाहनी  
 टोंग को ऊपर उठाओ जब तक जॉप ठीक शरीर के सामने न आ  
 जाय ( अगर और ऊपर उठा सकने हो तो उठाओ ) । ( ६ )  
 अपने पैर को फिर भूमि पर रखो और बाईं टोंग से वैसी ही गति  
 करो । ( ७ ) कई बार ऐसा करो, पहले एक टोंग और तब दूसरी;  
 पहले धीरे-धीरे और फिर धीरे-धीरे तेजी की बढ़ाते जाओ जब तक  
 कि तुम धीमी दौड़ बिना जगह छोड़े न कर लो ।

### ( ९ ) अभ्यास

( १ ) सीधे खड़े हो और भुजाओं को अपने सामने कंधों से  
 सीधा फैलाओ और उन्हें कंधों की ऊँचाई तक रखो—हथेलियाँ  
 नीचे मुँह किए रहें; अँगुलियाँ बाहर फैली और अँगूठे नीचे हथेलियों  
 से लगे रहें, और अँगूठे की ओर हाथ एक दूसरे को घुंते रहें । ( २ )  
 नितंबों से शरीर को नीचे झुकाओ, वहाँ तक आगे नीचे खटको जहाँ  
 तक संभव हो और साथ ही भुजाओं को झोंका देकर आगे फेंको कि  
 नीचे होते हुए पीछे पीठ पर ऊपर जायें, यहाँ तक कि जब तक  
 शरीर हट तक नीचे जाय तब तक भुजाएँ शरीर के ऊपर पीछे फैले

जायें। भुजाओं को सीधे ही रखते रहो और घुटने टेढ़े न होने पावें।

( १ ) फिर खड़ी स्थिति में आ जाओ और इसे कई बार करो।

( १० ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को बगल की ओर बंधों से सीधे फैलाओ और वहाँ ही हाथों को खोलें हुए उन्हें कड़ा और सख्त करो।

( २ ) जख्मी से जोर से हाथों को बंद करो कि अँगुलियों इथेलियों में घुम सी जायें। ( ३ ) हाथों को तेज़ी से और जोर से खोलो, अँगुलियों और अँगूठों को इतना फैलाओ जहाँ तक फैला सको कि हाथ पंखे के सदृश हो जायें। ( ४ ) ऊपर लिखी रीति से हाथों को खोलते और बंद करते रहो, कई बार ऐसा करो और तेज़ी के साथ करो। कसरत में जीवट डाल दो। यह हाथ की मांसपेशियों को उन्नत करने में बड़ी अच्छी कसरत है; इससे हाथों में बल आता है।

( ११ ) अभ्यास

( १ ) अपने पेट के बल पड़ जाओ, अपने हाथों को सिर के ऊपर फैलाए रहो और तब ऊपर की ओर झुकाओ; तुम्हारी टाँगें खंबाई-भर फैली रहें और फिर पीछे की ओर ऊपर उठाई जावे। इसकी पूरी भावना तब होगी जब आप किसी कठोरे का ध्यान करेंगे कि पेंदी तो भूमि पर हो पर सिर ऊपर की ओर उठा हो। ( २ ) भुजाओं और टाँगों को कई बार ऊपर नीचे करो। ( ३ ) तब पीठ के बल झेद जाओ और खंबाई-भर फैलकर पड़ जाओ, भुजाएँ सीधी सिर के ऊपर की ओर फैली रहें, अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें। ( ४ ) तब कमर से दोनों टाँगों को ऊपर उठाओ जब तक वे सीधी ऊपर की हवा में अज्ञात के मशगूल की भाँति खड़ी न हो जायें; आपका ऊपरी शरीर और भुजाएँ पिछली ही हुई स्थिति में पड़ी रहें। टाँगों को नीचे करो और कई बार उठाओ।

( ५ ) तीमरी स्थिति पर आओ, पीठ के बल, लवण-भर, भुजाओं को सीधा ऊपर मिर की ओर उठाए हुए रहो और अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें । ( ६ ) तब धीरे-धीरे शरीर को बैठने की स्थिति में आओ, भुजाएँ, कंधों के सामने बाहर की ओर फैली रहें । तब धीरे-धीरे फिर पड़ जाने की स्थिति में आओ और उठने और पड़ जाने की क्रिया कई बार करो । ( ७ ) तब फिर मुँह और पेट के बल उलट जाओ ; और नीचे लिखी हुई स्थिति को धारण करो ; सिर से पैर तक शरीर को कड़ा करो, अपने शरीर को उठाओ जब तक शरीर का कुल बोझ एक ओर तुम्हारी हथेलियों पर ( भुजाएँ आगे की ओर सीधी तनी रहें ) और दूसरी ओर पैर के अँगूठों और अँगुलियों पर न आ जाय । तब धीरे-धीरे भुजाओं को कुड़नियों पर टेढ़ी करने लगे और छाती को भूमि पर जाने दो ; तब अपनी भुजाओं को सीधी और कड़ी करने के द्वारा अपनी छाती और ऊपरी शरीर को ऊपर उठाओ, कुल भार भुजाओं पर रहे । यह पिङ्गली गति कठिन है और शुरू से इसमें शक्ति न करनी चाहिए ।

बड़े पेट को पचकाने का अभ्यास

यह कसरत उन लोगों के लिये है, जिनका पेट बहुत बड़ गया हो, जो अति अधिक चरबी वहाँ एकत्र हो जाने से होता है । इस कसरत को उचित रीति से करने से पेट बहुत छोटा हो सकता है—परंतु सर्वदा स्मरण रहे कि सब बातों में मध्य वृत्ति रहनी चाहिए, और अति किसी बात में न करो, न शीघ्रता ही करो । कसरत यों है: ( १ ) सब हवा प्रवास द्वारा बाहर निकाल दो ( बहुत जोर मत लगाओ ) और तब पेट को भीतर और ऊपर खींचो जहाँ तक तुम खींच सको तब जल-भर रोक रखो और फिर स्वाभाविक स्थिति में आने दो । कई बार इसे करो, तब एक दो सौस ले लो और थोड़ा बिताय कर लो । फिर कई बार पेट को

वैसा ही भीतर खींचो और बाहर छाओ। हम थोड़े अभ्यास से पेट की मांसपेशियों पर किनासा अधिकार हो जाता है, यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है। हम कमरत में केवल चर्पी ही की तहें नहीं घटेंगी, किन्तु आमाशय की मांसपेशियाँ भी बड़ी बलवती हो जाएंगी। (२) पेट को अच्छी तरह मुलायमिपत में मलो।

### शरीर को कड़ा करने का अभ्यास

यह कमरत इसलिये है कि मनुष्य को सुंदर स्वाभाविक रीति से खड़े होने और चलने की प्राप्ति हो जाय, और उसकी ढीले-ढाले रहने और चलने की भादत छूट जाय। यदि अच्छी तरह से इसका अभ्यास किया जाय, तो हमसे सीधी सुंदर गति (चाल) हो जावेगी। इससे आपकी चाल ऐसी हो जावेगी कि आपके प्रत्येक अवयव को कारी अवकाश रहेगा और शरीर का प्रत्येक अंग सुव्यवस्थित रहेगा। इस या इसी के समान किसी कसरत का अनुसरण बहुत-से देशों में सेना-नायकों द्वारा किया जाता है, जिससे नवयुवक अक्रसरों की चाल उचित और सुंदर हो जावे, परंतु सेनाओं में इस कसरत का बहुत अच्छा प्रभाव दूसरी जंगी कसरतों से दब जाता है और शरीर में अधिक कड़ापन आ जाता है; परंतु इस कसरत को पृथक् करने में वह दोष नहीं आने पाता। कसरत नीचे लिखी जाती है, इसको सावधानी से समझिए—(१) सीधे खड़े हो, एड़ियाँ एकत्र और पैर के घँगूटे थोड़ा बाहर की ओर मुके हों। (२) भुजाओं को बाल से ऊपर की ओर वृत्ताकार गति में उठाओ कि हाथ तिर के ऊपर जाकर मिल जायें, घँगूटे एक दूसरे को छू लें। (३) घुटनों को सप्रत और शरीर को कड़ा किए हुए कुहनियाँ टेढ़ी न होने पावें (और कंधे पीछे ही की ओर दबे रहें)। भुजाओं की वृत्ताकार गति में बालों ही की सीध में नीचे छाओ जब तक छोटी घँगुलियाँ और हथेली के भीतरी किनारे आँधों की



बागों को छू न लें, हथेलियों का मुँह सामने की ओर हो : इसे कई बार करो, स्मरण रहे, धीरे-धीरे हाथों को अंतिम स्थिति में इस गति से जाए जाने पर कंधों को आगे की ओर टेढ़ा होना असंभव हो जाता है। छाती थोड़ी उभड़ जाती है, सिर सीधा हो जाता है, पोठ सीधी और बीच में थोड़ी आगे की ओर मुकी हो जाती है ( और यही उसकी स्वामाविकस्थिति है ) ; और घुटने सीधे रहते हैं। संक्षेप यह है कि आपका शरीर उत्तम, सीधा गठन का हो जाता है—अब इसी को सर्वदा कायम रखिए। इस स्थिति में खड़े होकर, फनिष्ठिका अँगुली को जोंधों के ठीक बगल में रख-कर कमरे की में घूम-घूमकर टहलिए ; और फिर इसी स्थिति से चला कीजिए। इस प्रकार थोड़ा अभ्यास करने से आश्चर्यमय उन्नति होगी। परंतु इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है—इसी तरह सभी अच्छी बातों में अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता हुआ करती है।

अब व्यायाम के विषय में जो हमें थोड़ा-सा कहना था, उसे हम कह चुके। बातें सीधी हैं, पर आश्चर्यमय उन्नति देनेवाली हैं। इनमें शरीर के प्रत्येक भाग को परिश्रम करना पड़ जाता है ; यदि सावधानी से इनका अभ्यास किया जाय, तो ये आपके शरीर को नया बना देंगी। सावधानी से अभ्यास कीजिए और इनमें जी लगाइए। इनमें मनोयोग दीजिए और इस बात पर ध्यान रखिए कि किस अभिप्राय से आप इस क्रिया या खेल को कर रहे हैं। जब आप कपरत करने लगें, "यज्ञ और उन्नति" पर ध्यान रखें, तब आपको और भी बहुत अधिक लाभ होगा। भोजन के तुरत पश्चात् व्यायाम मत करो। किसी व्यायाम को थोड़े ही बार दुहराओ और तब धीरे-धीरे उसे बढ़ाने लगो। दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करो, जो एक ही बार बहुत-सा करने से अच्छा होगा।

घाती है और अंत में शारीरिक अस्वस्थ और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर छाली आँख से देखने में स्वच्छ देख पड़ता हो, पर वह वस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म एंस्कॉप (सुदर्शीन) से आप शरीर के चमड़े को देखें, तो मैल को देखकर आप घबरा जायेंगे।

मनुष्य की सब जातियाँ, जो तनिक भी सभ्यता का अभिमान करती थीं, इस स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सच बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसी नाप मान सकते हैं, जिससे किसी जाति की सभ्यता नापी जा सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायगा, उसमें उतनी ही अधिक सभ्यता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है, उसमें उतनी ही असभ्यता है। पुराने मनुष्य इस स्नान में बढ़ते-बढ़ते अंत में अतिशय को पहुँच गए और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गए; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान को सभ्य जीवन की परम आवश्यक बात समझने लगे; और बहुत-सी पुरानी जातियाँ इस विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ो-बढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल इस स्नान के विषय में दुनियाँ के सब लोगों से आगे बढ़े हुए हैं। तर्षिब-से-तर्षिब जापानी को चाहे भोजन न मिले, कुछ चिंता नही, पर बिधिवत् स्नान अवश्य होना चाहिए। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के झुमट में चले जायें, तो तनिक भी दुर्गंधि आपको न मिलेगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात असंभव है? बहुत-सी जातियाँ स्नान को अपने मजहब का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती हैं, मजहब के पुरोहित लोग स्नान की महिमा को समझने लगे और बड़ोंने इसे मजहब में मिठाकर आवश्यक बना दिया। बोली लोग इसे मजहब तो नहीं समझते, परंतु स्नान का व्यवहार ऐसा करने हैं, जो मजहब से भी अधिक है।

# पच्चीसवाँ अध्याय

## योगियों का स्नान

इस पुरतक के एक अध्याय को स्नान की प्रधानता दिखाने में लगाने की आवश्यकता न होगी ; परंतु इस बीसवाँ शताब्दी में भी बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं, जो इस विषय के संबंध में वस्तुतः कुछ नहीं जानते । कहीं-कहीं तो मनुष्य थोड़ा बहुत ऊपरी शरीर को धो काजते हैं, परंतु अधिकांश मनुष्य, जिनमें स्त्रियों की संख्या और भी अधिक होती है, स्नान पर ही ध्यान नहीं देते; वे या तो स्नान के नाम पर अलका दर्शन कर लेते हैं या वह भी नहीं करते । इसलिये हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना अच्छा समझते हैं कि क्यों योगी लोग स्वच्छ शरीर रखने पर इतना जोर देते हैं ।

प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को स्नान करने की इतनी आवश्यकता न थी । क्योंकि उसका शरीर तब खुला रहता था, उस पर चूटि होती थी, आदिर्यो और वृक्ष उसके शरीर से रगड़ खाया करते थे, और शरीर पर जमा हुआ मैल, जिसे शरीर भीतर से निकाल-निकालकर ऊपर छोड़ना जाता है, साफ हो जाया करता था । प्राकृतिक मनुष्य के समीप नदियाँ और झरने होते थे, एकाध बार स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसमें गोते लगा लेता था । परंतु वस्त्र का व्यवहार करने से ये बातें बदल गईं, और आजकल के मनुष्यों का यद्यपि उनके चमड़े अब भी भीतर से मैल निकाल-निकालकर ऊपर कर रहे हैं, अब पुरानी रीति से मैल साफ करना बहुत कठिन हो गया, और उसकी मैले शरीर पर तह-पर-तह जमती

बावी है और अंत में शारीरिक असुख और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर खाली आँख से देखने में स्वच्छ देखा पड़ता हो, पर वह अस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म इशंक यंत्र (सुईवीन) से आप शरीर के खमड़े को देखें, तो मैल को देखकर आप घबरा जायेंगे।

मनुष्य की सब जातियाँ, जो तनिक भी सम्यक्ता का अभिमान करती थीं, हम स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सब बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसा नाप मान सकते हैं, जिससे किसी जाति की सम्यक्ता नापी जा सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायता, उसमें उतनी ही अधिक सम्यक्ता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है, उसमें उतनी ही असम्यक्ता है। पुराने मनुष्य हम स्नान में बढ़ते-बढ़ते अंत में अतिशय को पहुँच गए और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गए; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान को सम्यक् जीवन का परम आवश्यक बात समझते थे; और बहुत-सी पुरानी जातियाँ हम विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ी-बढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल हम स्नान के विषय में दुनियाँ के सब लोगों से आगे बढ़े हुए हैं। गरीब-से-नारीब जापानी को आधे भोजन न मिले, कुछ चिता मारी, पर बिधिवत् स्नान अवश्य होना चाहिए। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के झुमट में चले जायें, तो तनिक भी दुर्गंधि आपको न मिलेगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात अक्षमभ है? बहुत-सी जातियाँ स्नान को अपने मज़हब का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती हैं, मज़हब के प्रोहित लोग स्नान की महिमा को समझते थे और उन्होंने इसे मज़हब में मिश्रित आवश्यक बना दिया। बोगी लोग इसे मज़हब तो नहीं समझते, परंतु स्नान का अवहार ऐसा करते हैं, जो मज़हब से भी अधिक है।

अब देखना चाहिए कि स्नान करना क्यों आवश्यक है। हममें से बहुत कम लोग इसकी पूरी महिमा समझते हैं। जो समझते हैं वे भी केवल इतना ही समझते हैं कि इससे मैल—प्रत्यक्ष मैल—साफ़ होता है। परंतु स्वच्छता तो आवश्यक वस्तु है ही, इसमें तो संदेह ही नहीं है, परंतु स्वच्छता के अलावा भी इसमें बड़े-बड़े गुण हैं। पहले यह देखना चाहिए कि चमड़े को स्वच्छ करने की आवश्यकता क्यों है।

हमने एक अध्याय में आपको समझा दिया है कि साधारण रीति से पसीने के बह जाने की बड़ी आवश्यकता है; यदि चमड़ों के छिद्र अवरुद्ध हो जायें या बंद हो जायें, तो शरीर अपनी रक्तियात को बाहर नहीं निकाल सकता। और वह बाहर कैसे निकाला करता है? चमड़ा, खाम और गुदों के द्वारा। बहुत-से लोग गुदों का काम बड़ा देते हैं। जिससे उन्हें अपना और चमड़े का, दोनों का काम करना पड़ जाता है; क्योंकि प्रकृति एक अवयव से इतना काम लेगी, परंतु काम को बिना कराए न रहेगी। चमड़े का प्रत्येक छिद्र उस नाली का छोर है, जिसे चमड़े की नाली कहते हैं, और जो चमड़े के भीतर तक फैली रहती है। हमारे चमड़े के प्रत्येक वर्ग इंच में ऐसी ३००० छोटी नालियाँ होती हैं। वे लगातार एक द्रव बहाया करती हैं, जिसे पसीना और देह-वाष्प कहते हैं, जो ऐसा द्रव होता है, जो शरीर-यंत्र के मैल और रक्तियात से भरे हुए रुधिर में से निकलता है। आपको स्मरण होगा कि शरीर चण-चण में पुराने निक्षेपों को पृथक् करता रहता है; और इनके स्थान पर नए रेशों को स्थापित करता रहता है; और इन पुरानी रक्तियात का दूर होना वैसा ही आवश्यक है, जैसा घर के कूड़ा-करकट का दूर होना जरूरी है। चमड़ा एक

आपना; और इसीलिए प्रकृति हमें दूर बहाया चाहती है। हमारे में एक रोगनक्षत्र द्रव भी निकलता है, जो हमारे को कोमल और चिकना बनाए रखता है।

स्वयम् हमारा भी अन्य अणुओं की भाँति अपनी बनावट में बड़ा परिवर्तन पाया करता है। बाहरा हमारा ऐसे देहाणुओं में बना है, जो बहुत घटायु हुआ करते हैं, और लगातार केन्द्र का भाँति छूटा करते हैं और उनके स्थान को पूरा करने के लिये नए देहाणु नीचे से ऊपर आया करते हैं। ये निकम्मे और व्यक्त देहाणु हमारे के ऊपर रही पदार्थों को एक प्रकार की लड़ बना देने हैं, यदि मज-मजकर धो न डाले जायें, इसमें मरेह नहीं कि उनमें से अनेकों तो कण्डे की रगड़ खा-खाकर गिर जायें और छूट जायें हैं; परंतु बहुत बड़ा भाग रह जाता है; और उनके दूर जाने के लिये नशाने खाने का आवश्यकता पड़ती है।

पानी के द्वारा शरीर के भातरी अंगों को सिंघाई के अध्याय में हमने हमारे के इन छिद्रों को खुले रखने की आवश्यकता दिखा दी है; और यह भी बतला दिया है कि यदि वे बंद कर दिए जायें, तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाय, जैसा कि पूर्वकाल की परीक्षाओं और घटनाओं से प्रमाणित होता है। यदि शरीर को धोकर साफ न किया जाय, तो इन निकम्मे देहाणुओं, रोगन और पर्मोने से हमारे के छिद्र धोड़े बहुत बंद हो जायें और फिर हमारे की सतह पर वह मैलापन रोगों के काटाणुओं को निमंत्रण देने लगे कि वे वहाँ आकर अपना घर बनायें और वृद्धि करें। स्नान न करके क्या आप इन काटाणुओं को न्योता दे रहे हैं? हम ऊपर से आप हुए गर्दगुवार का बर्खान नहीं कर रहे हैं—हम जानते हैं कि उसको आप न लपेटे रहेंगे—परंतु आपने कभी भी अपने ही शरीर से निकले हुए इस मैल पर ध्यान दिया है? जो वैसा ही मैल है, जैसा ऊपरी मैल है और कभी-कभी उससे भी अधिक बुरा फल पैदा कर देता है।

प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम दिन में एक बार अपने सारे शरीर को धो डालना चाहिए। स्नान के लिये बहुत उपयुक्त समय सुबह सोकर उठने का है। भोजन करने के ठीक पहले या पश्चात् कभी स्नान न करो। शाम को स्नान करना भी अच्छी बात है। स्नान करने समय मोटे कपड़े से शरीर को खूब रगड़ो, जिनसे मुँदा चमड़ा छूट जाया करेगा और रुधिरसंचार भी उत्तेजित होगा। जब शरीर ठंडा हो, उस समय ठंडे पानी से कभी भी स्नान न करो। ठंडे पानी से स्नान करने के पहले कुछ कसरत करके अपने शरीर को गरम कर लो, तब स्नान करो। दुबकी मारकर स्नान करने में पहले सिर को भिगोकर तब छाती भिगोओ और तब दुबकी लगाओ।

ठंडे पानी से स्नान करने के पश्चात् योगियों की रीति है कि शरीर को हाथों से कपड़े के स्थान पर खूब मलें और तब भीगे ही शरीर से सूखे कपड़े पहन लें। इससे जाड़ा अधिक मालूम होने के स्थान पर, जैसा कि कोई-कोई ग्रन्थाल करते हैं, उसके विपरीत गरमा-हट मालूम होती है, और यदि थोड़ी-सी हलकी कसरत कर लें, तो यह गरमाहट और भी बढ़ जाती है। योगी लोग स्नान के पश्चात् प्रायः व्यायाम किया करते हैं। यह व्यायाम बहुत कड़ा नहीं होता; और ज्यों ही सारे शरीर में पूरी तमवमाहट आ गई कि बंद कर दिया जाता है।

योगियों का प्यारा स्नान ठंडे पानी से होता है। वे सारे शरीर को हाथ से खूब मलते हैं, या पहले कपड़े से रगड़कर पीछे हाथ से मलते हैं, और साथ-ही-साथ पूरी साँस लेने की क्रिया करते जाते हैं। सो-कर उठने पर वे स्नान करते हैं और स्नान करने पर इसकी कसरत कर लेते हैं। जब बड़ी सर्दी पड़ती हो, तब वे दुबकी लगाकर स्नान नहीं करते; परंतु कपड़े से पानी को शरीर पर लगा लेते हैं तब हाथ से खूब मलते हैं। ठंडे पानी से स्नान करने पर आरच्यजनक

गर्मी आती है और ज्यों-ज्यों वपदा पहना जाता है, त्यों-त्यों औजस कमतमाहट मालूम होती है। इस योगियों की रीति से स्नान करने का यह परिणाम होता है कि शरीर बलवान् और दृढ़-कृष्ट हो जाता है, ठमका मांस हट, बलवान् और घना हो जाता है और झुकाम तो मायः योगियों को अज्ञान ही हो जाता है। इस स्नान का अभ्यास करनेवाला मनुष्य ठम मजबूत और दृढ़-कृष्ट वृद्ध के समान हो जाता है, जो अनेक प्रकार की गर्मी-सर्दी के मौसिम को सहने में समर्थ होता है।

इस अपने शिष्यों को शुरू ही में अभ्यन्त टंडे पानी से स्नान करने में सावधान किए देने हैं। यदि तुम्हारे शरीर में जीवट की कमी हो, तब तो कदापि ऐसा मत करो। पहले शुल्बकर शीतलता के पानी से शुरू करो, तब दिनों के बोलने से उर्ध्व-उर्ध्व शरीर का जीवट बढ़ता जाय, त्यों-त्यों अधिक टंडे पानी से स्नान बिदा करो। एक प्रकार की शीतलता या ताप का जख तुम्हें अभ्यन्त शुल्बकर प्रतीत होगा, कम ठमी को पाद कर जो और धीमे ही जख से स्नान बिदा करो। सबसे के टंडे पानी से स्नान करना तुम्हें शुल्बकर होता चाहिए, न कि प्रापरिचल की भीति दुःखकर। जब आपको एक बार ठमका मज्जा मालूम हो जायगा, फिर आप बसको न छोड़ेंगे। इससे आप दिन-भर अच्छी तरह रहेंगे। पहले टंडा जख शरीर पर टाकते बहुत सरी मालूम होती है, पर थोड़े ही कर्म में प्रतिबिधा प्रारम्भ हो जानी है और गरमाहट मालूम होने लगती है। यदि आप टब में स्नान करते हों, तो एक मिनट से अधिक टब में कभी न रहें, और जब तक टब में रहे, शरीर को सूख मज्जते रहे।

यदि आप सबसे इस प्रकार स्नान करते रहेंगे, तो आपको बहुत-से लाभ स्वार्थों की आपसपकता न होगी। कभी काम बारी से स्नान कर लेना अच्छा होगा। गरम बारी से स्नान करने से बरब को सूख



मजते रहिए और चमड़े को कपड़े से खूब सुखाकर तब कपड़े पहनिए।

ये मनुष्य जिन्हें दिन को बहुत चलना था खड़े रहना पड़ा हो, उन्हें रात को सोने के पड़ले पैरों को धो डालने से अच्छा सुख मिलेगा और रात को खूब नींद आवेगी।

अब ज्यों ही आप इस अध्याय को पढ़ जायें, त्यों ही भुलवान दें। परंतु जो तरकीबें हममें बताई गई हैं, उनको परीक्षा कीजिए और देखिए कि उनसे कितना लाभ होता है। जब थोड़े दिन आप इसकी परीक्षा कर लेंगे, फिर इसे कभी न छोड़ेंगे।

### योगियों का सबेरे का स्नान

सबेरे के स्नान से सर्वोत्तम लाभ उठाने की भावना आपको नीचे लिखी हुई तरकीब से होगी। यह बहुत बल देनेवाली, शक्ति बढ़ानेवाली तरकीब है, जिससे आठ दिन-भर सुखी रहेंगे।

पड़ले इसमें थोड़ी कसरत कर लेनी होती है, जिससे रुधिरसंचार अच्छा होने लगता है और रात के सोने के बाद प्राण अच्छी तरह से शरीर में वितरित हो जाता है, जिससे शरीर स्नान करने के और उसके लाभों को पूरी तरह से उठाने के योग्य बन जाता है।

प्रारंभिक व्यायाम—( १ ) सीधे जंगी स्थिति में खड़े हो, तिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे, और हाथ बगलों में हों। ( २ ) शरीर को धीरे धीरे पैर की अँगुलियों पर उठाओ, साथ-ही-साथ धीरे-धीरे पूरी साँस खींचते जाओ। ( ३ ) साँस को भाँतर ही कुछ क्षण तक रोक रखो और शरीर को उठाने समय तक उसी स्थिति में रखो। ( ४ ) धीरे धीरे पहली स्थिति में आओ और साथ-ही-साथ नाक द्वारा हवा को भी धीरे धीरे निकालते जाओ। ( ५ ) साँस करनेवाली क्रिया कर डालो। ( ६ ) इसे कई बार करो, एक बार एक टॉग से तब दूसरी से।

जब पहली कड़ी हुई तरकीब से स्नान करो। यदि तुम कपड़े के स्नान किया चाहते हो, तो एक वर्तन में शीतल जल ले लो। जो बहुत गर्म न हो, परंतु सुखकर और ठतना ही शीतल हो कि किया जा सके।) एक मोटा कपड़ा या तौलिया लो, उसे पानी भेगोघो, और तब उसका आधा पानी निचोड़ डालो। पहले ही और कंधे से शुरू करके पीठ, पेट, जाँघ, मिचली टाँगें और तब को छूब जोर से रगड़ो। शरीर को चारों ओर से रगड़ने में दो-दो बार पानी में डुबो डुबोकर आधा निचोड़ लिया करो, तब सारे शरीर को ताज़ा ठंडा पानी मिज जाया करे। छणभर जाधो और पूरी-पूरी दो-एक सर्गों ले लो; फिर मज्जने लगो। तब जल्दी मत करो, किंतु शांति से स्नान करो। पहले दो-एक बार पानी से शरीर धोवा डरेगा, परंतु बहुत शीघ्र आदत पड़ जायगी; तब तुम्हें धरड़ा मालूम होने लगेगा। बहुत ठंडे पानी से स्नान प्रारंभ न करो, बल्कि शीतल मत करो। परंतु धीरे-धीरे शीतलता कई दिनों में आयेगी। यदि कपड़े से स्नान करने के स्थान पर टब में स्नान करना चाहते हो, तो वैसे ही पानी में टब को आधा भर लो और जब शरीर को मज्जने रहो, गुटनों के बल उसमें धँदे रहो, तब छणभर शरीर को जलमें डुबोए रहो और तब एकदम बाहर आ जाधो। आधे कपड़े से स्नान करने हो जाइँ टब में, शरीर को कई बार धुत धरड़ा तरह से हाथों से मज्जो। मनुष्य के हाथों में कुछ ऐसी शक्ति है, जिसका काम कपड़े से नहीं निकल सकता। एक बार परीक्षा करो।

जब-जब आधा ही रहे, तभी कपड़े पहन लो, तबका अनुभव करते तुम्हें क्या कारण पड़ने के स्थान पर गारे शरीर में। स्नान के परचाय जांचे लिखी हुई

( १ ) सीधे खड़े हो, अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधे फैलाओ और उन्हें कंधों की टेंचाई पर रखो, मुट्टियाँ बंधी और एक दूसरों को टूटा हों; मुट्टियों को जोर से झोका देकर पीछे बाजलों की सीध में या उसमें भी तनिक पीछे लाओ ; इससे छाती का ऊपरी भाग फैलता है ; इसे कई बार करके चण्डमर विग्राम कर लो ।

( २ ) पहली स्थिति की अंतिम दशा में आ जाओ, अर्थात् भुजाएँ बाजलों की ओर कंधों से सीधी फैली रहें ; अब मुट्टियों को एक वृत्त में घुमाओ, धाने से पीछे को, तब पीछे से आगे को ; तब बारी-बारी से दोनों मुट्टियों को वायु-चक्की की भुजाओं की भाँति घुमाओ; इसे कई बार करो । ( ३ ) सीधे खड़े हो और हाथों को सिर के ऊपर ले जाओ, हाथ खुले रहें, अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, तब बिना घुटनों को टेढ़ा किए भूमि को अँगुलियों के छोरों से स्पर्श करने का यत्न करो—यदि तुम न छू सको, तो यत्न तो पूरा करो; पहली स्थिति में आ जाओ । ( ४ ) अपने को पैरों के पंजों पर ऊपर उठाओ, इसे कई बार करो । ( ५ ) खड़े होकर अपने पैरों को दो फ्रीट के फासिले पर रखो, तब धीरे-धीरे बैठने की स्थिति में नीचे दबो और फिर पहली स्थिति में आ जाओ । इसे कई बार करो । ( ६ ) पहली कसरत को कई बार करो । ( ७ ) साफ करनेवाली क्रिया करके अन्तम कर लो ।

यह कसरत उतनी टेढ़ी नहीं है, जितनी पहले पाठ में मालूम देती है । यह ५ कसरतों का पंचमेल है, जो बहुत सादा और सरल है । इसके एक-एक खंड को समझकर अभ्यास कीजिए और एक-एक को सिद्ध कर लीजिए ; तब सबको मिला दीजिए । तब यह घड़ी की भाँति चलने लगेगी और थोड़े ही चणों में पूरी कसरत हो जावेगी । यह बहुत बल बढ़ानेवाली है, इससे सारा शरीर काम में आ जाता है ; और यदि स्नान के ठीक बाद इस

व्यसन को धार करते रहेंगे, तो नया शरीर मिल जाने का सुख मोगेंगे ।

शरीर के ऊपरी भाग को खूब मल-मलकर धो ढाकने से दिन-भर शक्ति और जीवट बने रहने हैं ; रात को कमर से नीचे पैर तक मल-मलकर धो ढाकने से रात को नींद खूब आती है और शरीर ताजा हो जाता है ।

---

# छब्बीसवाँ अध्याय

## सूर्य की शक्ति

हमारे शिष्य लोग कुछ-न-कुछ ज्योतिष के प्रारंभिक वैज्ञानिक मूलतत्त्वों से परिचित होंगे। अर्थात् सृष्टि के उस अत्यंत छोटे खंड का कुछ ज्ञान पाए होंगे, जिसका हम अपनी आँखों से उत्तम-से-उत्तम दूरबीन यंत्र के द्वारा, ज्ञान प्राप्त करते हैं, और जिसमें करोड़ों तो स्थिर तारे हैं—जो सब-के-सब सूर्य हैं; जो हमारे सूर्य के बराबर और कोई-कोई तो इससे बहुत बड़े हैं। प्रत्येक सूर्य अपने संप्रदाय-भर के ग्रहों, उपग्रहों आदि की शक्ति का केंद्र है। हमारे ग्रह-संप्रदाय के लिये शक्ति देनेवाला बड़ा केंद्र हमारा सूर्य है। हमारे ग्रह-संप्रदाय में बहुत-से तो जाने हुए ग्रह हैं और बहुत-से ऐसे भी ग्रह हैं, जिनका ज्योतिषियों को पता भी नहीं है। यह भूमि, जिस पर हम स्थित हैं, हमारे सूर्य के अनेक ग्रहों में से एक ग्रह है।

हमारा सूर्य अन्य सूर्यों की भाँति आकाश में लगातार शक्ति छोड़ रहा है; यही शक्ति ग्रहों को जीवट देती है और उन पर जीवन संभव कर देती है। सूर्य की किरणों के बिना भूमि पर जीवन असंभव हो जाता—तुच्छातितुच्छ जीव भी न जी सकते। हम सब लोग जीवट—जीवनबल—के लिये सूर्य पर अवलंबित हैं। यह जीवट जीवनबल या शक्ति वही पदार्थ है, जिसे योगी लोग प्राण कहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्राण सर्वव्यापक है; परंतु कुछ ऐसे केंद्र हुआ करते हैं, जो प्राण को खींचा और छोड़ा करते हैं—सबसे एक स्थायी धारा बहाया करते हैं। विद्युत् शक्ति सर्वव्यापक है; परंतु दिनामो ( dynamos ) और ऐसे ही अन्य केंद्र प्राण-

रफ होते हैं कि उसे संग्रह करें और घनीभूत बनाकर प्रवाहित करें। सूर्य और उसके ग्रहों के मध्य में प्राण की अनवरत धारा बहती रहती है।

यह बात मान ली गई है (आधुनिक विज्ञान भी इसमें प्रतिवाद नहीं करता) कि सूर्य जलती हुई आग की ढेरी है, एक प्रकार की बज्जती हुई भट्टी है, और जो रोशनी और गरमी हम प्राप्त करते हैं, वे हमें भट्टी की उज्योति है। परंतु योगशास्त्रियों ने इसे भिन्न ही माना है। वे यह सिखाते हैं कि यद्यपि सूर्य का संगठन अथवा ग्रहों की दशा हम लोगों की इस भूमि की दशा से इतनी भिन्न है कि मनुष्य का मन उस दशा का ठीक भावना भी नहीं कर सकता, तथापि सूर्य जलते हुए द्रव्य की वैसी ढेरी नहीं है, जैसी जलते हुए कोयले या गले हुए लोहे की ढेरियाँ हुआ करती हैं। योगी आचार्य लोग इन भावनाओं को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत उनकी यह धारणा है कि सूर्य अधिकांश उन द्रव्यों से बना है, जो हाल के आविष्कृत "रेडियम" के समान हैं। वे यह नहीं कहते कि सूर्य रेडियम ही से बना है, परंतु वे शताब्दियों से यही समझते आते हैं कि यह अनेकों ऐसे द्रव्यों से बना है, जिसके विषय में पश्चिमी संसार इतना सोच-विचार कर रहा है, और जिसकी उसके आविष्कारों ने रेडियम नाम दिया है। हम यहाँ रेडियम का वर्णन नहीं करना चाहते, परंतु केवल इतना ही कह देते हैं कि यह उन्हीं गुणों और शक्तियों से युक्त है, जिन गुणों और शक्तियों से सूर्य के बनानेवाले अवयव भी बड़े बहुत युक्त हैं। यह बात बहुत संभव है कि सूर्य के बनानेवाले अन्य अवयव भी इस पृथ्वी पर पाए जाएँ, जो रेडियम की समता रखते हों और कुछ कुछ क्रान्तों में उससे भिन्न भी हों।

यह सौर्य द्रव्य गली हुई दशा में नहीं है, और न तो जलती हुई दशा में ही है, जैसा कि हम लोग अक्सर कहा करते हैं। परंतु

वह सर्वदा अपने ग्रहों से प्राण की धार खींचा करता है, और उस प्राण को प्रकृति की किस्ती आश्चर्यमय प्रक्रिया में पकाकर फिर। ग्रहों पर वापसी धारा द्वारा भेजा करता है। जैसा कि हमारे शिष्य लोग जानते हैं, हवा ही मूल भंडार है, जहाँ से हम लोग प्राण खींचा करते हैं, परंतु यह हवा स्वयम् सूर्य से प्राण ग्रहण करती है। हम बतला आए हैं कि जिस भोजन को हम खाते हैं, वह कैसे प्राण से भरपूर रहता है, जिसे हम लेकर अपने काम में लाते हैं; परंतु पौधे अपना प्राण सूर्य से ग्रहण करते हैं। इस सूर्यमंडल या सूर्य-संप्रदाय के लिये सूर्य ही प्राण का महाभंडार है, जो एक बृहत् डिनामो की भाँति अपनी धाराओं को इस सूर्यसंप्रदाय के प्रत्येक छोरों तक सर्वदा भेजा करता है और जीवन को, शारीरिक जीवन को, संभव बनाए है।

यह किताब वह स्थान नहीं है, जहाँ सूर्य की क्रियाओं की आश्चर्यजनक बातों का वर्णन किया जाय। योगी लोग इन बातों को अच्छी तरह जानते हैं। हम यहाँ पर अपने शिष्यों को केवल इतना ही बतला दिया चाहते हैं कि वे समझ जायँ कि सूर्य ही प्राण का आदि भंडार है और वही सब प्राणियों के जीवन का मूल है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यही है कि आपके चित्त पर बिठाल दिया जाय कि सूर्य की किरणों शक्ति और जीवन से भरी हुई रहती हैं, जिन्हें हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण काम में लाया करते हैं, परंतु हम उतना काम में नहीं लाने, जितना जा सकते थे। आजकल के सभी मनुष्य सूर्य से भय खाते हुए मालूम देते हैं। वे अपने कमरों को ढँधेरा बना देते हैं, अपने शरीर पर अनेक कपड़े पहन लेते हैं कि जिसमें सूर्य की किरणों से बचे रहें। वे सूर्य की किरणों से दूर भागते हैं। ठीक यहाँ ही स्मरण रखिए कि जब हम सूर्य की किरणों की बात कर रहे हैं, तो सूर्य की गर्मी से हमारा मतलब नहीं

है। मर्त्यों को मृत्यु के दिनों के मृत्यु के पदों के संयोजन में  
 उनके दो शरीर होना है; मृत्यु के वायुमंडल के बाहर मर्त्यों के  
 शरीर का जो आकार है, वही बहुत बड़ा मर्त्य पदों है, क्योंकि वहाँ  
 मृत्यु के दिनों के आकारों के देनेवाला बंदूक पदों ही मर्त्य है।  
 इसलिए जब हम कहते हैं कि मृत्यु की दिनों का नाम उदाहरण, तो  
 हमारा मतलब यह नहीं है कि जेठ की दुपहरी में आप बाहर छोटिए।

मृत्यु की दिनों में दूर भागने की आदत छोड़िए। अपनी कोठ-  
 रियों में धूप खाने कीजिए। अपने घरों और बिंदीनों में इतना  
 मन रहिए। अपने उल्लस दाजान की गर्वश बंद मन रहिए। आप  
 अपनी कोठरी को ऐसा महानता नहीं समझना चाहते कि जिसमें मृत्यु  
 की धूप ही न जाए, हम ऐसा ही प्रयास करते हैं। मुबद्द होते हैं  
 अपनी निश्चयों को छोड़ दीजिए कि धूप गांधे या परार्पित होकर  
 कोठरी में जा जाए, तो आपको ऐसा वायुमंडल मिल जाएगा कि  
 शनैः-शनैः आपके घर में स्वास्थ्य, बल और जीवत भर जायेंगे और  
 रोग, निर्वलता और निर्जीवता भाग जायेंगी—हँसकर का प्रवेश होगा  
 और दरिद्र निकल भागेगा।

घोड़े-घोड़े समय पर धूप खा लिया कीजिए। सबक की धूप-  
 वाली बालू को मन छोड़िए। हाँ, जब बहुत ही ज्यादा गरम  
 मौसिम हो या दुपहरी हो उस वक्त आप धूपवाली बालू से बचने  
 का ध्यान कर सकते हैं। कभी-कभी घाम से स्नान किया कीजिए।  
 सूर्योदय से पहले ही जग आइए और धूप में खड़े हो, बैठ या खड़े  
 आइए कि आपको सारा शरीर ताज़ा हो जाए। यदि आपको अक-  
 सर मिले, तो आप शरीर के सब बलों को उतारकर बिना बल की  
 बाधा के घाम खा लिया कीजिए। यदि आपने इसकी परीक्षा कभी  
 नहीं की है, तो आप अपने विश्वास करेंगे कि घाम खाने में कितना  
 शुभ है और घाम खाने के परचान कितना बल मालूम देने लगता।



है ? इस विषय को बिना विचारे मत छोड़ जाइए। सूर्य की किरणों की थोड़ी परीक्षा कर लीजिए और सूर्य से निःसृत निर्बाध प्राण की धार का कुछ लाभ उठा लिया कीजिए। यदि शरीर के किसी भाग में कोई विशेष निर्बलता हो, तो उस भाग पर सीधी धूप लगाने से आपको बहुत लाभ प्रतीत होगा।

प्रातःकाल की सूर्य की किरणें अत्यंत लाभदायक होती हैं; और जिनकी आदत सवेरे जगने और इन किरणों से लाभ उठाने की पड़ गई है, उन्हें बड़भागी समझना चाहिए और वे बधाई के योग्य हैं। पाँच घंटा दिन चढ़ जाने के बाद किरणों की प्राणदायिनी शक्ति घटने लगती है और शाम तक क्रमशः घटती ही जाती है। आप इयाल करेंगे कि फल की वे ब्यारियाँ या गमले, जिन्हें प्रातः-काल की धूप मिलती है, उनकी अपेक्षा जिन्हें दोपहर के बाद की धूप मिलती है, अधिक हरे-भरे और सुखी रहते हैं। फूल के मख प्रेमी इस बात को समझते हैं कि सूर्य की धूप पौधों के लिये उतनी ही आवश्यक है, जितना पानी, हवा और अच्छी मिट्टी आव-श्यक है। थोड़ा पौधों का अध्ययन कीजिए—प्रकृति के मार्ग पर आ जाइए और वहाँ अपना सबक पढ़िए, धूप और हवा पुष्टि की आश्चर्यजनक ओपधि हैं—आप क्यों और अधिक स्वच्छंदता से इनका व्यवहार नहीं करते ?

इस किताब में अन्यत्र हमने हवा, भोजन, पानी आदि से अधिक प्राण ग्रहण करनेवाली मन की शक्ति के विषय में बहुत कुछ कहा है। वही बात सूर्य की किरणों से भी प्राण ग्रहण करने में लागती है। आप उचित मानसिक स्थिति द्वारा लाभ को अधिक बढ़ा सकते हैं। सवेरे की धूप में बाहर निकल जाइए—सिर को ऊँचा कर लीजिए, कंधों को पीछे खींच लीजिए, और उस हवा की पूरी ताँस लीजिए, जो सूर्य की किरणों द्वारा प्राण से भरी जा रही है। अपने शरीर पर

धूप पढ़ने दीजिए, और तब लिखें हुए मंत्र या ऐसे ही अन्य मंत्र को जपते हुए मंत्र में कही बातों की मानसिक कल्पना करते जाएं। मंत्र यह है—“मैं प्रकृति की सुंदर धूप का स्नान कर रहा हूँ—मैं उसमें से जीवन, स्वास्थ्य, बल और जीवट ग्रहण कर रहा हूँ। वह मुझे यज्ञधान् और शक्तिमान् बना रही है। मैं प्राण की अंतर्गांधी धार का अनुभव कर रहा हूँ—मैं अनुभव करता हूँ कि वह धार हमारे शरीर में सिर से पैर तक सर्वत्र दौड़ रही है और सारे शरीर को यज्ञधान् बना रही है। मैं सूर्य की धूप को चाहता हूँ और उसके सब लाभों को ग्रहण करता हूँ।”

जब-जब आपको अवसर मिले, इसका अभ्यास कर लिया कीजिए और तब आपको क्रमशः मालूम होने लगेगा कि इतने दिनों तक आपने कैसी अच्छी चीज़ से लाभ उठाना छोड़ दिया था कि आप धूप से भागने थे। अनुचित रीति से दुपहरी की धूप गरम दिनों में मत खाओ। परंतु चाहे जाड़ा हो या गरमी, सबेरे की धूप कुछ भी हानि न करेगी। सूर्य की धूप और उसके सब गुणों की प्रेम से चाहना करो।

---

# सत्ताईसवाँ अध्याय

## ताज़ी हवा

अब इस अध्याय को छोड़ मत जाइए कि इसमें वही साधारण विषय होगा। यदि आपकी इच्छा इसे छोड़ जाने की होती हो, तो आप ही ऐसे मनुष्य हैं, जिनके लिये यह अध्याय अभीष्ट और अत्यंत आवश्यक है। जिन लोगों ने इस बात पर शौर किया है और ताज़ी हवा के लाभ और आवश्यकता को कुछ-कुछ समझ लिया है, वे इस अध्याय को कभी न छोड़ जायेंगे, वे उस अच्छी बात को फिर पढ़ना चाहेंगे। और यदि आप इस विषय को पसंद नहीं करते और इसको छोड़ जाना चाहते हैं, तब निश्चय आपको इसकी आवश्यकता है। इस किताब के अन्य अध्यायों में हमने साँस लेने की प्रधानता को—आभ्यन्तरी और बाह्य दोनों पटलों में—दिखाया है। इस अध्याय में साँस लेने का विषय फिर न उठाया जायगा, परंतु ताज़ी हवा और पुष्कल हवा के विषय में थोड़ा उपदेश दे दिया जायगा। यह उपदेश हमारे देश के लिये अत्यंत आवश्यक है जहाँ अब बंद कोठरियों और ऐसे घरों का रिवाज है, जिनमें पवन का भी प्रवेश न होने पावे। हमने आप लोगों को सही साँस लेने की प्रधानता को दिखा दिया है, परंतु यह पाठ आपको क्या लाभ पहुँचावेगा, जब साँस लेने के लिये अच्छी हवा हीन रहेगी।

बंद कोठरियों में जहाँ अच्छी तरह हवा का आवागमन नहीं है, बंद रहना अत्यंत मूर्खता का प्रयास है। फेफड़ों की क्रियाओं और कर्तव्यों को जानकर भी मनुष्य बंद घर की गंदी हवा को शत्रु न समझे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय पर आइए थोड़ा साधारण सीधा विचार कर लें।

कारणों समझ होता कि फेंकेंगे सर्वेदा शरीर-संघ के रहितान और निष्कामे दानिकारक पदार्थों को फेंक करने हैं। सौम्य शरीर को धातु बनेवाला कौन है, जो निष्कामे द्रव्यों, रही पदार्थों और मृत देहा-शुद्धों को शरीर के प्रत्येक अंग से निकालकर फेंक करती है। फेंकड़ों से निकाले हुए पदार्थ टलने ही गंदे होते हैं, जिनका चमड़े के छिद्रों से निकाला हुआ पानी, गुदों से निकाला हुआ मूत्र और मज्जाशय से निकाला हुआ मीछा, गंदे हुआ करते हैं। मरघ बात तो यह है कि यदि शरीर-संघ में पानी कारी न पहुँचाया जाय, तो प्रकृति फेंकड़ों से गुदों का काम लेती है और शरीर के विपैले निष्कामे पदार्थों को फेंकड़ों द्वारा बाहर फेंकती है। यदि घेंतदियाँ मिट्टी और फुलझों को ठीक तरह से नहीं निकाल बाहर करती, तो मज्जाशय की बहुता-सी चीजें शरीर में ऊपर चढ़ जातो हैं और बाहर निकलने की राह ढूँढ़ने लगती हैं कि फेंकड़े उन्हें लेकर सौम्य द्वारा बाहर फेंक देने हैं। तनिक विचार तो कीजिए कि यदि आप बंद घर में अपने को बंद करके सोवेंगे, तो आप प्रत्येक घंटे में आठ गैलन कार्बोनिक एसिड गैस और अन्य गंदे पदार्थ उस कोठरी के वायुमंडल में मिलाते रहेंगे। आठ घंटे में आप ६४ गैलन छोड़ेंगे। यदि उस कोठरी में दो आदमी सोते हों, तो गैलनों को दो से गुणा कर दीजिए। ज्यों-ज्यों कोठरी की हवा गंदी होती जाती है, त्यों-त्यों आप धार-धार उसी गंदी और विपैली हवा को सौम्य द्वारा खींचते जाते हैं और हवा का गुण प्रत्येक सौम्य में अधिक-अधिक बिगड़ता जाता है। सवेरे जब कोई मनुष्य आपकी कोठरी में आता है, और उसे दुर्गंध मालूम होती है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि आप तो खिड़की भी बंद कर दिए थे। इस प्रकार के अष्ट कमरे में रात-भर सोने के परचात् यदि सवेरे आप उदास, चिड़-चिड़े, शानहीन, मगबालू और हर तरह से निष्कामे मालूम हों, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

आपने कभी सोचा भी है कि आप सोते किसलिये हैं ? आप हरलिये सोते हैं कि प्रकृति को अवसर मिले कि दिन-भर में जो कुछ शरीर-यंत्र में छोड़न हुई है, रात को उसकी मरम्मत हो जावे। आप उसकी शक्तियों का व्यवहार करना छोड़ देते हैं और उसे अवसर देते हैं कि वह आपके शरीर-यंत्र की ऐसी मरम्मत कर दे और बना दे कि आप सबेरे फिर हर तरह से ठीक हो जायें। इस काम को अच्छी तरह से करने के लिये उसे कम-से-कम सामूली भी दशा तो चाहिए। वह तो आशा करती है कि उसको ऐसी हवा मिलनी चाहिए, जिसमें आक्सीजन की उचित मात्रा हो—ऐसी हवा हो जो पिछले दिन भूष खाकर फिर प्राण से भरपूर हो गई हो। ऐसी हवा के स्थान में आप बहुत ही परिमित हवा देते हैं, जो आधी तो शरीर की भीतरी रदियात के मिलने से विष-भय हो जाती है। ऐसी दशा में रात को सोने पर भी आपके शरीर-यंत्र की पूरी मरम्मत न हो सके, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

जिस कोशरी से वैसी दुर्गंध आती हो, जैसी हवा के अच्छे आवागमन से ही न सोनेवाली कोठरी से आया करता है, वह कोठरी तब तक आपके सोने के योग्य नहीं है, जब तक उसकी सब हवा निकलकर उसके स्थान में स्वच्छ ताज़ी हवा न भर जाय। सोने के कमरे की हवा को उतना ही साफ़ और ताज़ी होना चाहिए, जितना बाहर मैदान की हवा स्वच्छ और ताज़ी हुआ करती है। सर्दी लगाने का भय न कीजिए। स्मरण रखिए कि सभी रोग के लिये अत्यंत अर्वाचीन वैज्ञानिक शोधों से यह निश्चित हुई है कि रात को 'रोगी' ताज़ी हवा में रहना जाय, इस बात की कुछ परवाह नहीं कि सर्दी कितनी है। धूप छोड़न रखिए; और जब आपको आदत पड़ जाय तो सर्दी भी न पड़ेगी। प्रकृति के मार्ग पर आप

थाएँ। ताज़ी हवा का यह मतलब नहीं है कि आप ओधी या हवा के झोंकों में सोते रहें।

जो रात सोने के कमरे के लिये ठीक बतलाई गई है, वही बात रहने और दफ़्तर के कमरों के लिये भी ठीक है। यह सच है कि ज़ाहों में कोई बाहरी हवा को अंदर अधिक न जाने देगा, क्योंकि उससे कमरे की हवा अत्यधिक सड़ हो जावेगी; परंतु सड़ आयो-हवा में भी हवा को स्वच्छ रखने के लिये बहुत उपाय हो सकते हैं। थोड़े-थोड़े असें पर खिड़की खोल दिया कीजिए कि हवा को भवसर मिल जाय कि वह अच्छी तरह आ जाय। रात में इस बात को न भूलिए कि लैप और गैस की रोशनी भी आवसीजन खर्च कर रहे हैं। इसलिये थोड़े-थोड़े असें पर सब बातों को ताज़ा कर दिया कीजिए। बिना तो यह होगा कि हवा की मज़ाई के बारे में कोई अच्छी किताब पढ़ जाजिए; परंतु यदि यह न हो सके, तो जितना हम कर पाए हैं, उतने ही का पूरा स्मरण रखिए, तो आपकी साधारण बुद्धि शेष सब कार्य कर देगी।

प्रतिदिन बाहर निकल जाया करो और ताज़ी हवा शरीर पर खाने दो। ताज़ी हवा जीवनदायक और स्वास्थ्यकर गुणों से भरी रहती है। इस बात को आप सब खोग जानने हैं और जिद्दी-भर जानते पाए हैं। परंतु उस पर भी आप खोग घर के भीतर ही पड़े रहते हैं, जो प्राण प्रकृति के दरेश के बिलकुल विरोंध है। यदि आप भले-खेले नहीं रहने, तो हममें आश्चर्य ही क्या है? प्रकृति का नियम तोइकर कोई हँह पाए बिना नहीं रह सकता। हवा से हरिए मन। प्रकृति का दरेश है कि आप हवा का व्यवहार करें—बद आपकी प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुसार है। इसलिये हमसे हरिए मन। बिनु इसकी आदना कीजिए। जब आप बाहर जायें और ताज़ी हवा में रहें, तो मन हो-मन देगा करें—“मैं प्रकृति

का बधा हूँ—उसने मुझे ऐसी पवित्र हवा काम में लाने के लिये दी है, जिसमें मैं बलवान् और अश्वत्थ हो जाऊँ और वैसा ही बना रहूँ। मैं गर्भ के द्वारा व्यास्य, बल और शक्ति भीतर खींच रहा हूँ। मैं अपने शरीर पर लगती हुई हवा के सुख को भोग रहा हूँ और मैं उसके कामकर पत्तों को अनुभव कर रहा हूँ। मैं प्रकृति का बधा हूँ और उसके विषे हुए पदार्थों में सुख भोगता हूँ।” हवा का सुख भोगना सीखिए, फिर आप सुखी हो जावेंगे।

## अट्ठाईसवाँ अध्याय

निद्रा ज्ञान को स्वाभाविक पूरा करनेवाली है

प्रकृति को उन वृत्तियों में, जो मनुष्यों के जानने के योग्य हैं निद्रा ऐसी मदह और सरल वृत्ति मालूम होती है कि इसके लिये किसी शिक्षा या सलाह देने की आवश्यकता न होनी चाहती थी। बच्चे को निद्रा की प्रधानता और आवश्यकता जानने के लिये टीका-टिप्पणी-सहित किसी किताब की आवश्यकता नहीं होती—वह सो ही जाना है, बस मामला खतम है। युवा मनुष्य की भी, यदि वह प्रकृति के पथ पर रहता, तो यही दशा होती। परंतु यह तो ऐसे बनावटी घिरावों से घिर गया है कि इसके लिये प्राकृतिक जीवन जीना असंभव-सा हो गया है। परंतु यह भी अनहित घिरावों के होते हुए भी, पुनरपि प्राकृतिक मार्ग पर आ जाने में बहुत कुछ कर सकता है।

प्रकृति के विरुद्ध भ्रष्टता की घादों में, इसके सोने और जागने की घादों अत्यंत गुरी हो गई हैं। वह उन घड़ियों को, जिन्हें प्रकृति ने मली भौंति सोने के लिये दिया है, जोश और सामाजिक आनंद-प्रमोद में व्यर्थ छो देता है; और उन घड़ियों-पहरों में सोता है, जिन्हें प्रकृति ने उसे जीवट और शक्ति ग्रहण करने के लिये दिया था। उत्तम-से-उत्तम निद्रा सूर्यास्त और आधी रात के बीच के समय में हुआ करती है; और उत्तम-से-उत्तम समय, बाहरी काम करने और जीवट ग्रहण करने के लिये प्रातःकाल के कुछ घंटे हुआ करने हैं। इस प्रकार हम दोनों ओर खोते हैं और उस पर भी आश्चर्य करते हैं कि क्यों अजानी ही में या उससे भी पहले स्वास्थ्य बिगड़ गया।



नौद की दशा में प्रकृति मरम्मत का कार्य करती है और यह बात अत्यंत आवश्यक है कि इसके लिये उसे उचित अवसर दिया जाय। हम सोने के विषय में नियमावली बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, क्योंकि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ हुआ करती हैं; यह अध्याय कुछ थोड़ा-सा दिग्दर्शन के लिये दे दिया गया है। साधारण रीति से प्रकृति ८ घंटा नौद के लिये चाहती है।

सर्वदा हवा के भली भाँति से आने-जानेवाली खुली कोठरी में सोया कीजिए, जैसा कि ताज़ी हवावाले अध्याय में वर्णन किया गया है। ओदन काफ़ी ओढ़ लीजिए कि जिसमें सुख रहे; परंतु बहुत ही भारी ओढ़नों के नीचे दफ़न मत हो जाइए, जैसा कि बहुत-से घरों में दस्तूर हुआ करता है। यह अधिकतर आदत ढालने का मामला है। आप जितने भारी-भारी ओढ़न ओढ़ते हैं, उनकी अपेक्षा हलके ओढ़नों से भी अच्छी तरह काम चलता हुआ देखकर आप आश्चर्य में आ जायेंगे। जिन कपड़ों को आप दिन में पहने थे, उन्हीं को पहने हुए रात को कभी मत जाइए—यह आदत न तो स्वास्थ्य-दायक है और न सफ़ाई ही की है। सिर के नीचे बहुत-सी तकियाओं का व्यवहार मत कीजिए—एक हलकी-सी छोटी तकिया काफ़ी है। शरीर की प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर दीजिए और प्रत्येक नाड़ी में से तनाव खींच लीजिए और ज्यों ही ओढ़न ओढ़िए, सब तनावों और खिचावों से हटकर निष्क्रिय होकर पड़ जाइए। लेटने पर दिन के कार्यों की आलोचना मत किया कीजिए। यदि आप इस नियम के अनुकूल चलेंगे, तो तंदुरुस्त बरचे की भाँति मज़ सो जायेंगे। सोते हुए बच्चों को ग़ौर से देखिए कि वह सोते समय कैसे सो जाता है और उसी का अनुकरण कीजिए। जब आप सोने जाइए, तो आप भी बच्चा हो जाइए और बचपन ही की वेदनाओं को धारण कर लीजिए, कि आप भी बच्चे ही की भाँति सो जाता करेंगे। केव

इतना ही उपदेश एक सुन्दर जिल्दवाली किताब में छापने के योग्य है, क्योंकि यदि हम उपदेश का अनुसरण किया जाय, तो मानव-समाज बहुत कुछ उन्नत हो जाय।

यदि किसी मनुष्य का मानस की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो जाय और यह विदित हो जाय कि सृष्टि में उसका पद क्या है, तो वह बच्चे ही की भाँति विधाम में निमग्न हो जाय। वह सृष्टि में अपने को निर्द्वन्द्व समझता है और विरव के शासन करनेवाली शक्ति में इतना विरवाम और भरोसा रखता है कि वह बच्चे की भाँति अपने शरीर को ढीला कर देता है और अपने मन पर से तनाव को धींच लेता है और क्रमशः विधाममय नींद में निमग्न हो जाता है।

उन मनुष्यों के लिये, जो नींद न आने के कारण दुखी रहा करते हैं, नींद बुझाने के लिये हम कोई विशेष नियम न देंगे। हमारा विरवाम है कि यदि वे विचारयुक्त और प्राकृतिक जीवन की तरकीबों का अनुसरण करेंगे, तो वे बिना किसी दवा सलाह के पाए ही स्वभाव ही से आप-से-आप सो जाया करेंगे। परंतु यहाँ पर उन लोगों के लिये, जो साधन कर रहे हैं, दो-एक बातों का कह देना अच्छा ही होगा। सोने के पहले टोंगों और पैरों को ठंडे पानी से धो टाँजने से नींद आती है। मन को अपने चरखों पर एकाग्र करने से भी बहुतों को अच्छा लाभ होता है, क्योंकि रुधिर का प्रवाह चरखों ही की ओर अधिक झुक जाता है और मस्तिष्क को विधाम मिल जाता है। सबसे ऊपर यह बात है कि नींद बुझाने की कोशिश कभी मन कीजिए; यह सोने की इच्छा रखनेवाले के लिये अत्यंत पुरी बात है, क्योंकि इसका विपरीत ही फल होता है। यदि आप इसका प्रयास ही करें, तो बेइतर तरकीब यह है कि आप ऐसी मानसिक स्थिति धारण कर लीजिए कि चाहे मृत हो जायें या न सो जायें,

इसकी कुछ चिंता ही नहीं; यह देखिए कि शरीर और मन सब प्रकार से विना तगाव के ढीले तो हो गए हैं, और आप सब प्रकार से संतुष्ट तो हैं। अपने को थका हुआ बच्चा कल्पना कर लीजिए कि आधा ऊँघते हुए विश्राम कर रहे हैं, न तो पूरा सो ही गए हैं और न पूरा जागते ही हैं, बस ऐसा ही कीजिए। बहुत रात तक चिंता मत करते रहिए कि अब भी नींद नहीं आई, केवल वर्तमान क्षण में संतुष्ट होकर निश्चित हो जाएँ और निष्क्रियता का सुख भोगिए।

शिथिलीकरण के अध्याय में जो कसरतें दी गई हैं, उनसे आप इच्छानुसार अपने को ढीला कर सकेंगे और जिनको नींद न आने का दुःख भोगना पड़ता है, उनको मालूम होगा कि उनकी सभी आदतें बदल गई हैं।

अब हम जानते हैं कि हम सभी शिष्यों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे बच्चे की भाँति अथवा किसान की तरह सवेरे ही सो जायेंगे और सवेरे ही जग उठेंगे। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसा ही होता; परंतु हम समझते हैं कि अर्वाचीन जीवन में, विशेष करके बड़े-बड़े नगरों में कैसी-कैसी आवश्यकताएँ पड़ जाती हैं। इसलिये हम अपने शिष्यों से यही अनुरोध आग्रहपूर्वक करते हैं कि इस विषय में जहाँ तक हो सके, प्रकृति के निकट रहने का यत्न कीजिए। जहाँ तक हो सके अधिक रात तक जागना और अपने को जोरा में रखना तर्क कर दीजिए; और जब अवसर मिले, सवेरे सोइए और सवेरे ही जगिए। हम जानते हैं कि ऐसा करने से आपकी उस बात में बाधा पड़ेगी, जिसे आप आनंद समझे हुए हैं; परंतु हमारा यही निवेदन है कि इस "आनंद" में भी आप विश्राम कर लीजिए। देर का सवेरा मानव जाति फिर सादे तरीकों से जीने की ओर वापस लौटने का एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

जायगा, जैसा आज तक भले आदमियों में राजा, अमीर आदि का व्यवहार और शराब पीकर मनवाला हो जाना आदि गिने जाते हैं। परन्तु सब तक हम यही कह सकते हैं कि जहाँ तक करते थके, हम विषय में करते रहिए।

यदि आपको दिन की दोपहरी में कुछ समय मिल जाय, या अन्य कोई समय में, तो आपको मालूम हो जायगा कि आपने घंटे के शरीर के शिथिलीकरण अथवा निद्रा से आपके शरीर में ताज़गी आ जायगी और उठने पर आप बेहतर कार्य करने के योग्य हो जाएंगे। बहुत-से लब्ध प्रसिद्ध कामकाजी और रोज़गारी मनुष्य इस गूढ़ भेद को जान गए हैं, और जब नींद-चाकर खोंग मिलनेवालों से कहते हैं कि मासिक आध घंटे के लिये बहुत ही आवश्यक काम में कैसे हैं, तो अक्सर यह बान रहती है कि वे चारपाई पर पड़े हुए अपने शरीर को ढोला किए हुए लंबी साँसें लेते रहते हैं, और प्रकृति को ऐसा अवसर देते रहते हैं कि वह ताज़गी दे दे। अपने काम के बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा विराम देने से मनुष्य उतने काम का दूना काम कर सकता है, जितना बिना विराम किए करता था। हे परिश्रमी जनो, इस बात पर विचार करो और अपने परिश्रम के बीच-बीच में शिथिलीकरण और विराम के द्वारा तुम परिश्रम को और भी अधिक तेज़ और लाभदायक बना सकते हो। थोड़े-से शिथिलीकरण से नई ताज़गी आ जाती है और कठिन परिश्रम की योग्यता हो जाती है।

# उनतीसवाँ अध्याय

## नवजनन

इस अध्याय में हम आपके ध्यान को एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करेंगे, जो मानव जाति के लिये अत्यंत हितकर है, परंतु जिस पर विचार करने के लिये मानव जाति तैयार नहीं है। इस विषय पर सर्वसाधारण को मति की वर्तमान स्थिति के कारण इच्छा-मुक्त या आवश्यकतानुसार साफ़-साफ़ लिखना असंभव है; क्योंकि हम विषय के सभी लेख अश्लील और अपवित्र इंगित किए जाते हैं, यद्यपि लेखक का उद्देश सर्वसाधारण की अश्लील और अपवित्र तथा अनुचित क्रियाओं का रोकना ही क्यों न हो। तथापि कुछ निर्भय लेखकों ने सर्वसाधारण को किसी-न-किसी प्रकार से इस नवजनन के विषय से ज्ञासी तौर पर परिचित करा दिया है, जिससे हमारे पाठकों में से अधिकतर मनुष्य हमारे भाव को समझ जायेंगे।

हम कामशास्त्र-ऐसे प्रधान विषय को नहीं वर्णन किया चाहते, क्योंकि उसके वर्णन में तो अलग ही एक अच्छी किताब तैयार हो जायगी; और इसके अलावे इस किताब में उस शास्त्र की सविस्तर व्याख्या करने की चेष्टा उचित भी नहीं है। हम कुछ बात नवजनन के विषय में कहेंगे। मनुष्य लोग जो अधिक प्रसंग करते हैं और सहृदयियों की अधिक प्रसंग के लिये विवश करते हैं, उसको योगी लोग बिनाकुल प्रकृति के विरुद्ध समझते हैं। उनका यह विश्वास है कि रज और वीर्य ये इतने अनमोल पदार्थ हैं कि नष्ट करने के योग्य नहीं हैं, और जो मनुष्य ऐसा करता है, वह इस विषय में पशु से भी नीचे गिर जाता है। सिर्फ़ एक या दो को छोड़कर शेष सब नीचे जंतु केवल संतान

के लिये प्रसंग बनते हैं ; यदि प्रसंग-निष्ठता तथा स्व-संयम का भाव  
विपरीत अनुभव बनने दें, वह भीषण उद्वेगों को ही एक तरह नहीं  
करता है ।

यों-यों मानव ज्ञानि अपने जीवन में उद्वेग बनती जाती है,  
जो-जो पति और पत्नी के मध्य में अनुभव बनने पर प्रकट होने हैं  
और उनमें परस्पर उच्च भावों का देना-लेना होने लगता है, जो  
पुरुषों ही में नहीं होता और न जो पशुपक्षी भौतिक मनुष्यों ही में  
होता । यह बात उद्बोधमाना और व्याख्यात्मक गुण और क्षियों के  
बोटे की है । पति और पत्नी के मध्य में समुचित संबंध रहने से उद्वेग,  
शक्ति और समनता प्राप्त होती है न कि शान्ति, निषेधता और दुर्ज-  
नता, जो कि केवल विज्ञानिता से उत्पन्न हुआ करता है । यही कारण  
है कि पति-पत्नी में यदि एक उच्च भाव और दूसरा नीच भाव का  
हूँ, तो दोनों एक-दूसरे गति नहीं कर सकने, एक भागें घटा चाहता  
है, तो दूसरा पाँदे हटने का प्रयत्न करता है और इसलिये धैर्यमय और  
विरोध हो जाता करता है । ये दोनों भिन्न भिन्न जोकों में रहने लगते  
हैं और वे परस्पर एक-दूसरे में उस सुख को नहीं पाते, जिसकी उन्हें  
अभिलाषा होती है । कम हम इस विषय में केवल इतना ही कहा  
चाहते हैं । इस विषय पर बहुत अच्छी-अच्छी किताबें लिखी गई हैं । जहाँ  
उच्च विचार के ग्रंथ मिलते हों, वहाँ पता लगाने से इन किताबों का  
पता लग सकता है । अब आगे इस अध्याय में हम रज-वीर्य की  
रक्षा की महिमा के विषय में कहेंगे ।

यद्यपि योगी लोग प्रवृत्त रहकर ऐसे जीवन में रहते हैं कि  
पति-पत्नी-भाव या उनके प्रसंग की बात ही नहीं रहती, तो भी योगी  
लोग जननेन्द्रियों के यत्नवान् होने और उनका प्रभाव सारे शरीर पर  
पड़ने की महिमा को भली भाँति समझते हैं । इन इंद्रियों के नियंत्रण  
हो जाने से सारा आधिभौतिक शरीर-यंत्र नियंत्रण हो जाता है और-

दुःख भोगता है। पूरी साँस लेने से ( जिसका वर्णन पहले हो चुका है ) एक ऐसा ताल उत्पन्न होता है, जो इस मुख्य अंग को स्वाभाविक स्थिति में रखने के लिये स्वयं प्रकृति की आदि ही से रची हुई तरकीब है; इस पूरी साँसक्रिया द्वारा जनन-शक्ति सुदृढ़ और जीवटवाली हो जाती है और इस प्रकार सहानुभवी क्रिया द्वारा सारा शरीर चलवान् और सुदृढ़ हो जाना है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूरी साँस की क्रिया से कामवृत्ति जगती है—किंतु इससे बिलकुल ही पृथक् योगी लोग ब्रह्मचर्य और काम-दमन के पक्षपाती होते हैं, वे वैवाहिक गैटजोड़े में और अन्यत्र भी सर्वत्र पवित्रता चाहते हैं। उन लोगों ने स्वयं काम को दमन करना सीखा है, और वे काम को हृन्दा और मन का वशवर्ती बना ढाकते हैं। परंतु काम के दमन करने का अर्थ नपुंसकता नहीं है, योगियों की यह शिक्षा है कि जिन पुरुष और स्त्रियों के जननावयव प्राकृतिक और सुदृढ़ हैं, उनका संकल्प ऐसा प्रबल होगा कि जिससे वह अपने को वश में रख सकेगा। योगियों का यह विश्वास है कि जननेन्द्रियों की निर्यत्नता ही के कारण कामातुरता होती है।

योगी लोग यह भी जानते हैं कि कामशक्ति को परिवर्तित करके कैसे उसे शारीरिक और मानसिक विकास में लगा सकते हैं कि जिसमें वह व्यर्थ न जाय, जैसा कि मूर्ख मनुष्यों में वह नष्ट हुआ करती है। आगे चलकर हम योगियों की एक ऐसी कसरत बताते हैं, जिससे काम-शक्ति मानसिक और शारीरिक बल में परिवर्तित हो जाती है। चाहे शिष्य योगी के इन्द्रियसौच को पबंध करे या न करे, पर यह तो उसे मालूम हो ही जायगा कि पूरी साँस से इन अवयवों में इतनी शक्ति आवेगी, जितनी और किसी उपाय से नहीं आ सकती। स्मरण रखिए कि हम प्राकृतिक स्वस्थता का प्रतिपादन कर रहे हैं, न कि अस्वाभाविक वृद्धि का। योगी कामी

को जो यह दर्शन होगा कि आत्मिक का कार्य योग की इच्छा का कम होगा है; और निरंतर अनुभव को यह मान्य होगा कि इसका कार्य शरीर में ज्ञान का ज्ञान और उच्च निर्बंधता में सुटकारा पा जाता है, जो यह सब उसे अनुभव बनाए रखे। हम यह नहीं चाहते कि यहाँ पर हमारी बातों को समझने में आरंभ हो। योगी का आदर्श यह है कि शरीर अपने सब अवयवों में सुरक्षित हो और अपनी प्रकृत इन्द्रियों के आचरण में उच्चताओं में लागू होकर रहे।

योगी लोग पुरुषों और स्त्रियों के बीच और राज के सुस्पष्टता तथा सुस्पष्टता का बहुत बड़ा ज्ञान रखते हैं। इस विषय की कुछ बातें योगियों की प्रवृत्ति से निरंतर बड़ी-बड़ी अन्य मनुष्यों में फैल गई हैं, और उन बातों को कुछ परिचित मनुष्यों ने जिन हाथों है और उनसे बहुत काम हुआ है। इस किताब में हम उस विषय के आंतरिक विचारों का वर्णन करेंगे, परंतु एक ऐसी तरीके पर आपसे ध्यान को आकर्षित करेंगे, जिससे शिष्य अपनी जननशक्ति को नष्ट करने के स्थान में उसे सारे शरीर के जिये जीवट रूप में परिवर्तित कर सकता है। जननशक्ति उत्पत्तिकारिणी शक्ति है, और सारे शरीर-यंत्र द्वारा ग्रहण करके सब और जीवट रूप में परिवर्तित हो सकती है; इस प्रकार जनन के स्थान में मजबूत कर सकती है। यदि हमारे मजबूत लोग इन गूढ़ तत्वों को समझ जाते, तो वे आनेवाले अनेक विपत्तियों के समूह और दुःखों से सुटकारा पा जाते और मन, बुद्धि, धर्म और शरीर से सब प्रकार बलिष्ठ हो जाते।

जननशक्ति का यह परिवर्तन अभ्यासी को बहुत जीवट देता है। यह उन्हें उस योजन से भर देता है, जो उनके शरीर में तेज और प्रताप रूप से झलकने लगता है। इस प्रकार से परिवर्तित



शक्ति दूसरे मार्गों में ले जाकर बड़े-बड़े कामों में लगाई जा सकती है। प्रकृति ने प्राण के एक अत्यंत शक्तिमान् रूपांतर को इस जनन-शक्ति के रूप में एकत्रित कर दिया है। अधिक-से-अधिक जांबट शक्ति बहुत थोड़े परिमाण में एकत्रित की गई है। जंतुओं के जीवन में जननावयव एक बड़े प्राणभंडार हैं, और उनकी शक्ति को ऊपर खींचकर चाहे उसे मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति में प्रयोग करें, चाहे जनन-कार्य में लगावें अथवा भोग-विलास में नष्ट कर डालें।

जननशक्ति को परिवर्तित करनेवाली योगियों की कसरत बहुत ही सरल है। वह तात्पर्युक्त साँस के साथ और बहुत आसानी से की जाती है। इसका अभ्यास किसी समय में किया जा सकता है, परंतु उस समय इसको करने का हम आग्रह करेंगे जब कामेच्छा प्रबल हो उठी हो; उस समय में यह शक्ति प्रकट रहती है और आसानी से पुष्टिकर कार्यों में परिवर्तित की जा सकती है। हम आगे इसे देखेंगे। जिन पुरुष और स्त्रियों को मानसिक और शारीरिक उत्पादन कार्य करना पड़ता है, वे इस उत्पादनी शक्ति को अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सकते हैं और कसरत में प्रत्येक श्वास खींचने के साथ शक्ति को खींचकर श्वास छोड़ने के समय इसे अभीष्ट स्थान को भेज सकते हैं। शिष्टों को समझ लेना चाहिए कि वस्तुतः राज और वीर्य इस रीति से नहीं खींचे जाते, किंतु वह प्राणशक्ति खींची जाती है, जिससे यह कामशक्ति जागृत रहती है—मानो जननशक्ति का सत्व खींचा जाता है।

#### पुष्टि-विधायिनी कसरत

अपने मन को काम-चित्तनाभों और काम-कल्पनाभों से हटाकर केवल शक्ति-मात्र पर एकाग्र कीजिए। यदि काम-चित्तनाभें मन में आ जावें, तो इससे हिम्मत न हारिए; परंतु इसे उस शक्ति का

विकास समझिए, जिसे आप शरीर और मन की पुष्टि करने में लगाया चाहते हैं। ढीले होकर पड़ जाइए या सीधे बैठ जाइए; और अपने मन को इस कल्पना में लगाइए कि मानो आप इस अननशक्ति को ऊपर खींचकर सौर्यकेंद्र में ला रहे हैं, जहाँ यह परिवर्तित होकर जीवत-शक्ति के रूप में संचित रहेगी। तब तालयुक्त श्वास लीजिए; और मन में यह कल्पना कीजिए कि प्रत्येक श्वास खींचने में आप कामशक्ति को ऊपर खींच रहे हैं। प्रत्येक श्वास खींचने में प्रबल आकांक्षा की आज्ञा दीजिए कि जननेन्द्रियों से शक्ति खिंचकर ऊपर सौर्यकेंद्र में आवे। यदि ताब डंक रीति से निरिधत हो गया होगा और कल्पना स्पष्ट हो गई होगी, तो आपको शक्ति ऊपर चढ़ती प्रतीत होगी और आपको उसके उत्तेजक प्रभाव का बोध हो जायगा। यदि आप मानसिक बल की वृद्धि चाहते हैं, तो आप इसे सौर्यकेंद्र में खींचने के स्थान पर मस्तिष्क में खींच सकते हैं; यह कार्य मानसिक आज्ञा देने और मस्तिष्क में खींचने की कल्पना करने से हो सकता है। कमरत के हम अंतिम भाग में शक्ति का केवल उतना ही अंश मस्तिष्क में जायगा, जितने की वहाँ आवश्यकता होगी; शेष भाग सौर्यकेंद्र ही में संचित रह जायगा। इस परिवर्तनी क्रिया में सिर को थोड़ा आगे सरलता और स्वाभाविक रीति से मुका रहना चाहिए।

यह नवजनन का विषय जाँच, अभ्येक्षण और अध्ययन के लिये एक वृहत् क्षेत्र उपस्थित कर देता है; और किसी दिन इस विषय पर एक छोटी किताब लिख देना हितकर समझ सकते हैं कि यह किताब उन थोड़े-से मनुष्यों में घुमाई जाए जो हमारे लिये तैयार हों और जो वाञ्छित भावना से हमारे खोजी हों न कि काम-कल्पनाओं और काम-वृत्तियों से प्रेरित होकर हमें तज्ज्ञा करते हों।

## तीसवाँ अध्याय

### मानसिक स्थिति

जिन लोगों ने प्रवृत्तिमानस और आधिभौतिक शरीर को स्वायत्त रखने के विषय में योगियों की शिक्षा का परिचय पा लिया है, और यह भी जान लिया है कि प्रयत्न आकांक्षा का कितना प्रभाव प्रवृत्तिमानस पर पड़ता है, वे यही आसानी से देख सकते हैं कि किसी मनुष्य की मानसिक स्थिति का बड़ा भारी प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिस मनुष्य की मानसिक स्थिति उज्ज्वल, प्रसन्न और सुखी होती है, उसका भौतिक शरीर स्वाभाविक रीति से अपना काम करता है; परंतु विषादयुक्त मानसिक दशाएँ, चिंता, चिदचिदापन, भय, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध ये शरीर पर अपना बुरा असर डालते हैं और शारीरिक गड़बड़ उत्पन्न कर देते हैं, जिसका परिणाम रोग होता है।

इस बात को हम सब लोग जानते हैं कि अच्छे समाचार और प्रसन्न संघ स्वाभाविक भूख उत्पन्न करते हैं, परंतु बुरे समाचार मन इस संघ वगैरह भूख को मंद कर देते हैं। किसी प्रिय मोजन का त्रिक आने पर मुँह में पानी भर आता है और किसी बुरी वस्तु के स्मरण से मतली आने लगती है।

हमारी मानसिक स्थितियाँ हमारे प्रवृत्तिमानस में प्रतिबिम्बित रहती हैं; और चूँकि मन का यह अंश शरीर पर सीधा अधिकार रखता है, इसलिये यह बात भट समझ में आ सकती है कि मानसिक स्थिति कैसे शारीरिक कार्यों में अपना असर डाल देती है।

विषादयुक्त भावनाएँ रुधिरसंचार पर अपना असर डालती हैं,

और हमारे शरीर के अन्तर्गत भाग पर प्रभाव पड़ता है कि शरीर अपनी दुष्टि में संतुलित रह जाता है। अतः प्रयास करने से शरीर को मंद कर देने से, जिसका यह परिणाम होता है कि शरीर को उचित पोषण नहीं मिलना और रुधिर दृढ़ हो जाता है। इसके विरुद्ध प्रयत्न विचार और शुभ तथा संगत भावनाएँ पाचन को बढ़ाती हैं, भूख को बढ़ाती, रुधिर-अन्तःस्था में गहराई देती और अतः शरीर पर वायुचक्र का प्रभाव बढ़ाती हैं।

बहुत-से लोग यह प्रयास करते हैं कि मानसिक भावों का शरीर पर प्रभाव डालना यह योगियों और उन लोगों का भ्रम है, जो मन ही को प्रधानता देकर मानस ही द्वारा रोग रोग करने में अपना स्वार्थ समझते हैं; परन्तु आप वैज्ञानिक अन्वेषणकारियों के प्रामाणिक श्रेष्ठों को देखिए, तो आपको मालूम हो जायगा कि ऐसा प्रयास सत्य घटनाओं के आधार पर है। बहुत बार परीक्षाएँ की गई हैं, जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि शरीर मानसिक स्थिति और विश्वास को भ्रष्ट ग्रहण कर लेता है; बहुत-से मनुष्य स्वतः प्रवृत्त भावनाओं और दूसरों द्वारा प्रवर्तित की हुई भावनाओं से रोगी हो गए हैं और रोग से छुटकारा पा गए हैं। ये भावनाएँ मानसिक स्थितियों ही से हैं ?

क्रोध के आवेश में स्तन या धूँक बिप हो जाता है; यदि माता बहुत भय-भीत या क्रुद्ध हो जाय, तो उसका दूध बच्चे के लिये विषैला हो जाता है। यदि मनुष्य विषादयुक्त या भयभीत हो जाय, तो उसके आमाशय से स्वरस्रवणापूर्वक द्रव नहीं निकलता। ऐसे हज़ारों प्रमाण दिए जा सकते हैं।

क्या इसमें आपको संदेह है कि अयुक्त भावनाओं के कारण बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ? तब कुछ परिचित वैज्ञानिकों का प्रमाण सुन लीजिए—

“आफ्रिका के किसी-किसी भाग में अधिक क्रोध या रंज करने के परिणामस्वरूप उबर आ जाता है।” सर सेमुयल बेकर।

“एकबारगी मन पर धक्का लगने से मन्धा प्रमेह उत्पन्न होता है, जिसका कारण मानसिक उद्वेग है।” सर थो० डबल्यू० रिचार्डसन।

“बहुत-सी बीमारियों में देखने से मुझे ऐसे कारण मिले हैं, जिनसे विश्वास किया जा सकता है कि बहुत दिनों तक चिंता करने से विपैले फोड़े की उत्पत्ति हुई है।” सर जार्ज पेजेट।

“हम इस बात को देखकर बहुत आश्चर्यित हुए कि अक्सर फेफड़ों में विपैले फोड़ों के रोगी लगातार रंज के कारण इस रोग में पड़ गए। यह बात इतनी अधिक देखने में आती है कि इसे सिर्फ इत्तफाक नहीं कह सकते।” मर्चिसन।

“विपैले फोड़ों की बीमारियाँ, खासकर छाती की, मानसिक चिंता के कारण उत्पन्न होती हैं।” डॉक्टर स्नो।

इत्यादि, इत्यादि।

डॉक्टर हैक ट्यूक मानसिक बीमारियों की अपनी किताब में, जो पश्चिमी दुनिया में मानसिक औषधियों के प्रचार के बहुत पहले की है, लिखते हैं कि अनेकों बीमारियाँ भय से उत्पन्न होती हैं जैसे उन्माद, विचित्रता, लकवा, पहले ही बाल पक जाना, गंजा सिर, दाँतों का बिगड़ना इत्यादि।

उन दिनों में जब सांपर्किक बीमारियाँ वशा की भाँति फैलती हैं, तो देखने में आता है कि बहुत-से मनुष्य भय ही के कारण बीमार पड़ जाते हैं; अथवा बीमारी का तो हलका हमला हुआ, पर भय का इतना भारी हमला हुआ कि लोग मर जाते हैं। यह बात आसानी से तब समझ में आवेगी, जब हम श्रयाल करेंगे कि सांपर्किक बीमारियाँ कम जीवट के मनुष्यों ही पर अधिक आक्रमण करती हैं और भय और ऐसी वृत्तियाँ जीवट को कम कर ही देती हैं।

इस विषय में बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें लिखी

हैं जिनके अधिक विस्तार करने की आवश्यकता

परंतु इस विषय को छोड़ने के पहले हम अपने शिष्यों के मन पर हम बात को अंकित कर देना चाहते हैं कि “विचार क्रिया का रूप धारण करते हैं” और मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रियाओं के रूप में प्रकट होती हैं ।

योगशास्त्र अपने शिष्यों के मन में स्थिरता, शांति, शक्ति और निर्भयता उत्पन्न करना चाहता है, जो कि शरीर में आकर प्रति-बिंबित होते हैं । ऐसे मनुष्यों के मन में शांति और निर्भयता तो स्वाभाविक ही रीति से आती है और विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती । परंतु उन लोगों के लिये, जो अभी तक मानसिक शांति नहीं प्राप्त किए हैं, हम बात से बहुत लाभ हो सकता है कि वे अपने मन को शांत रखने का प्रयास बनाए रहें और ऐसे मंत्रों को जपें, जिनमें शांत मन की कल्पना होती हो । हमारी राय है कि ये शब्द जपे जायें कि “दृग्ज्वल, प्रसन्न और सुखी” और इन शब्दों के अर्थ पर ध्यान रहे, इन शब्दों के भाव को अपनी शारीरिक क्रिया में विद्यमान कीजिए, तो आपको मानसिक और शारीरिक बहुत बड़ा लाभ होगा और आप्यात्मिक बातों के ग्रहण करने के योग्य आरका मन होता जायगा ।

## इकतीसवाँ अध्याय आत्मा के अनुगामी बनो

यद्यपि यह किताब केवल भौतिक शरीर के कल्याण के अभिप्राय से लिखी गई है, और योगशास्त्र के उच्च अंश अन्य क्षेत्रों के लिये छोड़ दिए गए हैं, तथापि योगशास्त्र के मूल तत्व उसकी गौण शाखाओं से इस माँति मिले जुले हैं, और योगी लोग अपनी साधारण क्रियाओं में भी उन मूल तत्वों पर इतनी दृष्टि रखते हैं कि इस योगशास्त्र की शिक्षा और शिष्यों पर न्याय की दृष्टि से देखते हुए उन गूढ़ तत्वों के विषय में बिना कुछ बातें कहे हम इस विषय को नहीं छोड़ सकते।

जैसा कि हमारे शिष्य लोग निस्संदेह जानते हैं, यह योगशास्त्र ऐसा बतलाता है कि मनुष्य क्रमशः नीच रूपों से उच्च रूप में वृद्धि और विकास पा रहा है और उससे भी ऊँचा आध्यात्मिक विकास इसका होनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है यद्यपि वह नीच प्रकृति के आवरणों से इतना घिरा हुआ है कि वह बड़ी कठिनता से जाना जाता है। आत्मा नीच जीवों में भी है, वह स्फुरण कर रहा है और सर्वदा उच्च-उच्च रूप में विकसित होने की ओर उन्मुख रहता है। इस उन्नतिशील जीवन का भौतिक आवरण, जो धातुओं, पौधों, नीच जंतुओं और मनुष्यों का शरीर है, ऐसा औज़ार है कि जो उच्च और उच्च तत्वों के उत्तम-से-उत्तम विकास के लिये काम आता है। परंतु यद्यपि भौतिक शरीर का व्यवहार अल्प समय के लिये और अनित्य है, और यह शरीर केवल वस्त्र की भाँति पहनने और उतार देने के योग्य है, जो भी प्रकृति का यह सर्वदा उद्देश्य रहता है कि औज़ार ज

हो सके, पूरा-से-पूरा बना रहे । प्रकृति यथासाध्य उत्तम-से-उत्तम शरीर देती है, और उचित जीवन की प्रेरणा करती रहती है, परंतु यदि ऐसे कारणों से, जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता, एक अनुरूप शरीर जीव को मिल जाता है, तथापि उच्च भाव यह यत्न करते रहते हैं कि उसी देह के अनुकूल अपने को बनाकर उससे अच्छा-से-अच्छा काम निकालें ।

यह आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति—यह जीवन की आंतरिक प्रेरणा—आत्मा का विकास है । यह प्रवृत्तिमानस के आदिम रूप से लेकर अनेक दलों में काम करती हुई मानसिक मूल तात्व के उच्चतम विकास तक पहुँचती है । यह बुद्धि में होकर भी प्रकट होती है, जिससे मनुष्य अपनी तर्कशक्तियों का व्यवहार करके अपनी शारीरिक पूर्णता और जीवन को कायम रखता है । परंतु शोक है कि बुद्धि अपने ही काम में नहीं लगी रहती, किंतु ज्यों ही वह अपने को कुछ समझने लगती है, त्यों ही वह प्रवृत्तिमानस को दबाकर आप जीवन की अनेक प्रकार की अस्वाभाविक कुरीतियों को शरीर पर ढकेल देती है और प्रकृति से हतनी दूर कर देने की चेष्टा करती है, जितना संभव हो सकता है । यह उस छद्मके की भौति है, जो माता-पिता के शासन से स्वतंत्र होकर माता-पिता के आदर्श और उपदेश के यथासाध्य विपरीत चला जाता है—केवल इसी बात को दिखलाने के लिये कि मैं “स्वतंत्र हूँ” । परंतु जबका अपनी मूर्खता को किसी समय पर समझ जाता है और सुधार जाता है—उसी प्रकार बुद्धि भी कभी सुधार आयगी ।

मनुष्य जब समझने लगा है कि उसके भीतर ऐसी कोई चीज है, जो उसकी आवश्यकताओं पर ध्यान रखती है, और वह अपने काम को उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक समझती है । क्योंकि मनुष्य अपनी सारी बुद्धि रखने हुए भी प्रवृत्तिमानस के इन मारुतों को



नहीं कर सकता, जिन्हें वह पौधों, जंतुओं और स्वयं उसी मनुष्य में कर छाड़ता है। और वह हम मानस तत्त्व को मित्र समझकर उसका भरोसा करने लगता है और उसने उसे अपना काम करने की छुट्टी दे दी है। जीवन की वर्तमान रीतियों में, जिन्हें मनुष्य ने अपने विकास में धारण कर लिया है, परंतु जिनसे पृथक् होकर वह देर या सबेर अपनी प्राकृतिक अवस्था में वापस आवेगा, पूर्णतया प्राकृतिक जीवन जीना प्रायः असंभव-सा हो गया है; जिनका परिणाम यह हुआ है कि भौतिक जीवन अवरय कुछ-न-कुछ अनरौति का होगा। परंतु प्रकृति की आत्मा-रक्षा और प्रतियोजना प्रवृत्ति बहुत प्रबल है; और वह बहुत अच्छी तरह से अपना काम निबाह लेती है, और अपने काम को उसकी अपेक्षा बेहतर करती है, जिसे सम्य मनुष्य जीवन की अपनी उटपटौंग रीतियों के द्वारा करने की आशा कर सकता है। इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि मनुष्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है और उसका आत्मा विकास पाने लगता है, त्यों-त्यों उसे ऐसी एक चीज़ प्राप्त होने लगती है, जो प्रवृत्ति के अनुरूप होती है, जिसे हम लोग प्रतिभा कहते हैं और यही प्रतिभा उसे प्रकृति के मार्ग पर वापस लाती है। हम इस उदय होती हुई चैतन्यता को देख सकते हैं कि प्राकृतिक जीवन और सादी जिंदगी की ओर कैसा लोगों का झुकाव हो रहा है और थोड़े दिनों से तो इसकी बहुत ही ज्यादा तरक्की है। अब हम लोग अपनी इस घमकीली सम्यता के रूपों, पुराने विश्वासों और रस्म-रिवाजों पर हँसने लगे हैं और यदि हम इन्हें दूर न कर देंगे, तो ये उस सम्यता को उसी के बढ़ते हुए बोझ के नीचे गिरा देंगे।

जिस पुरुष या स्त्री में अभ्यास का विकास हो रहा है, वह कृत्रिम जीवन और दस्तूरों से असंतुष्ट हो जावेगा और जीवन की सादी और प्राकृतिक रीतियों की ओर झुकेगा और कृत्रिम आवरणों

बंधनों से, जिनसे मनुष्य बहुत काल से घिरा चला आता है, उब जावेगा। उसको सर्वदा अपना वास्तविक घर स्मरण आने लगेगा— "बहुत दिनों के बाद हम घर लौट रहे हैं।" और बुद्धि भी अनुकूल हो जायगी, और उन मूर्खताओं को देखकर, जिनमें वह अब तक पड़ा था, यही चेष्टा करेगी कि सब मूर्खता छोड़कर आओ घर चलें; अपने कार्य को वह अच्छी तरह करने लगेगा और प्रवृत्तिमानस को अपना कार्य निर्वाध करने के लिये छुट्टी दे देगा।

इदयोगी के सब विचार और अभ्यास इसी घर लौट चलने के आधार पर अवलंबित हैं—इस विरवास पर कि मनुष्य के प्रवृत्तिमानस में वह चीज़ है, जो साधारण दशा में उसके स्वास्थ्य को क्रायम रखेगी। इसी के अनुसार वे लोग, जो योग-शिक्षा का अभ्यास करते हैं, पहले "छोड़ना" सीखते हैं और तब प्रकृति के उतना निकटस्थ होना सीखते हैं, जितना इस कृत्रिमता के ज़माने में संभव हो सकता है। इस छोटी किताब में प्रकृति ही के पथ और तरीके बतलाए गए हैं, जिसमें हम प्रकृति के पास लौट चलें। हमने नए मत का उपदेश नहीं किया है, परंतु सर्वदा आपसे यही आग्रह किया है कि हमारे साथ पुराने अच्छे उस पथ पर आ जाइए, जिसे छोड़कर हम लोग भूले हुए हैं।

हम इस बात को मानते हैं कि आजकल के पुरर और छियों को प्राकृतिक जीवन स्वीकार कर लेना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि उनका संघ उन्हें विपरीत ही मार्ग प्रदश्य करने के लिये प्रेरणा कर रहा है, परंतु प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन अपने लिये और अपनी जाति के लिये इस पथ पर अवश्य धोड़ा बहुत कुछ कर सकता है, और शनैः-शनैः उसको पुरानी कृत्रिम आदमें सब एक-एक करके छूट जायेंगी।

इस अंतिम अध्याय में हम आपके मन पर यह अंबित किया जा रहा है कि मनुष्य भौतिक और आध्यात्मिक दोनों जीवन में आनंद

का अनुगामी हो सकता है। मनुष्य आत्मा का पूरा भरोसा कर सकता है कि यह प्रतिदिन के जीवन तथा और देदेमेदे पेचीदा कामों में उसे सच्चे ही मार्ग पर ले जावेगा। यदि मनुष्य आत्मा का भरोसा करेगा, तो उसकी पुरानी कामनाएँ उससे झड़ पड़ेंगी—उसकी अस्वाभाविक रुचियाँ लुप्त हो जावेंगी—और उसका उस सादे जीवन में यह सुख और आनंद मालूम होगा कि जिससे जीवन प्रथम की अपेक्षा अब भिन्न ही वस्तु प्रतीत होने लगेगा।

मनुष्य को यह विश्वास कभी न ख्यागना चाहिए कि आत्मा पार्थिव शरीर के कार्यों में भी अगुआ रहता है; क्योंकि आत्मा सर्वत्र व्यापक है और पार्थिव तथा उच्च मानसिक दशाओं दोनों में विकास पाता है। मनुष्य जिस प्रकार आत्मा के साथ-साथ सोच विचार कर सकता है, वैसे ही उसके साथ-साथ भोजन कर सकता है, पानी पी सकता है। इस बात से काम नहीं चलेगा कि अमुक आध्यात्मिक वस्तु है और अमुक वस्तु आध्यात्मिक नहीं है। क्योंकि उच्च भावना में सभी वस्तुएँ आध्यात्मिक हैं।

अब अंत में यह कहना है कि जो मनुष्य अपने भौतिक शरीर को उत्तम-से-उत्तम किया चाहता है—आत्मा के विकास के लिये अच्छा-से-अच्छा औज़ार चाहता है—उसको अपने जीवन की सर्वदा आत्मा का भरोसा रखते हुए जीना चाहिए। उसको समझ लेना चाहिए कि उसके भीतर जो आत्मा है, वह परमात्मा की चिनगारी है—परमात्म-समुद्र का एक बिंदु है—परमात्म सूर्य की एक किरण है। उसे समझ लेना चाहिए कि उसकी सत्ता नित्य है, जो सर्वदा बढ़ रही, विकसित हो रही और प्रफुल्लित हो रही है। सर्वदा उस महत् ज्ञप्य की ओर जा रही है, जिसके वास्तविक भाव को मनुष्य अपनी इस वर्तमान दशा में अपनी अधूर्ण मानसिक दृष्टि से ग्रहण करने के अयोग्य है, प्रेरणा सर्वदा आगे और ऊपर के लिये है।

हम सब लोग हम सब मनु जीवन के संग हैं, जो अपने अपने और आपसों में विकसित हो रहा है। हम सब लोग हमसे संग हैं। हमके कार्य को यदि हम मनुष्य की समझ लायें, तो हमारा द्वार हम जीवन और जीवत के द्वारे खुल जाय कि हमारा शरीर बिछकुल हो गया हो जाय और पूरा पूरा मिल सके। आइए हम सब लोग पूर्ण शरीर का ध्यान करें और हम प्रकार की रहन रहने की चेष्टा करें कि हम पूर्ण शरीर के भौतिक रूप में मिल जाय—हम जान को हम लोग कर सकते हैं।

हमने भौतिक शरीर के नियमों को आप लोगों को बतलाया है कि आप लोग जहाँ तक हो सकें, उनका अनुगमन करें; और हम मनु जीवन और मनुष्य शक्ति के प्रवाह में, जो सर्वदा हममें होकर बहने को शुरू है, जहाँ तक हो सकें बाधा न पहुँचायें। हम लोगों की प्रकृति में छोट बलना चाहिए। हे मेरे प्यारे शिष्यो, हम मनु जीवन को अपने में होकर स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवाहित होने दो, तो सब अन्धकार-ही-अन्धकार होगा। कुछ बातों को हम ही करें, ऐसा प्रयास छोड़ दो—सब चीज़ें अपना काम अपने आप हमारे द्वारे करें। वे चाहती हैं कि हम उनका विश्वास करें और उनके कार्यों में बाधा न डालें—आइए हम लोग भी उन्हें अवसर दें। इति शम्।





## कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

सीधे पंडित ( अपूर्व उपन्यास ) ...	...	111), सजिद २)
संसार-रहस्य अथवा अधःपतन (आध्यात्मिक उपन्यास) 111), म० २)		
राजयोग अर्थात् मानसिक विकास (Mental Development		111), सजिद २)
योगशास्त्रांतर्गत धर्म ( Advanced course in yogi		Philosophy ) 11)
योगप्रयोग ...	...	11), सजिद १)
योग की कुछ विभूतियाँ ...	...	111), ,, 11)
जीवन-मरण-रहस्य...	...	12)
ध्यानयाम ...	...	1112), सजिद 112)

### आध्यात्म-विषयक अन्य लेखकों की पुस्तकें

हृदय-स्तरंग ( जेम्स एलेन ) ...	...	1)
किशोरावस्था ...	...	1)
भिखारी से भगवान् ( जेम्स एलेन ) ...	...	111)
मनोविज्ञान ...	...	111), सजिद 11)
जीवन का सद्ध्यय ...	...	1), ,, 11)
कर्मयोग ...	...	11), ,, 1)
सुख तथा सफलता ...	...	1)

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-मार्क, लखनऊ









# कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

शीघ्र पंडित ( अर्जुन उपन्यास ) ...	... १०१, सजिद २१
संसार-रहस्य अध्याय अध्यापन (आध्यात्मिक उपन्यास) १०१, स० २१	
राजयोग अध्याय मानसिक विकास (Mental Development	१०१, सजिद २१
योगशास्त्रांगत धर्म (Advanced course in yoga	Philosophy ) ११
योगप्रयोग ...	... ११, सजिद ११
योग की कुछ विभूतियाँ ...	... ११, " ११
जीवन-मरण-रहस्य...	... १२
प्राणायाम ...	... १३, सजिद १३

## आध्यात्म-विषयक अन्य लेखकों की पुस्तकें

हृदय-तरंग ( जेम्स एलेन ) ...	... ११
किशोरावस्था ...	... ११
भिलासों से भागवान् ( जेम्स एलेन ) ...	... ११
मनोविज्ञान ...	... ११, सजिद ११
का मद्भ्यस्य ...	... ११, " ११
... ..	... ११, " ११
सफलता ...	... ११

पता—

आर्यालय

, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का पच्चीसवाँ पुष्प

# हठयोग

अर्थात्

## शारीरिक कल्याण

( योगी रामाचारक-लिखित 'हठयोग'-नामक  
बंगाली ग्रंथ का हिन्दी-रूपान्तर )

अनुवादक

टा० प्रसिद्धनारायणमिह्र घी० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२६-३०, बमोबाद-पार्क

लखनऊ

द्वितीय आवृत्ति

प्रकाशक  
श्रीदुलारेलाल भागवत  
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय  
लखनऊ  
❖❖❖  
मुद्रक  
श्रीदुलारेलाल भागवत  
अध्यक्ष गंगा-काइनवार्ट-प्रेस  
लखनऊ

## समर्पण

अवध के तालुकदारों में आदर्श व्यक्ति,

धर्मकुलालंकरण,

अष्टास्पद श्रीमान

राजा सूर्ययक्सनिह साहय

बसमदाधिपति के दर बमलों में ।

श्रीमान्,

भगवती सरस्वती और लक्ष्मी की लोकोत्तर विभूति में  
सपन्न हो श्रीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अटलित धीन  
रहते हैं और अपनी जिम्मा आदरणीय मातृभाषा हिंदी के  
साहित्य-भाषा की वृद्धि में तन, मन, धन से लगे रहते  
हैं। उसी भाँसा की पूर्ति के यत्नरूप और उसी देश के  
बहुपाण-साधन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक  
अंग हम पुनः श्रीमान् की सेवा में हार्दिक धन्य और  
आदर से समर्पण कर रहे हैं ।

श्रीमान् का वृत्तमान्,

प्रसिद्धनागदण्ड



## भूमिका

योगी रामाचारकजी की "साहंग-छोफ-मेष" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी इन्तलिखित कापी हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़कर लोगों ने इतनी प्रसन्नता प्रकट की कि इस दृष्टिकोण के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अतिरिक्त अनेक उत्साही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारंभ कर दिया। जिन-जिन लोगों ने जी लगाकर इसका अभ्यास किया, वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गए और कहने लगे कि भारतवर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कदवालों में छिपी थी, वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का असीम उत्थार होगा। इन बातों को सुन-सुनकर मैं विचार करने लगा कि जब केवल स्वाम-क्रियाओं ही का प्रभाव लोगों को इतना उत्साहित कर रहा है, तो उन क्रियाओं के साथ यदि स्नान, पान, रहन, गहन इत्यादि सभी बातों में दृष्टिकोण के नियमों का अनुसरण होने लगेगा, तो और भी कितना लाभ होगा। इसी विचार में योगी रामाचारकजी के दृष्टिकोण-नामक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारकजी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाते हैं कि लिप्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से यह सुनने आते थे कि बिना साक्षात् गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता, पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साक्षात् गुरु के भी, साक्षात् गुरु के-से लाभ देने हैं। हमलिये मैंने उन्हीं के लेखों का टीक-टंक अनुवाद करने का यत्न किया है, अपनी ओर से कुछ भी सम्मेलन करने का चेष्टा नहीं की। हाँ, ऐसी जगहों पर जहाँ कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं, उन्हीं उन्हीं के अपने अमेरिका निवासियों को संबोधन करते कहा है, वहाँ मैंने अपने भारतीय भाइयों को संबोधन कर दिया है।



योगशास्त्र के पुराने ग्रंथों, जैसे पातंजल-योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रंथ इतने बड़े नहीं हैं, जितना यज्ञ कि यह ग्रंथ है। इसमें बातें भी बहुत-सी नई-नई हैं, जो उन पुराने ग्रंथों में नहीं मिलतीं। हमारे देश के लकीर के फकीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत-सी नई बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग में कही गई हैं, इसलिये इस शिष्या का अनुसरण करने से तो हम नवप्राप्ति हो जायेंगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पतंजलि और शिवजी का जमाना दूसरा था। उस जमाने में ऊँची-सी-ऊँची शिष्या बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीका गुरु और शिष्य दोनों के अनु-कूल था। पर अब तो यदि सही-से-सही सिद्धांत को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे, तो कोई सुनेगा ही नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साइंस-काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइए, इतना समझाइए कि सुननेवालों के मन में कोई संदेह न रह जाय, तभी आपका समझाना समझाना है। हमी को साइंस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रंथ बड़े हो हो जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धांत तो वही सनातन के हैं, पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, इस बात से निश्चित रहना चाहिए। दूसरी यह बात कि इसमें पुराने ग्रंथों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, इसको मैं मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और इसका भा प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण सब समझ में आवेगा, जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले धारने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर जाता है, फिर उनकी शक्तियों को

जगाता है। एक मनुष्य है, जो राह छोड़कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके लिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ी ही धातें बहनी पड़नी हैं; परन्तु दूसरा मनुष्य, जो अमञ्जी राह छोड़कर बहुत दूर भटक गया है, उसके लिये ज़रूर बहुत भटकी हुई धातों को समझाकर ठीक मार्ग पर खाना होगा। पहले ज़माने के मनुष्य प्रकृति के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; हमलिये धाढ़े ही में कहकर उनको ठीक मार्ग पर लाने थे और उनको शक्तियों का जगाते थे। अब के मनुष्य भटककर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर हट गए हैं और अनमानी राह पकड़कर गुमराह हो रहे हैं; हमलिये भटके हुए दूर के मार्गों का दोष दिखाकर आवश्यक हो गया; सभी मनुष्य भटके मार्गों को छोड़कर अमञ्जी मार्ग पर आवेंगे। हमलिये हममें नई-नई भूतों और भ्रमों को दूर करने के लिये नई-नई धातें बहनी पड़ीं।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साथक मित्रों ने भी हम बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगशास्त्र की पुस्तकों को केवल एक ही बार, आठे दिन का ही ध्यानपूर्वक हो, अध्ययन करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अभ्यास शुरू कीजिए। प्रथम समाप्त हो जाने पर कुछ दिन के लिये हमका पढ़ना छोड़ दीजिए, पर अभ्यास करने जाएँ। कुछ दिन के बाद फिर ध्यान से पढ़िए। इस प्रकार आपकी नई धातें मात्रात्म होनी आवेंगी, जो पहले अध्ययन में आपके हृदय पर नहीं थीं। एक तो अभ्यास करने से आपके मन में नए-नए प्रश्न उठेंगे, दूसरे एक ही बार में सब सब बातों को समझ नहीं कर सकना, हमलिये थोड़ा-थोड़ा खतर देकर हरे बार-बार करने रहना चाहिए, तब बड़ा काम होना है।

योग की विद्याओं के करने से शरीर के अणु-अणु जग उठने हैं। अस्वप्न अस्वप्न, रोते-रोते, कल-कल से शारीरिक क्रियाएँ अपनी तरह से होने लगनी हैं। निर्विकल धातों में बड़ा काम चलता है, दिव्य

अवयव किया करने लगते हैं, शरीर में, जहाँ-जहाँ श्रुटियाँ हैं, उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदनाहीन अंगों में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी श्रुटियाँ हैं, जिनकी आपको खबर तक नहीं है; क्योंकि वहाँ के अवयव वेदनाहीन हो गए हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है, तो वेदनाओं के जग जाने से श्रुटियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत-से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र साधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी-मीठी पीड़ा-सी हो रही है, कोई कहता है, अँतड़ियों में कुछ अव्यवस्थिति-सी मालूम होती है इत्यादि-इत्यादि। इन बातों में डरना न चाहिए; किंतु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफाई होने लगी। सबसे पहले फेफड़ों की सफाई होती है। किसी-किसी को कुछ थोड़ी वेदना होती है, शुकाम तो अमर लोगों को हो जाता है और झूच कर जाता है। निश्चित रहिए, कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किंतु धीरे-धीरे उभरकर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे, उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़कर फिर दिन-भर के लिये तो मकान साफ और सुधरा हो जायगा और यदि फिर आप कूड़ा-करकट न आने देंगे, तो हमेशा के लिये साफ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है; वह अँगरेजी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे तालिका दिए देते हैं—

६० बूँदों का	१ दाम।
८ दाम का	१ औंस।
२० औंस का	१ पाउंड।
२ पाउंड का	१ छांट।
४ छांट का	१ गैलन।

हम आशा करते हैं कि हमारे देश-वासी अपने पुराने भूले हुए हम योगमार्ग का अनुसरण करके काम उठावेंगे ।

जिस प्रकार जापान और योरोपियन देशों में शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, उसी प्रकार हमारे इस बड़े भारतवर्ष में भी दी जाती है । पर इसी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव जितना योरोपियन देशों में पड़ता है, हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता । कहीं तो एक मूत्र के उपदेश से हमारा देश इतना ज्ञान ग्रहण करता था कि जितना अन्य देश पोथियों-की पाथियों से भी नहीं ग्रहण कर पाते थे । अब वही हमारा देश है कि जिन किताबों को पढ़कर एक योरोपियन, अमेरिकन व जापानी क्रिया-निपुण और व्यवसायी होकर बड़े-बड़े व्यवसाय करके अपने-को और अपने देश को सब भौति से सज्ज बनाता है, उन्हीं किताबों को पढ़कर हम मुझिरी टूटा करने हैं । कारण क्या है ? हममें न तो ज्ञात है न शक्ति । योगसाधन उन्मा जादू और शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बनलाता है । जब जापानी जाग जिजिगु नामक स्वाम-विद्या करके छोटे और थोड़े होने पर भी बड़े और अमूल्य रुबियों पर विजयी हो गए, तो क्या हम अपने प्राणायाम से ब्रह्म से प्रबल शक्ति नहीं प्राप्त कर सकते ? अभ्यास बाजिए और धैर्य रखिए, भय न हो जायगा । बिना परिधम और धैर्य के कुछ न होगा । हम आशा करते हैं कि हमारे देश बहुत इस अभ्यास को करके मानसता लाभ उठावेंगे ।

मेरे मित्र मित्र भीषुन पहिल कात्यायनीहलदी विवेकी ने अपने काव्य समर्थ का एक बड़ा भाग हमसे पूछ-सरोधन से कथ्य किया है, अतः मैं इसे हार्दिक अथवार देना हूँ ।

राज गुरी गुरीकी  
शिक्षा साधकीकी,  
१-१-१११०

मसिह नारायणसिंह



# हठयोग

## पहला अध्याय

### हठयोग क्या है ?

योग-विज्ञान कई शाखाओं में विभक्त है । उसमें ब्रह्मयोग और प्रधान भाग ये हैं—( १ ) हठयोग, ( २ ) राजयोग, ( ३ ) कर्मयोग और ( ४ ) ज्ञानयोग । यह पुस्तक पहले ही भाग का वर्णन करती है । इस समय हम दूसरे भागों के वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि योग के इन सम्बन्ध बड़े भागों पर अवरण कुछ अन्य ग्रंथों में करना ही पड़ेगा ।

हठयोग योगशास्त्र की वह शाखा है जो कि पार्थिव शरीर—उसकी रक्षा—उसकी भलाई—उसके स्वास्थ्य और इन कुछ बातों का जो शरीर को इसकी प्राकृतिक और इसकी रक्षा में रखने है, वर्णन करता है । यह जीवन को रक्षाभाविक रीति से जीने का मार्ग बतलाता है और पुकार पुकार करता है, जिस पुकार को बहुत-से पारंपरिक लोग भी ले रहे हैं कि “प्राकृतिक रीति पर चलाओ”, अगर वे सब रक्षा ही है कि योग को “व्यायस” नहीं माना है, क्योंकि वह तो सर्वदा प्राकृतिक और उसके पर का विरुद्ध अनुशासक रहा है, और वास्तविकता की ओर संशुद्ध होर से चलाओ में रहकर कभी ईला कुछ नहीं -

ईला कि प्राकृतिक सम्बन्ध में रहे

हुए मनुष्य में मूर्ख बनकर इस बात को विवक्षित ही भूषा दिया है कि ऐसी भी कोई चीज़ सम्भव है, जिसे प्रकृति करने दे। प्रकृति के प्रयत्नित शत्रु और सामाजिक रीतियों की गर्दूब ही मोगी के आन तक न हो सरी। यह इस बातों पर दृष्टि है और हमें सबकी का मेव समझना है। यह प्रकृति की मोग में बदला हुआ नहीं है; किन्तु यह उस प्रकृति भाषा के मोड़ में गला बदला है, जिनमें उमरी मरणा गुष्टि, गुष्टि, गुण और रक्षा की है। इन्द्रयोग चादि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और योग में प्रकृति है। जब हमारे सामने कोई तरीका, तरीक़ीय सपना नई रीति द्वापादि चाये तो उसे हमी कभी-कभी पर कर्मा कि "प्रकृतिक मार्ग क्या है" और मरणा उमी की परमा करो, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान स्थाय्य की बहुत-सी नई रीतियों, मनमर्दत उपायों, तरीकों, तरीकों और प्रयासों की ओर आकर्षित हो, जिनमें कि परिचया सेतार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आये और इस पर उन्हें विरवास करने के लिये कहा जाय कि "गृष्ठी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को रबर के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (गृष्ठी माता) उस आकर्षण-शक्ति को रोक न ले, जिसे उसने हमें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, हमको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में रबर के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि चलवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करने हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा मानव-समुदाय हो गया





हृत् मनुष्य में मूर्त बनकर इस बात को विनम्र ही भुजा दिया है कि ऐसी भी कोई चीज सम्मान है, जिसे प्रकृति कहते हैं। दुनिया के प्रत्येक शब्द और सामाजिक दीवलों की गर्दन ही गोंगी के शान्त न हो सरी। यह इन बातों पर देखा है और इसे सबों का मेव समझा है। यह प्रकृति की गोंद में पड़कर हुआ नहीं है; किन्तु यह उस प्रकृति माता के लोह में मग्न रहना है, जिसने उमरी मरदा पुष्टि, पुष्टि, गुण और रक्षा की है। इदयोग आदि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और अंत में प्रकृति है। जब गुहारे सामने कोई तरीका, तरीका अपना नई रीति इत्यादि आने लगे, तब हमी कभी-कभी पर कभी कि "प्रकृतिक सामने क्या है" और मरदा उमी को पसंद करो, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान व्याख्य की बहुत-सी नई रीतियों, मनमार्ग उपायों, तरीकों, तर्कों और व्याख्याओं की ओर आकर्षित हो, जिनसे कि परिचय संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आये और इस पर उन्हें विरवास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को रबर के तलेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को खींच न ले, जिसे उसने इन्हें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, इसको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में रबर के तले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि बलवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा मानव-समुदाय हो गया

